भारतीय संवतों का इतिहास

अपर्णा शर्मा

पुस्तक के विषय में

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय इतिहास में प्रचलित हुए संवतों का विस्तृत अध्ययन है। आदि काल से ही मनुष्य की जिज्ञासा एक ऐसी व्यवस्थित व परिष्कृत समय-मापन पद्धति को विकसित करने की रही है जो उसके जीवन क्रम को गति प्रदान कर सके तथा व्यतीत समय की गणना करने में सहायक हो। इसी परिप्रेक्ष्य में विश्व के अलग-अलग कोनों में खगोल-शास्त्र व ज्योतिष-शास्त्र का विकास हुआ तथा स्वतन्त्र रूप से गणना पद्धतियाँ विकसित हुईं जिन्होंने परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित भी किया। प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय गणना पद्धति के विकास व उस पर विदेशी प्रभाव का अध्ययन करते हुए भारत में प्राचीन काल से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक आरम्भ होने वाले चौवालीस संवतों का उल्लेख किया गया है। पुस्तक का मुख्य उद्देश्य पाठकों को राष्ट्रीय संवत् के विषय में जानकारी देना है। इस संवत् का प्रारम्भ भारत सरकार द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तत्कालीन प्रचलित विभिन्न सवतों तथा गणना पद्धतियों का अध्ययन कर गणना की दृष्टि से परिष्कृत कर, किया गया था। परन्तु, जिन कारणों से यह भारत के राष्ट्रीय संवत् का स्थान नहीं ले पाया उनका विवेचन पुस्तक के निष्कर्ष में किया गया है। इतिहास व संवत् का क्या सम्बन्ध है ? एक राष्ट्रीय संवत् की राष्ट्रीय एकता में क्या भूमिका है ? इस पुस्तक के पाठकों को ऐसे कितने ही अन्य प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे।

Rs. 400

भारतीय संवतों का इतिहास

भारतीय संवतों का इतिहास

डॉ० अपर्णा शर्मा

एस० एस० पब्लिशर्स
दिल्ली-३१

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भारतीय इतिहास में प्रचलित सम्वतों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इसमें भारतीय इतिहास का तात्पर्य प्राचीन भारत से भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति १९४७ ई० तक के इतिहास से है तथा स्वतन्त्रता पूर्व जो भारत की सीमायें थीं, उन सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित सम्वतों का विवेचन इसके अन्तर्गत हुआ है चाहे अब वे भारत की सीमाओं में हैं या नहीं।

शताब्दियों का मानवीय इतिहास यह बताता है कि मनुष्य को सदैव ही एक निश्चित तिथि-गणना की आवश्यकता रही है। इस संदर्भ में निरन्तर प्रयास व सुधार होते रहे हैं। विश्व के अनेक स्थानों पर पृथक्-पृथक् गणना-पद्धतियों का विकास हुआ तथा भारत में भी सप्तर्षिकाल, बृहस्पतिकाल, परशुराम चक्र, ग्रह परिवर्ती चक्र, चन्द्रमान, सौरमान व चन्द्र-सौर मान गणना-पद्धतियों का विकास हुआ, असंख्य सम्वतों की स्थापना की गयी तथा दैनिक व्यवहार की सुविधा के लिए अनेक प्रकार के पंचांगों का निर्माण किया गया। यद्यपि गणना-पद्धति, सम्वत् व पंचांग समय नापने के ही साधन हैं, परन्तु उनमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है तथा प्रस्तुत प्रबन्ध में उनमें से प्रत्येक शब्द का अपना निजी अर्थ रखता है। अतः इनके अर्थ का समझना आवश्यक है।

गणना-पद्धति के अन्तर्गत समय मापने की छोटी-बड़ी इकाइयों का निर्धारण व इन इकाइयों के लिए ग्रहों, नक्षत्रों, चन्द्र, सूर्य की चालों का अध्ययन आता है। इस कार्य को खगोलशास्त्रियों व पंचांग निर्माताओं द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार निर्धारित की गयी गणना-पद्धति को आधार मानते हुए, किसी भी स्मरणीय घटना से वर्षों की गिनती आरम्भ कर देना तथा इस गणना को एक नाम दे देना सम्वत् कहलाता है।

न केवल भारत में वरन् विश्व भर में गणना-पद्धति के निर्माता व उसको विकसित करने वाले व्यक्ति व सम्वत् आरम्भ करने वाले व्यक्ति अलग-अलग हैं। जैसे कि भारतीय गणना-पद्धति का विकास वैदिक युग में हुआ व वेदों में इसका उल्लेख है। इसके बाद सिद्धान्त ज्योतिष का विकास हुआ, इसके बाद इस्लाम के अनुयायियों के भारत-आगमन के साथ भारतीय ज्योतिष पर इस्लामी

पद्धति ने प्रभाव डाला। ईसाईयों के आगमन के बाद पाश्चात्य पद्धति का प्रभाव भारतीय पद्धति पर पड़ा। अपने विकास के इन विभिन्न स्तरों से गुजरते समय गणना-पद्धति का सम्बन्ध नक्षत्रों तथा चन्द्र व सूर्य की गणनाओं से रहा। आर्यभट्ट, वाराहमिहिर, भास्कराचार्य, गणेश, दैवज्ञ आदि बड़े-बड़े ज्योतिषी व खगोलशास्त्री हुए। ज्योतिष के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की गई, लेकिन इन ज्योतिषियों अथवा खगोलशास्त्रियों में से किसी ने भी किसी सम्वत् की स्थापना नहीं की, अपने नाम से अथवा किसी खगोलशास्त्रीय घटना से कोई नया सम्वत् प्रारम्भ नहीं किया। सम्वतों का आरम्भ राजाओं द्वारा किया गया। यह आवश्यक नहीं कि सम्वत् आरम्भ करने वाले इन राजाओं को गणना-पद्धति का बहुत सूक्ष्मता से ज्ञान था वरन् ये लोक प्रसिद्ध थे और इनके जीवन की घटनायें इतनी महत्वपूर्ण थी कि सदियों तक उनकी स्मृति लोगों में बनी रही तथा ये प्रसिद्ध राजा व व्यक्तित्व सम्वतों के आरम्भकर्ता रहे व महत्त्वपूर्ण घटनायें संवतों के आरम्भ के लिए उत्तरदायी रहीं।

पंचांग का तात्पर्य पांच अंगों वाले से है। तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा कर्ण पंचांग के पांच अंग हैं। पंचांग गणना-पद्धति का वह रूप है, जिसमें इसको सर्वसाधारण के दैनिक व्यवहार के लिए सरल रूप में प्रस्तुत किया जाता है। साधारण व्यक्ति के लिए खगोल व ज्योतिष के पूरे सिद्धान्तों को समझना व उनके आधार पर तिथि, माह व वर्ष के स्वरूप को निर्धारित करना सम्भव नहीं है। अतः दैनिक व्यवहार के लिए गणना की सबसे छोटी इकाई से एक वर्ष तक की इकाइयों, मुख्य त्यौहारों, मुहूर्तों, उत्सवों, मौसम, व्यापार, कृषि या उद्योगों से संबंधित भविष्यवाणियों को एक पत्र या पत्रिका के रूप में छापा जाता है। यह पंचांग कहलाता है। पंचांग अधिकतर वार्षिक बनते हैं। कभी-कभी पंच-वर्षीय, दसवर्षीय अथवा पूरी शताब्दी के लिए भी पंचांग बना लिया जाता है। एक पंचांग कई संवतों का सम्मिलित पचांग भी हो सकता है या एक ही गणना पद्धति से बने पंचांग पर अनेक संवतों के चालू वर्षों को भी लिख दिया जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभाजित हैं : प्रथम अध्याय में काल गणना का संक्षिप्त इतिहास, इकाइयां व विभिन्न चक्र यहां दिए गए हैं, इसमें विश्व में पंचांग व काल गणना के विकास का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए भारतीय गणना-पद्धति के इतिहास व उस पर विदेशी प्रभाव का वर्णन किया गया है। भारतीय काल-गणना में क्या अपना है व किन तत्त्वों पर विदेशी प्रभाव है इस

संबंध में विदेशी व स्वदेशी विद्वानों के विचार दिये गए हैं। इस अध्याय में भारतीय काल-गणना के चक्रों का उल्लेख है जो अनेक भारतीय संवतों का आधार रहीं है। इसमें पंचवर्षीय चक्र, सप्तर्षि चक्र, बृहस्पति काल (चक्र), परशुराम का चक्र व ग्रहपरिवर्ती चक्र का उल्लेख है। द्वितीय अध्याय में धर्म चरित्रों से संबंधित संवत् है। इसमें ऐसे संवतों का उल्लेख है जो अनेक सम्प्रदायों के धर्म-नेताओं अथवा देवी-देवताओं की जीवन-घटनाओं से जुड़े हैं। इनमें बहुत से आज भी प्रचलित हैं। परन्तु वे धर्मकार्यों के लिए प्रयोग होते हैं, तथा जिस सम्प्रदाय से संबंधित हैं उस सम्प्रदाय के मानने वालों तक ही सीमित हैं। इसके अतिरिक्त इनका विशेष महत्त्व नहीं है। तृतीय अध्याय में ऐतिहासिक घटनाओं से आरम्भ होने वाले संवत् हैं, इसमें ऐसे संवतों का उल्लेख किया गया है जो भारतीय इतिहास की ऐसी घटनाओं से आरम्भ होते हैं, जिनकी प्रामाणिकता इतिहास के दृष्टिकोण से निश्चित की जाती है। यद्यपि इन घटनाओं के संबंध में भारी मत-भिन्नता है फिर भी विभिन्न साक्ष्यों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह माना जाता है कि वे सम्भावित तिथि के करीब घटित अवश्य हुईं। इस अध्याय में वर्णित संवतों में अधिकांश के आरम्भ का उद्देश्य अपने आरम्भ करने वाले राजा की राजनैतिक प्रभुसत्ता दर्शाना है। कुछ संवतों के आरम्भ का उद्देश्य राजनैतिक शक्ति-प्रदर्शन के साथ-साथ धार्मिक प्रचार भी रहा है। चतुर्थ अध्याय में अनेक प्रमुख संवतों के ऐसे तत्वों का उल्लेख है जो सब में एक जैसे ही ग्रहण किए गए हैं। इसमें वर्तमान गणना-पद्धति के आधारभूत तत्त्वों चन्द्र मान, सौर मान, चन्द्र-सौर मान का उल्लेख हुआ है तथा भारत में वर्तमान समय में प्रचलित कुछ पंचांगों का वर्णन किया गया है। वर्तमान हिन्दू पंचांगों की क्या पद्धति व अवस्था है, इसका भी वर्णन हुआ है। पंचम अध्याय में ऐसे कारणों का जिक्र किया गया है, जिन्होंने भारत में संवतों की विशाल संख्या को जन्म दिया। साथ ही कुछ ऐसे तथ्य भी दिए हैं जो इन संवतों की संख्या को सीमित कर देने के लिए उत्तरदायी हैं। भारत सरकार ने शक संवत् को राष्ट्रीय पंचांग के रूप में ग्रहण करते समय उसके पूर्व प्रचलित स्वरूप में किस प्रकार परिवर्तन किया है, इसका उल्लेख है। साथ ही वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग की आलोचना दी गयी है। "निष्कर्ष" नामक अध्याय में इस संदर्भ में सुझाव दिए गए हैं कि वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग में किस प्रकार के सुधार किए जायें जिससे कि वह भारत राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर सके। भारतीय राष्ट्रीय संवत् का स्वरूप क्या हो—इस पर भी विचार किया गया है। परिशिष्ट में दी तालिकायें हैं, जिनमें भारत में प्रचलित हुए संवतों के आरंभिक

वर्ष ईसाई संवत् में दिए गए हैं तथा विभिन्न पंचांगों के आधार पर संवतों के वर्तमान प्रचलित वर्ष दिए गए हैं, जो संवत् अब प्रचलन से बाहर है उनके अनुमानित वर्तमान वर्ष दिए गए है।

प्रस्तुत शोध प्रवन्ध का उद्देश्य भारतीय संवतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा गणना-पद्धति के विकास का अध्ययन करना है। भारतीय इतिहास में प्रचलित हुए विभिन्न संवतों ने इतिहास को किस प्रकार प्रभावित किया तथा वर्तमान समय में भारतीय परिस्थितियों के अनुसार किस प्रकार की गणना-पद्धति व संवत् विकसित किया जाये जिससे कि वह भारत की राष्ट्रीय एकता में सहायक हो तथा इतिहास-लेखन व प्राचीन इतिहास के अध्ययन में सहायक हो सके—इन उद्देश्यों को लेकर यह शोध प्रबन्ध लिखा गया है।

मैं अपने इस शोधकार्य के लिए सर्वप्रथम पूज्य दादाजी श्री भगवत् प्रसाद शर्मा को धन्यवाद देती हूं जिनकी प्रेरणा व आशीर्वाद से मैं यह शोधकार्य करने मैं समर्थ हुई। मैं डॉ० एस० के० शर्मा सहायक प्राध्यापक, पन्तनगर विश्वविद्यालय, श्रीमती शशी कान्ता, श्री अनिरुद्ध शर्मा, श्री राजीव शर्मा व श्री अजय शर्मा को धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने विषय से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त करने, अनुवाद करने तथा शोध प्रबन्ध के टाइप कराने में मेरी महत्वपूर्ण सहायता की है। मैं डॉ० डी० एस० त्रिवेद, डॉ० वीरेन्द्र वर्मा, डॉ० सत्यस्रवा एवं डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूं, जिनके द्वारा निर्देशित पुस्तकों व शोध-पत्रों से मुझे महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुई तथा इनके स्वयं लिखित ग्रंथों व शोध-पत्रों से भी विभिन्न संवतों के संबंध में मुझे जानकारी मिली है। मैं अपने परिवार के उन सभी सदस्यों विशेषकर डॉ० बी० डी० शर्मा (मेरे श्वसुर) व श्रीमती राजबाला शर्मा के प्रति कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मेरे अनेक पारिवारिक दायित्वों को वहन कर मुझे शोध-कार्य के लिए समय प्रदान किया तथा उनके प्रेरणादायक उद्गारों ने मेरे उत्साह को बढ़ाया।

मैं तिलक पुस्तकालय मेरठ, आर० जी० कॉलिज पुस्तकालय मेरठ, मेरठ विश्वविद्यालय पुस्तकालय मेरठ, गवर्नमेंन्ट पुस्तकालय मेरठ, सैन्ट्रल सैक्रेटेरियेट पुस्तकालय दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय दिल्ली, इण्डियन एग्रीकल्चर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पुस्तकालय दिल्ली, पन्तनगर विश्वविद्यालय पुस्तकालय पन्तनगर, सैन्ट्रल आर्केलाजिकल लायब्रेरी दिल्ली, राष्ट्रीय अभिलेखागार पुस्तकालय नई दिल्ली आदि पुस्तकालयों के कर्मचारी वर्ग को धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने विषय संबंधी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त करने में मेरी सहायता की।

मैं श्रद्धेय डॉ० के० के० शर्मा जी को हार्दिक धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर तथा सभी प्रकार से मेरा मार्गदर्शन व निर्देशन कर शोधकार्य पूरा करने में मेरी सहायता की ।

मैं उन सभी मित्रों व संबंधियों के कार्यों व भावनाओं के प्रति अपना आभार ज्ञापित करती हूं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में लेशमात्र भी मेरे शोधकार्य से संबंधित रहे हैं ।

अन्त में मैं श्री जे० पी० गुप्ता जी को धन्यवाद देती हूं जिन्होंने बहुत लगन व श्रम से इस शोध प्रबन्ध का टंकण किया है ।

I/४३-ए-२८, लाल बाग
गो० ब० पन्त विश्वविद्यालय
पन्तनगर (नैनीताल)
२६३१४५

डॉ० अपर्णा शर्मा

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

काल गणना का संक्षिप्त इतिहास, इकाईयाँ व विभिन्न चक्र

काल गणना का इतिहास

सभ्यता की सीढ़ी पर पहला कदम रखते ही मनुष्य को समय की गणना करने व समय को विभाजित करने की आवश्यकता महसूस हुई। आरम्भ में मनुष्य ने धूप व छाया के सहारे दिन को बाँटा[1]। शनै-शनै दिनों के समूहों, पक्ष, माह, वर्ष आदि का विकास हुआ। गहन अध्ययन व विज्ञान की उन्नति के साथ ही इस क्षेत्र में भी प्रगति हुई तथा समय गणना की सूक्ष्मतम इकाई प्रतिपल, विपल, पल—से युग व महायुग तक विभिन्न इकाईयों का विकास हुआ। विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में यह विकास भिन्न-भिन्न तरीकों से हुआ। सभ्यताओं के परस्पर सम्पर्क व विचारों के आदान-प्रदान ने भी दूसरे के सिद्धान्तों को प्रभावित किया। समय गणना को अधिकाधिक स्पष्ट, व्यवहारिक व वैज्ञानिक बनाने के संदर्भ में अनेक सुधार हुए। आधुनिक समय में विश्व भर में अनेक तत्त्व समय गणना के लिए समान रूप से ही प्रयुक्त होने लगे हैं व कुछ तथ्यों में आश्चर्यजनक भिन्नता है। भारतीय खगोल-शास्त्र का इतिहास भी हजारों वर्ष पुराना है। समय-समय पर इसमें अनेक परिवर्तन किये गये। प्रस्तुत अध्याय में काल गणना के संक्षिप्त इतिहास, विभिन्न काल चक्रों व समय गणना के आधारभूत स्तम्भ चन्द्रमान व सूर्यमान का उल्लेख है।

तिथिक्रम के अध्ययन में पंचांग के विकास का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसका सम्बन्ध समय का हिसाब लगाने, नियमित विभाग करने तथा घटनाओं की तिथि निश्चित करने के लिए किया जाता है। "प्रथम पंचांग मिश्र द्वारा

---

१. 'बाइबिल' के प्रथम अध्याय व्युत्पत्ति में लिखा है, "—और भगवान ने रोशनी को दिन और अंधेरे को रात कहा इस प्रकार शाम और सुबह पहला दिन था।" (व्युत्पत्ति १:५) और इस प्रकार दिनों को गिनते हुए भगवान ने बाइबिल के अनुसार इस संसार की रचना की।

निर्मित हुआ जिसको रोमवालों ने जुलियन पंचांग के लिए विकसित किया तत्पश्चात् ग्रगोरियन पंचांग ने और अधिक उन्नति की।[1]"

विभिन्न कलैण्डर

यूरोप में जूलियन, ग्रगोरियन, फ्रांसीसी क्रान्ति का कलैन्डर, अमेरिका में माया, मैक्सिकन, इन्का व उत्तरी अमेरिका का कलैन्डर, सुदूर पूर्व में प्राचीन काल के हिन्दू कलैन्डर, चीनी कलैन्डर, यहूदी कलैन्डर, इस्लामिक कलैन्डर, मध्य पूर्व का कलैन्डर आदि विभिन्न कलैन्डरों का विकास विश्व के विभिन्न स्थानों पर हुआ।

यूरोप में कलैन्डर सुधार का कार्य रोम से आरम्भ हुआ। पूर्व प्रचलित कलैन्डर को जूलियस सीजर के समय पुनः स्थिर व शोधित किया गया, जिससे इसका नाम जूलियन कलैन्डर पड़ा। इसके बाद जो अन्तर पड़ा उसको पोप ग्रगोरी १३वें ने ठीक किया। अतः कलैन्डर का नाम ग्रगोरियन कलैन्डर पड़ा। वर्तमान समय में ग्रगोरी द्वारा किये गये सुधार पर ही यूरोपियन कलैन्डर आधारित है। वह व्यवस्था १५८२ ई० में की गयी थी, १७८९ में फ्रांसीसी क्रान्ति के समय वास्तील के पतन के बाद फ्रांसीसी कलैन्डर का भी नवीनीकरण किया गया। चार्ल्स गिल्बर्ट रोमे को कलैन्डर सुधार समिति का प्रधान बनाया गया। १७९२ से फ्रांस में फ्रेंच रिपब्लिक कलैन्डर कार्य करने लगा। इसमें ३०-३० दिन के १२ माह तथा ५ दिन उत्सवों व छुट्टियों के लिये थे। अतः वर्ष की लम्बाई ३६५ दिन ही रही तथा लौंद का माह भी ग्रिगोरी कलैन्डर के समान ही रहा, ७ दिन के सप्ताह के स्थान पर दस-दस दिन के ३ उपभागों में माह को बाँट दिया गया। दिनों के नाम पुनः रखे गये। किन्तु, यह कलैन्डर मात्र फ्रांस में ही चला और वह भी बहुत कम समय तक। १८०६ से नैपोलियन ने पुनः ग्रिगोरियन कलैन्डर को अपना लिया।

अमेरिका में माया, मैक्सिकन, इन्का व उत्तरी अमेरिका के कलैन्डरों का विकास हुआ। माया कलैन्डर में भी वर्ष की लम्बाई ३६५ दिन ही है तथा ५२ वर्षीय अर्थात् १८,९८० दिन का चक्र है। मैक्सिको कलैन्डर मैक्सिको की घाटी से निकला है और माया कलैण्डर के ही समान है। चक्र भी धार्मिक माया कलैन्डर के समान ही है परन्तु उसका नाम माया न होकर टोहना पोहली है तथा महीनों के नामों में माया कलैन्डर से भिन्नता है। इन्का कलैन्डर के सम्बन्ध में इतिहासकारों का विश्वास है कि पेरू के इन्का लोगों का एक कलैन्डर था

---

१. 'इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका', वोल्यूम तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ५९५

जिसमें चन्द्र सौर दोनों से गणना होती थी, १२ चन्द्र मास थे, समय की गणना दसम्लव में की जाती थी। उत्तरी अमेरिका के कलैन्डर में समय की गणना के लिए छड़ियों का प्रयोग किया जाता था। दिन प्रमुख इकाई था जिसे सभी जन-जातियां स्वीकार करती थीं। वर्ष को कभी चार व कभी पांच मौसमों में बांटा जाता था। वर्ष का आरम्भ पूर्णिमा से माना जाता था।

सुदूर पूर्व में हिन्दू व चीनी कलैन्डरों का विकास हुआ। हिन्दू कलैन्डर का विकास हजारों वर्ष पूर्व से पूर्ण विकसित अवस्था में है। वैदिक युग में ही पंच-वर्षीय चक्र का आरम्भ किया गया जिसमें नियमित दिन माह व सप्ताह का क्रम था। इसके पश्चात् बृहस्पति चक्र, परशुराम का चक्र, सप्तर्षि चक्र आदि विभिन्न पद्धतियोंका विकास पंचांग व्यवस्था के संदर्भ में किया गया। सिद्धान्त ज्योतिष का विकास हुआ। सूर्य सिद्धान्त द्वारा वर्ष की लम्बाई पुनः निर्धारित की गयी। अब आधुनिक समय में ही १९५५ में भारत सरकार द्वारा कलैन्डर सुधार के लिए नियुक्त की गयी समिति की रिपोर्ट में सम्पूर्ण भारतीय गणना पद्धति का शोधित रूप प्रस्तुत किया गया है जिसको भारतीय राष्ट्रीय कलैन्डर के रूप में ग्रहण किया गया है। चीनी कलैन्डर का आरम्भ ई० से १४०० वर्ष पूर्व से माना जाता है। इसमें वर्ष ३६५, १/४ दिन का माना गया, १२ माह का वर्ष होता था तथा प्रत्येक १९ वर्ष बाद एक अतिरिक्त माह होता था, अर्थात् १३ माह का वर्ष होता था।

यहूदी कलैन्डर चन्द्रसौर है। इसके वर्ष सौर व माह चन्द्रीय हैं। यह १९ वर्षीय चक्र है। अतः तीसरा, छठा, आंठवा, ग्याहरवां, चौदहवां, सत्रहवां व उन्नीसवां वर्ष लौंद का होता है। साधारण वर्ष में ३५३, ५४, ५५ दिन तथा १२ चन्द्रमाह होते हैं जबकि लौंद के वर्ष में ३८३, ८४, ८५ दिन तथा १३ चन्द्रमाह होते हैं।

इस्लामिक कलैन्डर (हिज्रा कलैन्डर) पूर्ण रूप से चन्द्रीय पद्धति पर आधारित है जिसके साधारण वर्ष में ३५४ तथा लौंद के वर्ष में ३५५ दिन होते हैं। सऊदी अरब व ईरान आदि में यह राजकीय संवत् है। विश्व के अन्य स्थानों पर जहां भी इस्लाम के अनुयायी रहते हैं यह धार्मिक पंचांग के रूप में प्रचलित है।

मिस्र व ग्रीस के अतिरिक्त मध्य पूर्व के सभी देशों में चन्द्रसौर कलैन्डरों का प्रचलन है। इस क्षेत्र से २७०० ई० पूर्व तक की गणना की तालिकायें पायी गयीं हैं। इन तालिकाओं से सिद्ध होता है कि इनके निर्माताओं ने मानव की तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार समय का विभाजन किया था।

पचांग का विकास

पंचांग का अर्थ "नागरिक जीवन में सुविधा, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, सामाजिक व धार्मिक कार्यों की व्यवस्था के लिये दिनों के सामूहिकीकरण की प्रक्रिया से है"[1]। पंचांग की आवश्यकता प्रत्येक ऐसी सभ्यता के लिए सर्वमान्य रूप से है जो कृषि, व्यापार तथा घरेलू अथवा अन्य कारणों को नापना चाहती है। भारत में वैदिक युग में पंचांग बनाना आरम्भ हुआ। वेदों, सूत्रों व ब्राह्मण साहित्य से इस संदर्भ के तथ्य उपब्लध होते हैं। भारत में हिन्दी पंचांग विज्ञान के विकास की चार अवस्थायें हैं—

१. वेदांग ज्योतिष का समय
२. वेदांग ज्योतिष से सिद्धान्त ज्योतिष तक का समय
३. आरम्भिक सैद्धान्तिक युग
४. अन्तिम सैद्धान्तिक युग

भारतीय खगोल शास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों का विकास वैदिक युग में हुआ साहित्य की एक प्रथक शाखा के रूप में यह विज्ञान रहा। इसी को वेदांग ज्योतिष कहा जाता है। भारत में वेदांग ज्योतिष के समय पंचवर्षीय चक्र का प्रयोग होता था। ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार पंचवर्षीय चक्र जो कि माह के श्वेत अर्द्ध से आरम्भ होता है तथा पूस के कृष्ण पक्ष में समाप्त होता है।[2] ३६६ दिन, १ वर्ष, ६ ऋतुएं, २ आयन, १२ माह सौर्य मानी जानी चाहिये। इन्हें पांच बार गिनने पर एक चक्र बनता है।[3] परन्तु इस व्यवस्था के कुछ दोष थे जिससे इसे त्याग दिया गया, ३०० ई० पूर्व से ३०० ई० तक पंचांग व्यवस्था में कुछ सुधार हुआ तथा सिद्धान्त ज्योतिष का विकास हुआ। ब्राह्मण वर्ष बसंत से, क्षत्रिय ग्रीष्म से व वैश्य पतझड़ से आरम्भ होता था।[4] पश्चिमी भारत के सातवाहन शासकों के गुहा लेख इन्हीं पंचांगों में है। इनकी गणना पद्धति व

---

१. 'इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका', वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो (जापान) १९६७, पृ० ५९५
२. डा० आर० समाशास्त्री, 'वेदांग ज्योतिष', गवर्नमैण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर, १९३६, पृ० २
३. वही, पृ० ३०
४. पी० सी० सेन गुप्त, 'एंशियेंट इण्डियन क्रोनोलोजी', कलकत्ता यूनीवर्सिटी कलकत्ता, १९४७, पृ० २०९

दिनों की संख्या आदि किस प्रकार थी यह ज्ञात नहीं है। इन लेखों में ग्रीष्म, वर्षा व हेमंत तीन ही ऋतुओं का उल्लेख है। प्रत्येक ४-४ माह की है।[1] ग्रीस के लोग १८ वर्षीय चक्र का प्रयोग करते थे, आठ वर्षीय चक्र में तीन लौंद के वर्ष होते थे। इस पंचांग की शुद्धि के लिए ग्रीस के लोगों ने १९ वर्षीय चक्र का भी विकास किया। पूरे ग्रीक साम्राज्य में भी एक समान गणना पद्धति प्रचलित नहीं थी।[2] ईसा की दूसरी सदी के करीब भारतीय खगोलशास्त्रियों द्वारा शक संवत् का प्रयोग किया जाने लगा तथा अधिकांश अभिलेखों की तिथि भी इसी में अंकित की जाने लगी।

पश्चिम में खगोल शास्त्र के क्षेत्र में हुयी नयी खोजों ने भारतीय खगोल-शास्त्र को भी प्रभावित किया, ४३२ बी० सी० में मैटन चक्र[3] की खोज हुयी। तीसरी शताब्दी के अन्त तक गणित के आधार पर खगोल शास्त्र का विकास कर लिया गया। ग्रीस में ज्योतिष विज्ञान की प्रगति हुई। इसे ग्रीस व बेबीलोनिया का खगोल शास्त्र कहा जाता है। इसी पद्धति पर पंचांगों का निर्माण किया गया। भारत में भी कुषाण राजाओं के अभिलेखों में इसी पंचांग का प्रयोग हुआ। परन्तु भारतीय पंचांग व्यवस्था ग्रीस व बेबीलोन की पंचांग व्यवस्था[4] से काफी भिन्न थी तथा भारत में पूर्व प्रचलित पंचवर्षीय चक्र से अधिक सूक्ष्म व त्रुटिरहित थी। इसी को सैद्धान्तिक पंचांग व्यवस्था कहा गया है। यह चन्द्रसौर्य वाला पंचांग था। पाराशर संहिता, कश्यप संहिता, भृगुसंहिता, भागवत् पुराण, दिव्यावदान आदि ग्रन्थों में भारतीय तिथि गणना की पद्धति का उल्लेख मिलता है। पी० सी० सैन के अनुसार सैद्धान्तिक पंचांग की खोज का श्रेय आर्य-भट्ट को जाता है।[5] जबकि अपूर्व कुमार चक्रवर्ती आर्य भट्ट से काफी पहले सैद्धान्तिक पंचांग का प्रचलन मानते है।[6] गुप्त काल में पंचांग निर्माता

---

१. अपूर्व कुमार चक्रवर्ती, 'इण्डियन कलैन्डरिकल साइंस', कलकत्ता १९७५, पृ० १९

२. वही, पृ० २०

३. वही, पृ० ३०।

2. Calendarical Science.

५. पी० सी० सैन गुप्त, 'एंशियेंट इण्डियन क्रोनोलॉजी', कलकत्ता, १९४७, पृ० ३८-३९।

६. अपूर्व कुमार चक्रवर्ती, 'इण्डियन कैलेण्डरिकल साइंस', पृ० ३१।

सैद्धान्तिक नियमों का ही प्रयोग करते थे। सैद्धान्तिक पंचांग की आरम्भिक स्थिति में चैत्र पद्धति का प्रयोग करते थे। साथ ही इस समय तक कलियुग ने भी निश्चित रूप धारण कर लिया था।

भारतीय ज्योतिषियों में सैद्धान्तिक पंचांग के संदर्भ में दो प्रमुख बातों पर मत भिन्नता है। प्रथम—ग्रहण की वास्तविक स्थिति व द्वितीय—नक्षत्रीय माध्य गति का कलैन्डरीय उद्देश्यों के लिए प्रयोग। आरम्भ में ज्योतिष सिद्धान्त में चैत्र पद्धति का प्रयोग था, बाद में उसमें रैवतक का प्रयोग होने लगा और उसके बाद के समय में जब महाविषुव इन दोनों से ही हट गया तब भी भारतीय ज्योतिषी चैत्र अथवा रैवतक पद्धति का ही प्रयोग करते रहे सम्भवतः इसका कारण विषुव का अपूर्ण ज्ञान था। इसका सीधा परिणाम यह है कि चन्द्र व सौर्य दोनों के ही वर्ष और मास तथा मलमासों में अन्तर आ गया है।[1] इस कारण रैवतक व चैत्र सिद्धान्तों से अलग-अलग गणना आरम्भ हुई।

अनेक खगोल शास्त्रियों के हाथों में ज्योतिष की स्थिर बातें बदलती रहीं और थोड़े-थोड़े विरोध के साथ अनुमानित की जाती रही। भिन्न-भिन्न ज्योतिषियों ने विभिन्न सुधारों का प्रयोग किया। आधुनिक सूर्य सिद्धान्त के निर्माण से इस स्थिति में थोड़ा सुधार आया। सैद्धान्तिक पंचांग के बाद इस क्षेत्र में अनेक सुधार हुये, १० वीं शताब्दी के अन्त तक आधुनिक सूर्य सिद्धान्त का विकास हो गया। इसके साथ ही साथ मुस्लिम शासकों ने चन्द्र पंचांग लागू किया। तत्पश्चात् भारत में पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से आधुनिक वैज्ञानिक खगोल शास्त्र का भारत में प्रारम्भ हुआ, १९ वीं शताब्दी में अन्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुधारों के समान ही पंचांग सुधार आन्दोलन भी चलाये गये। इस समय के सुधारों की एक विशेषता यह रही कि न केवल खगोल शास्त्रियों ने पंचांग निर्माण का कार्य किया बल्कि धर्म नेताओं ने भी उसमें भाग लिया। "ज्योतिष गणना कार्य में सुविधा के लिए कारणा नाम की तालिकायें बनाई गई इनमें से दो तालिकायें मकरन्द तथा रामविनोद जो सूर्य सिद्धान्त पर आधारित है, अब भी बहुतायात में पंचांग निर्माताओं द्वारा प्रयोग की जाती है, १० वीं शताब्दी ए० डी० में आर्य भट्ट द्वितीय द्वारा **वाक्य करन** तथा **करन प्रकाश** ज्योतिष के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की गई जिनका प्रयोग दक्षिण भारत के कुछ भागों तथा मालवार में बहुतायात से होता है।"[2]

---

१. अपूर्व कुमार चक्रवर्ती, 'इण्डियन कैलेण्डरिकल साइंस', कलकत्ता, १९७५, पृ० ३६।

२. वही, पृ० ४४।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण इस पंचांग की शुद्धता पर पुनः प्रश्न चिन्ह लगाये गये तथा सुधार की आवश्यकता अनुभव की गई। १९ वीं शताब्दी में पुरानी पंचांग तालिकाओं के स्थान पर नई पंचांग तालिकाओं का प्रयोग किया गया। एस० दीक्षित, बी० बी० केतकर तथा बी०जी० तिलक इन नवीन तालिकाओं के प्रणेता थे।

१९०५ में जगदगुरुशंकराचार्य द्वारा बम्बई में एक सभा का आयोजन इस संदर्भ में किया गया कि नई अथवा पुरानी पद्धति में से किसको ग्रहण किया जाये, इनमें दर्शाया गया कि पुरानी व नई तिथियों तथा तारों सम्बन्धी संक्रान्तियां चैत्र विधि के अनुसार सब पंचांगों में हों। १९१० में ट्रावनकोर के एक शहर में सभा आयोजित की गई। इसमें भी विद्वान एक मत नहीं हो सके। बनारस के एम० एम० सुधाकर द्विवेदी ने पारम्परिक सूर्य सिद्धान्त की विधियों का धार्मिक कार्यों के लिए प्रयोग किया। शक संवत् के आरम्भ से भारत में पंचांगों पर क्षेत्रीय प्रभाव रहा है। विभिन्न स्थानों पर वर्ष का आरम्भ विभिन्न अवसरों से किया जाता है। सिंधु व कन्नौज के लोग मार्ग शीर्ष की अमावस्या से, मुलतान व काश्मीर के लोग चैत्र की अमावस्या से वर्ष आरम्भ करते हैं।[1] प्रायः भारत के प्रत्येक भाग में क्षेत्रीय पंचांग प्रचलित रहा। इनमें समानता व एकता का अभाव था प्रत्येक क्षेत्रीय पंचांग की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी। उन पर स्थानीय रिवाजों व प्रथाओं का प्रभाव था। सभी क्षेत्रीय पंचांग, वर्ष आरम्भ, महीनों के नाम आदि में भिन्न थे। भारतीय पंचांगों के इस गहन विवाद के कारण भारत सरकार ने १९५२ में मेघनाथ साहा की अध्यक्षता में पंचांग सुधार समिति की स्थापना की। इस समिति ने विभिन्न क्षेत्रीय पंचांगों का अध्ययन कर एक नये राष्ट्रीय पंचांग का निर्माण किया। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक पंचांग निर्माण करना था। भारत का राजपत्र, आकाशवाणी से समाचार प्रसारण, भारत सरकार द्वारा जारी किया गया कलैन्डर तथा भारत सरकार द्वारा नागरिकों को सम्बोधित पत्र आदि के संदर्भ में इस पंचांग का निर्माण किया गया।[2]

राजा जय सिंह का नाम भी भारतीय ज्योतिष विज्ञान के इतिहास में

---

१. अल्बेरूनी, 'अल्बेरूनी का भारत', अनुवादक संतराम, भाग-३ प्रयाग, १९२८, पृ० १०

२. वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ, 'भारत' भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, १९७९ पृ० २५।

अविस्मरणीय है। उन्होंने दिल्ली, वाराणसी, मथुरा, उज्जैन तथा जयपुर में यंत्र, जिन्हें जन्तर मन्तर कहा जाता है, बनवाये।[1]

भारतीय ज्योतिष पर विदेशी प्रभाव

पूर्वी व पाश्चात्य ज्योतिष विज्ञान के अनेक मौलिक तत्त्वों में समानता के कारण विद्वानों के लिए यह निश्चित करना कि कौन तत्त्व कहां विकसित हुआ तथा पूर्व व पश्चिम में से किसने दूसरे को अधिक तत्व दिये, विद्वानों के लिए कठिन समस्या बना रहा है। इन समानताओं को देखकर अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इस प्रकार के विचार दिये कि भारत ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में पूर्णतया विदेशों का ऋणी है तथा यहां अपना मौलिक कुछ भी विकसित नहीं हुआ। अतः भारतीय ज्योतिष तथा पंचांग के इतिहास का अध्ययन करते समय यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय तथ्य हो जाता है कि इसमें विदेशी योगदान क्या है और स्वयं भारतीयों द्वारा किया गया प्रयास कितना है। इस सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों द्वारा दिये गये विचार इस प्रकार हैं :

शंकर बाल कृष्ण दीक्षित[2] ने भारतीय ज्योतिष के अनेक तत्वों का विस्तृत अध्ययन किया तथा चार विद्वानों कोलब्रुक, ह्विटने बर्जेस तथा थीबों के मतों की समीक्षा की है। इसमें कोलब्रुक[3] के विचारों को मध्यम मार्ग का कह सकते हैं क्योंकि क्रान्तिवृत्त के १२ भाग करने की पद्धति को पहले ग्रीक से हिन्दुओं ने ग्रहण किया, फिर हिन्दुओं से अरबों ने ग्रहण किया, कोलब्रुक का ऐसा मानना है। साथ ही गोल यन्त्र की कल्पना के क्षेत्र में हिन्दुओं के अग्रज होने की सम्भावना भी कोलब्रुक ने मानी है। "गोल यन्त्र की कल्पना या तो हिन्दुओं ने ग्रीक लोगों से सीखी या ग्रीक लोगों ने हिन्दुओं से ली।"[4] इसके साथ ही कोलब्रुक का विश्वास है कि भारतीयों ने ग्रीक लोगों से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर अपने अपूर्ण ज्ञान को बढ़ाया। व्हिटने[5] ने भारतीय ज्योतिष को पूर्णतया

---

१. अपूर्व कुमार चक्रवर्ती, 'इण्डियन कैलेण्डरिक्ल साइंस', कलकत्ता, १९७५, पृ० ४४।

२. बाल कृष्ण दीक्षित, 'भारतीय ज्योतिष', अनु० शिवनाथ झारखण्डी, प्रयाग, १९६३, पृ० ६४५-८४।

३. बाल कृष्ण दीक्षित द्वारा उद्धृत, पृ० ६४९।

४. बाल कृष्ण दीक्षित, 'भारतीय ज्योतिष', १९६३, पृ० ६४९।

५. बाल कृष्ण दीक्षित द्वारा उद्धृत पृ० ६५१।

विदेशी माना है। इनके मत में हिन्दू पद्धति नैसर्गिक नहीं है तथा पूर्णतः कृत्रिम है। ह्विटने के अनुसार हिन्दुओं में स्वभाव से ही विचार करने, अवलोकन करने वस्तुभूत बातों का संग्रह करने और उनसे निष्कर्ष निकालने की क्षमता इतनी है ही नहीं कि वे मौलिक रूप से इस प्रकार के विज्ञान का विकास कर पाते। बर्जेस[1] के विचार इस सम्बन्ध में ह्विटने से कुछ उदार है। बर्जेस ने ह्विटने द्वारा हिन्दुओं की भर्त्सना को अच्छा नहीं माना। ह्विटने का कहना है कि हिन्दुओं ने अपने ज्योतिष गणित और जातक मूल रूप में ग्रीकों से लिए और उनका कुछ अंश अरेबियन, खाल्डियन और चीनियों से लिया। उसके अनुसार ह्विटने ने हिन्दुओं के साथ न्याय नहीं किया और ह्विटने ने उचित मात्रा से अधिक ग्रीक लोगों को मान दिया है। इतना ही नहीं बर्जेस का मत है कि न केवल हिन्दुओं ने ग्रीकों से इस शास्त्र के मूल तथ्यों को लिया बल्कि ग्रीकों ने ही हिन्दुओं से इस शास्त्र की शिक्षा पाई। क्रान्तिवृत्त के १२ भाग, जातक की कल्पना, ग्रहों के नामों से वारों के नाम रखना आदि का श्रेय बर्जेस ने हिन्दुओं को ही दिया है। दर्शन, धर्म और जन्मान्तर के सम्बन्ध में जिस प्रकार हिन्दू शिष्य नहीं शिक्षक थे उसी प्रकार ज्योतिष क्षेत्र में भी यही विश्वास बर्जेस ने किया है। थीबो[2] का भारतीय ज्योतिष पर विदेशों के प्रभाव के सम्बन्ध में विचार है कि ग्रीक से हिन्दुओं ने ज्योतिष का ज्ञान लिया अवश्य परन्तु साथ ही उत्तम हिन्दू ग्रन्थों की पद्धति ग्रीक ग्रन्थों से वैसी की वैसी ही ग्रहण न करके उसमें नये सुधारों को अपनाया गया है अर्थात् थीबो के विचार में भारतीय ज्योतिष ग्रीक व भारतीय ज्ञान का मिश्रण है।

उपरोक्त चारों विद्वानों के विचारों का अध्ययन कर शंकर बाल कृष्ण ने कुछ निष्कर्ष दिये है जो संक्षेप में इस प्रकार हैं : सर्व प्रथम बाल कृष्ण इस बात का विरोध करते हैं कि वेध परम्परा, वेध कौशल तथा अवलोकन की शक्ति भारतीयों में नहीं थी, यह आरोप मिथ्या है : "वेधसिद्ध बाते भारतीयों को सूझ ही नहीं सकतीं। यह कहना व्यर्थ सिद्ध होता है"।[3] वर्षमान, मन्दोच्च और पात, मन्दकर्ण विक्षेपों के मान, अयन चलन, रविचन्द्र परममन्द फल, पांचों ग्रहों के परममन्द और और शीघ्रफल, क्रान्तिवृत्तयिक्त्व, सूर्यचन्द्र लम्बन,

---

१. बाल कृष्ण दीक्षित द्वारा उद्धृत, 'भारतीय ज्योतिष', अनु० शिवनाथ झारखण्डी, प्रयाग, १९६३, पृ० ६५६।

२. वही, पृ० ६५९।

३. वही, पृष्ठ ६६८।

उदयास्त, कालांश आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विकास भारतीयों ने स्वयं किया, विदेशों से इन्हें नहीं सीखा, बाल कृष्ण का ऐसा विश्वास है कि प्रतिवृत्त पद्धति को हमने हिर्पाकस तथा टालमी के ग्रन्थों से ग्रहण किया है।[1] बाल कृष्ण आगे कहते है, "रविचन्द्र स्पष्टीकरण और पंचग्रह स्पष्टीकरण ये दो ज्योतिष में महत्व के विषय है। इनका ज्ञान हिपार्कस के पहले पाश्चात्यों को था ही नहीं, यह सभी यूरोपियन ग्रन्थकार स्वीकार करते हैं। मन्दफल संस्कारपूर्वक चन्द्र सूर्य स्पष्टीकरण करने की प्रक्रिया रोमक सिद्धान्त के यहां आने के पूर्व रचित पुलिश सिद्धान्त में दी हुई है। इस पर से यह स्पष्ट अवगत होता है कि वह हिपार्कस के पूर्व सिद्ध की गयी थी। अतः यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि हमने ग्रीक लोगों से क्या लिया ?"[२] केन्द्र संज्ञा महत्वपूर्ण तथ्य है और इसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसको भारतीयों ने यवनों से प्राप्त किया बालकृष्ण का इस सम्बन्ध में कथन है : "यदि परकीयों से हम लोगों को कुछ मिला भी हो तो ग्रीक अथवा बैबिलोनियन लोगों से हमें उपर्युक्त नियम का दिग्दर्शन मात्र हुआ था, दूसरा कुछ नहीं मिला। वेधप्राप्त बातों इत्यादि का कोई क्रमबद्ध ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हुआ। जितना कि यूरोपियन लोग समझते है इतने हम परकीयों के मुखापेक्षी नहीं रहे है।"[3] बाल कृष्ण का विचार है कि आवागमन के अपर्याप्त साधनों तथा अन्य बहुत सी कठिनाईयों के कारण प्राचीन काल में इस प्रकार के ज्ञान के आदान-प्रदान की सम्भावना बहुत कम थी : "प्राचीन काल में जब ज्योतिष शास्त्र जानने वाले विद्वानों से भेंट होना प्राय : असम्भव मा था और भेंट हो भी गयी तो भाषान्तर रूपी अड़चन का उल्लंघन करना तो साम्भाव्य बातों के परे था, तब कुछ स्थूल विषयों को छोड़कर एक दूसरे से शास्त्रीय सूचना मात्र मिलने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था ?"[४]

बाल कृष्ण के समस्त विवेचन का मूल यही है कि भारतीयों ने स्वतन्त्र रूप में ज्योतिष का विकास किया है, अनेक महत्व के तत्व जिनको भारत में वेध किया गया पाश्चात्य ज्योतिष सिद्धान्तों से किसी भी प्रकार कम महत्व के नहीं

---

१. शंकर वाल कृष्ण दीक्षित, 'भारतीय ज्योतिष', अनु० शिवनाथ झारखण्डी, प्रयाग, १९६३, पृ० ६६९।
२. वही, पृ० ६७०।
३. वही, पृ० ६७१।
४. वही, पृ० १७२।

हैं। भारत में ज्योतिष का विकास इससे काफी पहले हो गया था, जबकि विदेशों से इस सम्बन्ध में आदान-प्रदान आरम्भ हुआ। यद्यपि यवनों से प्राप्त ज्ञान भी महत्वपूर्ण है और भारतीय विद्वानों ने उसे स्वीकार किया है, परन्तु इस कारण भारत में विकसित हुए ज्ञान का महत्व कम नहीं हो जाता वरन् भारतीयों का निजी प्रयास भी महत्वपूर्ण व सराहनीय है।

गौरंगनाथ बनर्जी ने कोलब्रुक, एस० डेविस, बैंटले, जे० वालेन, बेले डेलाम्बर के मतों का अध्ययन कर इस सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार दिया है, "यहां यह कहना काफी है कि हिन्दुओं ने अपना विज्ञान स्वतन्त्र रूप से विकसित किया, किन्तु उसमें वैज्ञानिकता आंशिक रूप से इस कारण से आयी कि उसका सम्पर्क यूनानियों से हुआ।"[1] "इन सब बाहरी संकेतों तथा सम्भावना के भीतरी तर्कों को मिलाकर देखने से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि भारतीयों की वैज्ञानिक खगोल विद्या यूनानी विज्ञान से फूटी हुयी एक शाखा है।"[2] गौरंगनाथ बनर्जी के विचारों को भी मध्यम मार्गी ही कहा जा सकता है। नक्षत्र क्रम अथवा चन्द्रीय चक्र का विकास भारत में ही हुआ जबकि राशी-क्रम को भारतीयों ने यूनानियों से ग्रहण किया—बनर्जी ने ऐसा विश्वास व्यक्त किया है।

भारतीय ज्योतिष में जिन तत्वों पर विदेशी होने की सम्भावना की जाती है वे इस प्रकार हैं।

(१) "चन्द्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताईस या अट्ठाईस नक्षत्रों में बांटा जाना। थोड़ा हेरफेर के साथ ऐसा विभाजन हिन्दूओं की, अरब वालों की और चीनियों की पद्धतियों में है।

(२) "रवि की गति के लिये रवि मार्ग का १२ राशियों में बांटा जाना और प्रत्येक का नाम, इन नामों का अर्थ हिन्दू व यवन दोनों पद्धतियों में एक है।"[3]

(३) "हिन्दू, यवन और अरब की फलित ज्योतिष पद्धतियों में समानता और कहीं-कहीं पूर्ण अभिन्नता से प्रबल धारणा होती है कि

---

१. गौरंग नाथ बनर्जी, 'हेलेनिज्म इन एंशियेण्ट इण्डिया', नई दिल्ली, १९६१, पृ० १४९।

२. वही, पृ० १५०।

३. बरजेस, गोरख प्रसाद द्वारा उद्धत, 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास', लखनऊ, १९५६, पृ० १६६।

प्राथमिक और सारभूत बातों में ये पद्धतियां एक ही मूल से उत्पन्न हुयी है ।

(४) "प्राचीन लोगों को जो पांच ग्रह ज्ञात थे उनके नाम, और उन पर सप्ताह के दिनों का नाम एक होना"[1] ।

चन्द्रमा की गति के लिए रवि मार्ग का २७ या २८ भागों में विभाजन हिन्दुओं में प्राचीन समय से प्रचलित था और पूर्ण विकसित अवस्था में था। सूर्य की गति के लिए रवि मार्ग का १२ भागों में विभाजन (राशी क्रम) भारत में उस समय से प्रचलित था जबकि दूसरे देशों में उसका लेशमात्र भी नहीं पाया जाता था। मंद परिधियों का सिद्धान्त हिन्दुओं में प्रचलित था, अनेक कारण इस धारणा के अनुकूल है। इन तथ्यों के सम्बन्ध में बायो तथा अनेक विद्वानों के मत इसके विरुद्ध होते हुए भी बरजेस ने इनकी मूल उत्पत्ति भारत में ही मानी है।

गोरख प्रसाद ने कोलब्रुक के इस कथन से कि भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शिक्षक थे न कि शिष्य, अपनी सहमति प्रकट की है और भारतीय ज्योतिष को पाश्चात्य से उन्नत माना है।

इस प्रकार भारतीय ज्योतिष पर विदेशी प्रभाव के सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों के आधार पर उन्हें तीन श्रेणी में बांटा जा सकता है। प्रथम वे विचारक हैं जो यह मानते हैं कि भारतीय ज्योतिष पूर्णतया विदेशों से उधार ली गई है। ज्योतिष जैसे शास्त्र को जन्म देने की क्षमता भारतीयों में थी ही नहीं, न ही वे इसके लिए वेध कर सकते थे और न ही इसके जटिल नियमों का बनाना, परखना अथवा प्रयोग में लाने की योग्यता उनमें थी। अतः यह शास्त्र पूर्ण रूप से विदेशों में जन्मा व विकसित हुआ है तथा भारतीयों ने इसे दूसरे लोगों से ही सीखा है। इस वर्ग में ह्विटने के विचारों को रखा जा सकता है। दूसरे दे विचारक हैं जो भारत में ही ज्योतिष की उत्पत्ति मानते हैं तथा उनका विश्वास है कि शास्त्र के मूल तत्वों की उत्पत्ति न कि पश्चिम में बल्कि पूर्व में हुई। पूर्व में उत्पन्न होकर ये सिद्धान्त पश्चिम में गये। इस वर्ग में बरजेस का नाम लिया जा सकता है। तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो इन दोनों के बीच का मार्ग अपनाते हैं। इन विचारकों के मत में ज्योतिष के कुछ तत्वों का विकास भारत में ही हुआ और कुछ को विदेशी ज्ञान के आधार पर पुनः शोधित किया

१. बरजेस, गोरख प्रसाद द्वारा उद्धत, 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास', लखनऊ, १९५६, पृ० १६६।

गया तथा उन्हें अधिक वैज्ञानिक बनाया गया। इस वर्ग में गोरख प्रसाद, शंकर बाल कृष्ण, थीबो, कालब्रुक, व गोरखनाथ बनर्जी के मतों को रखा जा सकता है।

इस समस्त विवेचन से ऐसा जान पड़ता है कि विश्व के विभिन्न स्थानों पर ज्योतिष का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ तथा ग्रहों व नक्षत्रों का निरन्तर लम्बे समय तक एक ही साथ वेध करते रहने से अलग-अलग स्थानों पर विकसित हुए इस शास्त्र के अनेक मूल तत्व एक जैसे ही विकसित हुए और बाद में आवागमन के विकास के साथ इन विभिन्न स्थानों में जन्मी ज्योतिष की एक दूसरे से तुलना कर लोगों ने अपनी-अपनी गलतियों को सुधारने का प्रयास किया तथा संस्कृति के अनेक तत्वों की भांति ज्योतिष के नियमों का भी आदान-प्रदान हुआ। इस स्थिति में भारतीय ज्योतिष को पूर्ण रूप से विदेशों से उधार ली मान लेना अथवा विशुद्ध भारतीय ही कहना उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में हमें मध्यम मार्ग ही अपनाना चाहिए और यह समझना चाहिए कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र मूल रूप में भारत में ही जन्मा, वेधों द्वारा इसके सिद्धान्तों का निर्माण किया गया तथा बाद में इन नियमों को और अधिक दृढ़ करने के लिए हमारे ज्योतिषियों ने विदेशी ज्योतिष का अध्ययन कर कुछ सुधार भी किये हैं।

विश्व में कब और कहां ज्योतिष का आरम्भ हुआ यह निश्चित कर पाना कठिन है। लेकिन भारतीय साहित्य में वैदिक काल से ही ज्योतिष के सिद्धान्तों और उनके प्रयोग की विधि का उल्लेख मिलता है। अतः यह कहना कि भारत ने नक्षत्र क्रम अथवा शशी चक्र जैसे ज्योतिष के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को ग्रीस से ग्रहण किया न्यायोचित नहीं है। भारत में नक्षत्रीय गणना का विकास काफी पहले हो चुका था। बृहस्पति चक्र, परशुराम चक्र व कलियुग सम्वत् इसके स्पष्ट प्रमाण है। हम यह तो नहीं कह सकते कि जहां से इन गणना पद्धतियों का आरम्भ माना जाता है उसी समय से ये गणनायें आरम्भ हुई। परन्तु इतना अवश्य है कि ईसा से शताब्दियों पूर्व से इनका प्रयोग हो रहा था। कलियुग सम्वत् की गणना पद्धति, उसकी वैज्ञानिकता व प्रयोग इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

इस प्रकार भारतीय पंचांग अनेक विदेशी व साम्प्रदायिक प्रभावों से प्रभावित होता हुआ विकास के अनेक स्तरों से गुजरा है लेकिन आज भी अनेक रूपता, स्थानीय प्रभावों व साम्प्रदायिक विभाजनों का शिकार है। पूरे राष्ट्र के लिये एक सर्वमान्य पंचांग का अभाव आज भी भारत में है।

काल गणना के विकास का संक्षिप्त अध्ययन करने के पश्चात् उसके वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए इसकी इकाईयों को देखना अनिवार्य है। समय

की इकाई के संदर्भ में दो मुख्य बातें रहती है : प्रथम कितना सूक्ष्म से सूक्ष्म इकाई का विभाजन हम प्राप्त कर पाते हैं तथा इसके साथ ही समय के अनन्त परिमाप को बांधने के लिए बड़ी-से-बड़ी इकाई क्या रहती है। भारत की प्राचीन काल गणना में इन दोनों ही तथ्यों पर पर्याप्त बल दिया गया है।

डॉ० डी० एस० त्रिवेद ने अपनी पुस्तक **इण्डियन क्रोनोलोजी** में भारत की प्राचीन समय गणना की दो पद्धतियों का उल्लेख किया है : प्रथम के अनुसार[1] सर्वाधिक सूक्ष्म इकाई **परमाणु** है।

२ परमाणु	=	१ अणु
३ अणु	=	१ त्रसारेणु
३ त्रसारेणु	=	१ त्रुटि
१०० त्रुटि	=	१ तत्पर
३० तत्पर	=	१ निमेष
३ निमेष	=	१ क्षण
६ क्षण	=	१ कास्ठा (३.२ सैकिंड)
१५ काष्ठा	=	१ लघु
१५ लघु	=	१ नाड़िका
२ नाड़िका	=	१ मुहूर्त (४८ मिनट)
७, १/२ नाड़िका	=	१ प्रहर या यम
४ यम	=	१ दिन या रात (१२ घण्टे)
८ यम	=	एक दिन व एक रात (२४ घण्टे)
१५ दिन	=	१ पाख (पक्ष)
२ पाख	=	१ माह या १ पित्र दिन (अमावस्या)
२ माह	=	१ ऋतु
६ माह	=	१ आयन (दक्षिणायन रात तथा उत्तरायण देवों का दिन है)
२ आयन	=	१ वर्ष (देवों का एक रात दिन)
१२००० देववर्ष	=	१ चतुर्युग (१२०० वर्ष कलियुग, २४०० वर्ष द्वापर, ३६०० वर्ष त्रेता युग, ४८०० वर्ष सत युग)

१. डॉ० डी० एस० त्रिवेद, 'इण्डियन क्रोनोलोजी', बम्बई १९६३, पृ० १

१००० चतुर्युग	=	ब्रह्मा का एक दिन (ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष मानी गयी है)
१०० चतुर्युग	=	१४ मनु

दूसरी पद्धति इस प्रकार है[1] :

६० प्रतिपल	=	१ टिपल
६० विपल	=	पल (विनाडिका)
६० पल	=	१ घाटी, नाड़िका या दण्ड
२ घाटी	=	१ मुहूर्त

पाराशर संहिता, कश्यप संहिता, भृगु संहिता, मय संहिता, पालकाव्य महापाठ, सूर्य सिद्धान्त, वायु पुराण, भगवत् पुराण, द्विव्यावदान, समरांगण सूत्रधार, कौटिल्य अर्थशास्त्र, सुश्रुत व विष्णु धर्मोत्तर आदि ग्रन्थों में भारतीय काल मान का उल्लेख मिलता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र व सुश्रुत के अनुसार समय के विभाग इस प्रकार है[2] :

कौटिल्य			सुश्रुत		
१/४ निमेष	=	१ तुट	१ लघु अक्षर उच्चारण	=	१ निमेष
२ तुट	=	१ लव	१५ निमेष	=	१ काष्ठा
२ लव	=	१ निमेष	३० काष्ठा	=	१ कला
५ निमेष	=	१ काष्ठा	२० कला	=	१ मुहूर्त
३० काष्ठा	=	१ कला	३० मुहूर्त	=	१अहोरात्र
४० कला	=	१ नाड़िका	१५ अहोरात्र	=	१ पक्ष
२ नाड़िका	=	१ मुहूर्त	२ पक्ष	=	१ मास
१५ मुहूर्त	=	१ अहोरात्र			

---

१. (अ) डॉ० डी० एस० त्रिवेद, 'इण्डियन क्रोनोलोजी', बम्बई, १९६३, पृ० १
(ब) इस गणना के सम्बन्ध में पंडित भगवद्दत्त का विचार है कि आधुनिक यूरोप में एक घण्टे का ६० मिनट और १ मिनट का ६० सैकिंड विभाजन इसी के अनुकरण पर है। पं० भगवद्दत्त, 'भारत वर्ष का वृहद इतिहास', नई दिल्ली १९५०, पृ० १५३

२. सैमुअल बैल ने भी इसी प्रकार से समय की इकाईयों का उल्लेख किया है : क्षण, तत्क्षण, लव, मुहूर्त कला आदि। सैमुअल बैल, 'बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ऑफ द वैस्टर्न वर्ल्ड', दिल्ली १९६९, पृ० ७१

१५ अहोरात्र	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ मास
२ मास	=	१ ऋतु

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार समय के विभाग इस प्रकार है :

१ लघु अक्षर उच्चारण	=	१ निमेष
२ निमेष	=	१ त्रुटि
१० त्रुटि	=	१ प्राण
६ प्राण	=	१ विनाड़िका
६० विनाड़िका	=	१ नाड़िका
६० नाड़िका	=	१ अहोरात्र
३० मुहूर्त	=	१ अहोरात्र

सूर्य व चन्द्र की गति के आधार पर समय की उपरोक्त इकाईयों का निर्धारण किया गया है। न केवल भारत के वरन् विश्व भर के पंचांग इन्हीं से सम्बन्धित गणनाओं पर आधारित है। सूर्य व चन्द्र की गति में बर्ष में कुछ दिनों का अन्तर रहता है। अतः अधिकांश पंचांग निर्माताओं ने दोनों की मिश्रित पद्धति चन्द्र सौर्य पद्धति का प्रयोग किया है।

सूर्य के मेष से मीन तक १२ राशियों के योग को सौर वर्ष कहते हैं। सौर वर्ष बहुधा ३६५ दिन १५ घड़ी, ३१ पल व ३० विपल का माना जाता है। सौर वर्ष के १२ हिस्से किये जाते हैं, जिन्हें सौर मास कहते हैं[1]। सौर मान में १२ संक्रान्तियाँ मानी गयी है परन्तु सौर्य मान के वर्ष की लम्बाई का विभिन्न ग्रन्थों में पृथक्-पृथक् उल्लेख है, जिससे इसकी सही गणना के संदर्भ में मतभेद हैं। सौर्यमान की त्रुटियों व अस्पष्टता के कारण भारत में चन्द्र सौर्य की मिश्रित पद्धति का विकास हुआ।

वर्ष के दिनों तथा महीनों की लम्बाई निश्चित करने की दूसरी पद्धति चन्द्रमान अर्थात् चन्द्रमा की गति से नियंत्रित होने वाली है। इसमें वर्ष में १२ चन्द्रमास होते हैं, जो क्रमशः ३० व २९ दिनों के होते हैं, अतः साधारण वर्ष ३५४ दिन का होता है, यह ३० वर्षीय चक्र है तथा इसमें २, ५, ७, १०, १३, १६, १८, २१, २४, २६ व २९ वां वर्ष लौंद के हैं, जिसमें अन्तिम महीना २९

---

१. राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीरानाथ ओझा, 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला', अजमेर, १९१८, पृ० १८९

दिन के स्थान पर ३० दिन का होता है तथा वर्ष ३५५ दिन का होता है। हिज्री सम्वत् इसी पर आधारित है।

हिन्दुओं का चन्द्र सौर्य पंचांग गणना की विस्तृत पद्धति है। यह चन्द्र तथा सौर्य मानों की मिश्रित पद्धति है। इसमें वर्ष सूर्य के अनुसार जबकि मास चन्द्र की गति से नियंत्रित होते हैं। इसमें १९ वर्षीय चक्र का प्रयोग होता है जो प्राय: चन्द्र के २३५ चक्करों के बराबर है अथवा चन्द्र की २९.५३०६ दिनों वाली परिक्रमा के बराबर है। चन्द्र व सौर्य के वर्ष में जो अन्तर रहता है उसके लिए इस पद्धति में लौंद का वर्ष रखा गया है। १९ वर्षीय चक्र में लौंद के माह रहते हैं[1]। उत्तरी भारत में चन्द्रसौर्य वर्ष का आरम्भ चैत्र शुदी प्रथम अर्थात् नये चन्द्र से आरम्भ होता है।

दिन रात माह, ऋतु, सप्ताह वर्ष आदि ऐसी इकाइयां हैं जो प्राचीन समय से आधुनिक समय तक भारतीय व अनेक विदेशी पंचांगों में सामान्य रूप से प्रयुक्त होती रही है तथा काल गणना का आधार रही है। इनमें प्रमुख इस प्रकार है :

समस्त पंचांग व्यवस्था का मुख्य आधार दिन है। दिन के समूहों से बड़ी इकाईयों व दिन के बटवारे से समय की सूक्ष्म इकाईयों का निर्धारण किया गया। आधुनिक युग में दिन यद्यपि आधी रात से आधी रात तक नापे जाते हैं, परन्तु सदैव ऐसा नहीं था। "खगोल शास्त्री दूसरी सदी से १९२५ तक दिन की गणना दोपहर से दोपहर तक करते थे।"[2] प्राचीन काल में जब विश्व में विभिन्न स्थानों पर सभ्यताओं की आरम्भिक अवस्था थी, आवागमन के साधन सीमित थे तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान आरम्भ नहीं हुआ था तब दिन की गणना के लिए भिन्न-भिन्न पद्धतियां प्रयोग की जाती थीं। "आदि मानव समाज में प्रात: से प्रात: तक दिन की गणना की जाती थी। बेबीलोन व ग्रीस वासी इसी पद्धति का प्रयोग करते थे, सूर्योदय से सूर्योदय तक का एक दिन माना जाता था। मिश्र ने आधी रात से आधी रात तक दिन की गणना की, इटलीवासियों व यहूदियों ने सूर्यास्त से सूर्यास्त तक दिन की गणना की।"[3]

---

१. एलेग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज', वाराणसी, १९७६, पृ० ९१

२. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनका, वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ५९५।

३. वही।

हिन्दू पंचांगों में दिन को तिथि कहा गया है.।[1] भारतीय संवतों में दिन का विभाजन प्रहर, घड़ी पल, विपल, प्रतिपल आदि में किया गया जबकि पाश्चात्य पंचांगों में घंटा, मिनट, सैकिंड आदि भाग किये गये। प्राचीन भारतीय खगोल शास्त्रियों ने दो प्रकार के दिनों का उल्लेख किया है—प्रथम मानव दिन तथा द्वितीय देवों का दिन। देवों का दिन अर्थात् एक अयन का दिन व एक अयन की रात, एक अयन मानवीय दिनों के छः माह के बराबर है अर्थात् देवों का एक दिन एक मानवीय वर्ष के बराबर है।[2] इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म ग्रन्थों में "१००० चतुर्युगी के बराबर ब्रह्मा का एक दिन माना गया है और इतनी ही बड़ी रात होती है। ब्रह्मा जी का एक दिन एक कल्प कहलाता है।"[3] दिन का नाम हिन्दू धर्म ग्रन्थों में अहन् भी मिलता है। "प्रातः ब्रह्ममुहूर्त से रात्रि के लगभग १० बजे तक का समय अद्यतन माना जाना चाहिए। दिन को दिवा और रात्रि को दोषा भी कहते हैं। दिन को कई भागों में विभाजित किया जाता था। यथा प्रातः पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न व सायाह्न। रात्रि का प्रारम्भ प्रदोष से होना माना जाता था और उसे पूर्वरात्र एवं अपरात्र इन दो भागों में बाँटा जाता था काल गणना का मुख्य घटक दिन या अहन था।"[4] दिन और रात को मिलाकर अहोरात्र कहते थे। अहोरात्र से पक्ष व मास गिने जाते थे।

आरम्भ में मनुष्य सप्ताह को नहीं गिनते थे, सीधे चन्द्रमा के दिनों को गिनते थे लेकिन शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि महीनों से अधिक सुविधाजनक दिनों के छोटे समूहों को गिनना है। अतः बाजार समयावधि ग्रहण किये गये। इनमें भिन्नता थी। "पश्चिमी अफ्रीका में ४ दिन का, मध्य एशिया में ५ दिन का, मिश्र में १० दिन का सप्ताह माना जाता था।"[5]

---

१. "किसी भी सूर्य दिन से तिथि का आरम्भ हो सकता था, व्यावहारिक प्रयोजन के लिए तिथि का निर्णय सूर्योदय से होता था, जो तिथि सूर्योदय के समय होती थी, वही सम्पूर्ण दिन प्रचलित रहती थी और पक्ष में वह दिन उसी तिथि की संख्या माना जाता था।" ए०एल० बॉशम, 'अद्भुत भारत', अनु० वेकटेशचन्द्र पाण्डेय, आगरा, १९६७, पृ० ५०९।

२. डॉ० डी०एस० त्रिवेद, 'इण्डियन क्रोनोलॉजी', बम्बई, १९६३, पृ० १।

३. मुरली मनोहर जोशी, 'हमारी प्राचीनतम कालगणना कितनी आधुनिक और वैज्ञानिक', 'धर्मयुग', २५ दिसम्बर, १९८३, पृ० २६।

४. प्रभु दयाल अग्निहोत्री, 'पतंजलिकालीन भारत', पटना, १९६३, पृ० ४८५

५. 'इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका', वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ५९६।

बेबीलोन वाले चन्द्र कलाओं को अधिक महत्व देते थे। सात दिन का सप्ताह महीने की कलाओं से सम्बन्धित है। "आरम्भ में बेबीलोन में इसे ८ दिन का माना गया. लेकिन ८ की संख्या को शुभ न मानकर यह ७ दिन का रखा गया जो सम्भवतः सात ग्रहों से सम्बन्धित है। समस्त इसाई जगत् में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में इसका प्रयोग होने लगा था।"[1] सप्ताह के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि आरम्भ में भारतीय इसका प्रयोग नहीं करते थे। पश्चिम से यह विचार भारत आया परन्तु पं० भगवद् दत्त का विचार है कि भारतीय आर्य पहले से ही सप्ताह का प्रयोग पंचांग में करते थे।[2]

भारतीय पंचांगों में आदि काल से ही पक्ष का प्रयोग होता था। पन्द्रह दिनों के समूह की गणना इसमें की जाती है। पक्ष[3] यानि पखवाड़ा चन्द्रमा के चक्रों पर आधारित है। कृष्ण पक्ष अमावस्या से समाप्त होता है। शुक्ल पक्ष पूर्ण मास से समाप्त होता है।[4] माह की गणना लगभग सभी पंचांगों में की जाती थी। माह मुख्य रूप से दो प्रकार के रहे हैं। प्रथम चन्द्र मास दूसरा सौर्य मास। चन्द्र व सौर्य मास में जो दिनों का अन्तर रह जाता है, विभिन्न पंचांग पद्धतियों में विभिन्न तरीकों से लौंद के माह के अन्तर्गत पूर्ण कर लिया जाता है अर्थात् एक निश्चित समयावधि के बाद एक अतिरिक्त माह जोड़ दिया जाता है, जिसे मल मास, लौंद का माह, निज मास अथवा संक्रान्ति रहित माह आदि नामों से जाना जाता है। "सौर्य माह वह समयावधि है जो सूर्य एक राशी से दूसरी में जाने में लेता है। चन्द्रमास वह समय है जो कि चन्द्रमा एक पूर्णमासी से दूसरी तक लेता है।"[5] शक विक्रम, इसाई, हिज्री अनेक सम्वतों में

---

१. 'इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका', वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ५९६।

२. पं० भगवद् दत्त, 'भारत वर्ष का वृहद इतिहास', दिल्ली, १९५०, पृ० १५४।

३. "नये चन्द्रमा से पूर्ण चन्द्रमा (पूर्णिमा) तक का समय शुक्लपक्ष कहा जाता है, पूर्ण चन्द्र से चन्द्रमा की अनुपस्थिति (अमावस्या) तक का समय कृष्ण पक्ष कहा जाता है, कृष्ण पक्ष कभी १४ व कभी १५ दिनों का होता है क्योंकि माह छोटा बड़ा होता रहता है। एक उजाला व एक अंधेरा मिलकर एक माह का निर्माण करते हैं।" सैमुवल वैल, 'बुद्धिस्ट रिकार्ड ऑफ द वैस्टर्न वर्ल्ड', दिल्ली १९६९, पृ० ७२।

४. आर० समाशास्त्री, 'द वैदिक कलैण्डर', नई दिल्ली, १९७९, पृ० ७६।

५. वही।

वर्ष को १२ महीनों में बाँटा गया है। चन्द्रमान में २५ से ३१ तथा सूर्यमान में २६ दिन एक माह में हो सकते हैं।[1] किन्हीं पंचांगों में ३०, २६, ३१ आदि माह के दिनों की संख्या रहती है। तिथियों तथा दिनों का समूह मास होता है १२ मास एक वर्ष बनाते हैं।[2] सूर्य मासों में कभी-कभी वर्ष में एक माह संक्रान्तिरहित होता है व कभी-कभी एक माह में दो संक्रान्तियां होती है।

कुछ माह के समूह को ऋतु कहा जाता है। ये मास से बड़े वर्ष के अवयव है। आरम्भ में जाड़ा, गर्मी व वर्षा तीन ही ऋतुओं को गिना जाता था। इसके पश्चात् चार, पर फिर हिन्दू पंचांग में छः ऋतुओं का उल्लेख किया जाने लगा। "विश्व के विभिन्न हिस्सों में ऋतुयें प्रथक-प्रथक रहीं। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में मात्र वर्षा व शुष्क मौसम ही होते हैं। मिश्र में तीन ऋतुयें मानी गयीं, लेकिन यूनान के उत्तरी प्रदेश में चार ऋतुयें थोड़े-थोड़े अन्तर वाली होती हैं।"[3] हिन्दी पंचांगों में दो-दो माह की छः ऋतुओं की व्यवस्था है : शैशिर, वासन्तिक, ग्रीष्म, वर्षा, शरद व हेमन्त।[4] ऋतु निर्धारण का सम्बन्ध सौर्य पद्धति पर आधारित रहता है। चन्द्र पद्धति पर ऋतुओं का निर्धारण उचित नहीं है।

सौर्य वर्ष की लम्बाई के सम्बन्ध में मतभेद है, विभिन्न साक्ष्यों से सौर्य वर्ष के दिनों की संख्या भिन्न-भिन्न उपलब्ध होती है। ५०० ए०डी० में सूर्य सिद्धान्त के अनुसार वर्ष की लम्बाई ३६५.२५८७५६ दिन दी गयी। आधुनिक सूर्य सिद्धान्त के अनुसार यह ३६५.२४२१६६ दिन है। इस प्रकार इसमें ०.०१६५६ दिन का अन्तर है। यह त्रुटि गहन अध्ययन के अभाव के कारण हो सकती है। प्रतिवर्ष ०.०१६५६ दिन का अन्तर रहता है जो १४०० वर्ष में २३.२ दिन का हो जाता है। एक सौर्य वर्ष में १२ माह होते हैं। चन्द्रमान में वर्ष के दिनों की संख्या ३५४ रहती है। चन्द्रमान ३० वर्षीय चक्र है जिसमें प्रत्येक ३ वर्ष बाद लौंद का वर्ष होता है अर्थात् लौंद के वर्ष में दिनों की संख्या ३५५ दिन रहती है। "ब्राह्मण ग्रंथों में वर्ष को प्रजापति कहा गया है यह प्रजाओं का पालन करता है। वायु पुराण के अनुसार वर्ष चार प्रकार का है :

---

१. 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनका', वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १६६७, पृ० ५६६।
२. पं० भगवद् दत्त, 'भारत वर्ष का वृहद इतिहास', नई दिल्ली, १६५० पृ० १५५।
३. 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनका', वोल्यूम-तृतीय, टोकयो, १६६७, पृ० १५५
४. पं० भगवद् दत्त, 'भारत वर्ष का वृहद् इतिहास', नई दिल्ली, १६५०, पृ० १५५।

सौर्य, चन्द्र, नक्षत्र और सावन।"[1] हिन्दुओं ने वर्ष को दो भागों "अयनों" में बांटा है जो छः-छः माह का होता है। **नाक्षत्र वर्ष**[2]—सूर्य से मिलने के पश्चात् जब नक्षत्र सूर्य से काफी दूरी पर पहुंच जाता है तो वह जिस रूप में पहले-पहल ऊपर उठता हुआ दृष्टिगोचर होता है वह रूप कुंडलित होता है।[3] **आदित्य वर्ष** - यह संक्रान्ति से प्रारम्भ होता है तथा पृथ्वी के सूर्य के एक चक्कर के समय के बराबर होता है। यह चैत्र में शुरू होता है।[4]

विश्व में विभिन्न क्षेत्रों में व विभिन्न पंचांगों के अनुसार वर्ष का आरम्भ विभिन्न अवसरों पर किया जाता है। मुस्लिम पंचांगों में वर्ष का आरम्भ नौरोजा से होता है। अकेले भारत में ही ४० प्रकार के सम्वत् हैं जिनके वर्षों के आरम्भ होने के पृथक्-पृथक् समय हैं और इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि एक ही सम्वत् शक-सम्वत् के वर्ष का आरम्भ भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न अवसरों से किया जाता है। यही स्थिति विक्रम सम्वत् के संदर्भ में भी है। "यदि भारतीय पंचांग का आरम्भ चन्द्रसौर्य पद्धति के आधार पर होगा तब वर्ष का आरम्भ सदैव अमान्त चैत्र शुक्ल प्रथम से होगा। यदि सौर्य है तब मेष संक्रान्ति से आरम्भ होगा। सभी पुस्तकों में मध्य मेष संक्रान्ति को सुविधा के दृष्टिकोण से वर्ष प्रारम्भ का दिन माना जाता है। बहुत कम पुस्तकों में जो वास्तविक तथ्य है, लिया जाता है। बंगाल व तमिलनाडु में जहां कि सौर्य गणना है वर्ष का आरम्भ धार्मिक व खगोलशास्त्रीय उद्देश्यों से मेष संक्रान्ति से माना जाता है। जबकि दैनिक व्यवहार व नागरिक वर्ष मेष माह के प्रथम दिन से आरम्भ होता है।"[5] उत्तरी

---

१. पं० भगवद् दत्त 'भारतवर्ष का वृहद् इतिहास', नई दिल्ली, १९५०, पृ० १५७

२. "नाक्षत्र वर्ष में २७ × १२ = ३२४ दिन और चान्द्र वर्ष में ३६० दिन होते हैं। अतः प्रति नाक्षत्र वर्ष में चान्द्र वर्ष से ३६ दिन न्यून होते हैं। इस प्रकार १० नाक्षत्र वर्ष ९ चान्द्र वर्षों के तुल्य होते हैं"। पं भगवद् दत्त, वही, पृ० १६४.

३. आर० समाशास्त्री, 'वैदिक कलैण्डर' नई दिल्ली, १९७९, पृ० ७६

४. वही,

५. (अ) रौबर्ट सीवैल 'दि इडिण्यन कलैण्डर' लन्दन, १८९६, पृ० ३२

(ब) अल्बेरूनी ने भी भारत में वर्ष के विभिन्न आरम्भों का वर्णन किया है। अल्बेरूनी, 'अल्बेरूनी का भारत' अनु० सन्तराम, भाग-३, प्रयाग, १९२८, पृ० १०.

भारत में हिन्दू वर्ष का आरम्भ चैत्र से होता है। "परन्तु समस्त भारत में चैत्र से ही वर्ष आरम्भ नहीं होता। दक्षिण भारत व विशेष रूप से गुजरात में विक्रम संवत् के वर्ष आजकल कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होते हैं। काठियावाड़ व गुजरात के कुछ भागों में विक्रम वर्ष आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होता है। गंजम व उड़ीसा के क्षेत्रों में भाद्रपद शुक्ल द्वादशी (२२ वीं तिथि) से आरम्भ होता है। उड़ीसा में अमली वर्ष भाद्रपद शुक्ल द्वादशी से आरम्भ होता है। विलायती वर्ष जो कि मुख्य रूप से उड़ीसा में प्रचलित है कन्या संक्रान्ति से आरम्भ होता है। फसली वर्ष जो बंगाल में चन्द्र सौर्य है वह पूर्णिमान्त आश्विन प्रथम को आरम्भ होता है (अर्थात् विलायती के चार दिन बाद)।'"[1]

काल गणना के विभिन्न चक्र

सम्पूर्ण विश्व में लगभग ६० प्रकार के पंचाग प्रचलित है जिनमें से ३० के लगभग अकेले भारत में ही पाये जाते हैं। अत: उन सभी की गणना पद्धति, समय विभाजन की इकाइयों, पंचांग निर्माण के नियमों, लौंद के वर्ष की व्यवस्था आदि का उल्लेख कर पाना यहां असम्भव है। साथ ही, इतना विस्तृत वर्णन विशेष उपयोगी भी नहीं होगा। इस अध्याय में पुस्तक को समझने के उद्देश्य से संक्षेप में ही विश्व के विभिन्न पंचांगों में प्रचलित पद्धति का परिचय दिया गया है क्योंकि दूसरे व तीसरे अध्याय में वर्णित विभिन्न सम्वत् इन्ही पद्धतियों पर आधारित है। इससे सम्वतों के स्वरूप को समझने में सहायता मिलेगी। इस विश्व व्यापी पद्धति के अतिरिक्त प्रत्येक राष्ट्र व पंचांग की अपनी पृथक गणना व्यवस्था है जिसके अनेक तत्व एक दूसरे से भिन्न हैं। भारत में भी इस प्रकार की अनेक पद्धतियां हैं जिनमें कुछ का विकास हिन्दू पंचांग की उन्नति व वैज्ञानिकता के लिए किया गया। इन्हें हम काल गणना के विभिन्न चक्र कह सकते हैं। इनमें से अनेक सप्तर्षिकाल, बृहस्पति काल, परशुराम का चक्र, ग्रह परिवर्ति चक्र आदि आज भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पंचाग निर्माण के आधार हैं।

पंचवर्षीय चक्र

हिन्दू पंचांग व्यवस्था के आरम्भिक काल में पंचवर्षीय चक्र का आरम्भ किया गया। इसका उल्लेख वेदांग ज्योतिष से मिलता है : "३६६ दिन, एक वर्ष, ६ ऋतुयें २ आयन, १२ माह सौर्य मानी जानी चाहिये। इन्हें पांच बार

---

१. रौबर्ट सीवैल, 'दि इण्डियन कलैण्डर' लन्दन, १८९६, पृ० ३२

गिनने पर एक चक्र बनता है।"[१] इस विचार के पीछे खगोल शास्त्र के जो नियतांक कार्य कर रहे हैं, वे ये हैं :

५ सौर्य वर्ष = ५ × ३६६ = १८३० दिन
६२ चन्द्रमाह = ६२ × २९, ३२/६२ = १८३० दिन

यह पद्धति भारत में ३०० ए०डी० तक चलती रही। "इसकी चन्द्र व सौर्य दोनों पद्धतियों में गलती थी। सौर्य चक्र १८३०.८९६४ दिन में पूर्ण होता था तथा चन्द्रचक्र १८२६·२८१८ दिन में ही पूर्ण हो जाता था जिससे पूरे चक्र में दोनों से गलती दो गुनी हो जाती थी अर्थात् ४ दिन का दोनों में अन्तर रहता था जो छः चक्रों में एक माह के लगभग हो जाता था। अतः घनिष्ठ नक्षत्र में सूर्य व चन्द्र के पहुँचने के साथ ही नया चक्र आरम्भ कर देने की व्यवस्था थी।"[२] नया चक्र आरम्भ करने में पहले वर्ष का आरम्भ नये चन्द्र से माना जाता था और जिस दिन घनिष्ठातारा निकलता था उस दिन को शीत मौसम का आरम्भ माना जाता था।[३]

पंचवर्षीय चक्र का उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र, वेदांग ज्योतिष, महाभारत के विराट पर्व व जैन ज्योतिष में भी हुआ है। एक चक्र अर्थात् पांच वर्षों को एक युग कहा जाता था। चन्द्र व सौर्य की गति का जो अन्तर छः चक्रों में आता था उसे लौंद के माह के रूप में पूरा कर लिया जाता था अर्थात् ३० चन्द्रमास अथवा ढाई वर्ष बाद एक अतिरिक्त माह जोड़ दिया जाता था। इस प्रकार ५ वर्षीय चक्र में ६२ चन्द्र माह होंगे।[४]

इस व्यवस्था का प्रयोग राष्ट्र के व्यापक क्षेत्र में हुआ। सिद्धान्त ज्योतिष के विकास के साथ ही यह व्यवस्था समाप्त हो गयी। परन्तु अभी भी पंचांग विज्ञान पर इसका गहरा प्रभाव है।

सप्तर्षि चक्र

सात तारों वाले सप्तर्षि मण्डल की गतिविधियों पर यह आधारित है अतः इसे सप्तर्षि चक्र कहा जाता है। "यह सम्वत् २७०० वर्ष का कल्पित

---

१. आर० श्रवण शास्त्री, 'वेदांग ज्योतिष' मैसूर, १९३६, पृ० २
२. अपूर्व कुमार चक्रवर्ती, 'इण्डियन कलैण्डरिकल साइंस' कलकत्ता, १९७५, पृ० ७
३. वही
४. वही, पृ० १०

चक्र है जिसके विषय में यह मान लिया गया है कि सप्तर्षि नाम के सात तारे अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्रों में प्रत्येक पर क्रमशः सौ-सौ वर्ष तक रहते हैं। २७०० वर्ष में एक चक्र पूरा होकर दूसरे चक्र का प्रारम्भ होता है जहां-जहां यह सम्वत् प्रचलित रहा या है वहां नक्षत्र का नाम नहीं लिखा जाता केवल एक से १०० तक के वर्ष लिखे जाते हैं। १०० वर्ष पूरे हो जाने पर शताब्दी का अंक छोड़कर फिर एक से प्रारम्भ करते है।"[1]

काश्मीर के इतिहास में इसका प्रयोग मुख्य रूप से हुआ है। कल्हण की **राजतंरगिणी** में भी इसका वर्णन है। आज भी पहाड़ी प्रदेश तथा दक्षिण पूर्वी काश्मीर आदि क्षेत्रों में इस सम्वत् का प्रयोग किया जाता है। "कनिंघम ने इसके आरम्भ की तिथि ६७७७ ई० पूर्व दी है।"[2] सप्तर्षि चक्र पर आधारित सम्वत् को सप्तर्षि सम्वत् अथवा लोक काल कहा जाता है परन्तु दोनों की आरम्भिक तिथि में काफी अन्तर है।[3] कनिंघम दोनों को एक ही मानते हैं। कलैण्डर सुधार समिति के अनुसार सप्तर्षिकाल का आरम्भ ३१७६ ई० पूर्व में हुआ। यह चन्द्र सौर्य पद्धति पर आधारित है इसमें माह पूर्णिमान्त है तथा इसका प्रचलन मुख्य रूप से काश्मीर में था।[4] सी० मोबेल डफ ने इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं: "३०७६ ई० पूर्व, कलि सम्वत् २६ चैत्र शुदी प्रथम से लौकिक अथवा सप्तर्षि सम्वत् का आरम्भ है। काश्मीर में यह परम्परागत रूप से प्रयुक्त होता रहा है। इसकी गणना १०० वर्षीय चक्र से की जाती है।"[5]

सप्तर्षि काल को दिव्य काल माना गया है। वाराह मिहिर ने **वृहत्संहिता** में इस गणना को ठीक माना है। "जब साधारण गणना और इस गणना क्रम से कोई घटना तिथि ठीक निकले तो तथ्यता में अणु मात्र दोष नहीं रह सकता।"[6] यह माना जाता है कि २७०० वर्ष में सप्तर्षि अपना एक चक्र पूरा

---

१. रायबहादुर पण्डित गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा, 'प्राचीन भारतीय लिपि माला', अजमेर १९१८, पृ० १५९
२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज,' वाराणसी, १९६७, पृ० २९५
३. सप्तर्षि काल कनिंघम के अनुसार— ६७७७ ई० पूर्व लोककाल, कलैण्डर सुधार समिति के अनुसार ७२२१ ई० पूर्व
४. 'रिपोर्ट ऑव दि कलैण्डर रिफोर्म कमेटी' दिल्ली, १९५५, पृ० २५८
५. सी० मोबेल डफ, 'दि क्रोनोलॉजी अव इण्डिया' भाग-प्रथम, वाराणसी, १९५५, पृ० ४
६. पं० भगवद् दत्त, 'भारतवर्ष का वृहद् इतिहास' नई दिल्ली, १९५०, पृ० १९५

कर अपनी उसी अवस्था में आ जाते हैं जिससे एक दिन गिनना आरम्भ किया जाये। "सप्तर्षि एक-एक नक्षत्र के साथ सौ-सौ वर्ष ठहरते हैं। सत्ताईस नक्षत्र के साथ वे २७०० वर्ष ठहरेगें। इस प्रकार २७०० वर्ष का एक युग हो जाता है, यह दिव्य संख्या के अनुसार है। यह युग नक्षत्र व सप्तर्षियों के योग से चलता है।"[१]

सप्तर्षि गणना के विभिन्न नाम प्रचलित रहे हैं। काश्मीर आदि में शताब्दियों के अंकों को छोड़कर ऊपर के वर्षों के अंक लिखने का लोगों में प्रचार होने के कारण इसको लौकिक सम्वत् या लौकिक काल कहते हैं। विद्वानों के शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों तथा ज्योतिष शास्त्र के पंचांगों में इसके लिखने का प्रचार होने के कारण इसको शास्त्र सम्वत् कहते हैं। काश्मीर और पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में प्रचलित होने से इसको पहाड़ी सम्वत् कहते हैं। इस सम्वत् के शताब्दियों को छोड़कर ऊपर के ही वर्ष लिखे जाने से कच्चा सम्वत् कहते हैं। कल्हण की **राजतरंगिणी**, चंबा से मिले एक लेख आदि से इस चक्र के विषय में उल्लेख मिलता है।

बृहस्पति काल (चक्र)

बृहस्पति काल, बृहस्पति ग्रह की चाल तथा उसकी निश्चित समयावधि के चक्र पर आधारित व्यवस्था है जिसका प्रयोग भारतीय ज्योतिषियों तथा खगोल शास्त्रियों द्वारा समय गणना के लिए किया जाता है।

बृहस्पति चक्र के दो रूप हैं, प्रथम ६० वर्षीय, दूसरा १२ वर्षीय, ६० वर्षीय चक्र में वर्ष गणनाओं से नहीं जाने जाते बल्कि ६० नामों की तालिका में से क्रमश: लिऐ जाते हैं। इस सूची को बृहस्पति संवत्सर कहते हैं जिसका तात्पर्य है बृहस्पति वर्षों का पहिया अथवा चक्र। इनमें से प्रत्येक वर्ष संवत्सर कहलाता है। संवत्सर का अर्थ वर्ष है। "इसका एक वर्ष एक सौर्य वर्ष के बराबर नहीं होता। यह बृहस्पति की माध्य गति के ऊपर निर्भर करता है। एक बृहस्पति वर्ष का समय वह समय है जिसमें ग्रह बृहस्पति एक राशि में प्रवेश करता है तथा अपनी माध्य गति के अनुसार इसमें से पूरा गुजर जाता है। प्रभवा से चक्र आरम्भ होता है।"[२] "बार्हस्पत्य संवत्सर (वर्ष) जो ३६१ दिन, २ घड़ी और ५ पल का होता है और सौर वर्ष ३६५ दिन, १५

---

१. पं० भगवद् दत्त, 'भारतवर्ष का वृहद् इतिहास' नई दिल्ली, १९५० पृ० १६५

२. रौबर्ट सीवैल, 'दि इण्डियन कलैण्डर', लन्दन, १८९६, पृ० ३२

घड़ी, ३१ पल व ३० विपल का होता है, अतएव बार्हस्पत्य संवत्सर सौर वर्ष से ४ दिन १३ घड़ी और २६ पल के करीब छोटा होता है जिससे प्रति ८५ वर्ष में एक संवत्सर क्षय हो जाता है।"[1] बार्हस्पत्य संवत्सर एक सौर्य वर्ष से ४·२३२ दिन कम होता है इसका अर्थ हुआ कि एक संवत्सर यदि सौर्य वर्ष के ठीक साथ आरम्भ होता है तो अगला संवत्सर ४·२३२ दिन पहले शुरू हो जायेगा। इस प्रकार प्रत्येक आने वाले वर्ष में संवत्सर की शुरूआत ४·२३२ दिन पहले ही हो जायेगी और निश्चित रूप से एक ऐसा समय आयेगा जबकि दो संवत्सर एक ही सौर्य वर्ष में आरम्भ होगें।[2] इस प्रकार नियम है कि जब दो बार्हस्पत्य संवत्सर एक ही सौर्य वर्ष में आरम्भ हों तो पहले को निकला हुआ कहा जाता है या क्षय कहा जाता है। इस तरह से ८५ सौर्य वर्ष के समय में एक निष्कासन निश्चित है अत: दो निष्कासनों के बीच का समय कई बार ८५ वर्ष व कई बार ८६ वर्ष होता है।[3] दक्षिण में बार्हस्पत्य संवत्सर लिखा तो जाता है परन्तु वहां इसका बृहस्पति की गति से कोई सम्बन्ध नहीं। वहां वाले इस बार्हस्पत्य संवत्सर को सौर वर्ष के बराबर मानते हैं जिससे उनके यहां कभी संवत्सर क्षय नहीं माना जाता। कलियुग का पहला वर्ष प्रमाथी संवत्सर मानकर प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला एक से क्रमशः नवीन संवत्सर लिखा जाता है।

एलैग्जेण्डर कनिंघम ने बृहस्पति के ६० वर्षीय चक्र में समय गणना की तीन भिन्न पद्धतियों का उल्लेख किया है। इसमें सर्वाधिक प्राचीन वाराहमिहिर द्वारा दी गयी पद्धति है इसके अनुसार कलियुग का प्रथम वर्ष "जोवियन" का २७ वां वर्ष है अर्थात् इसका आरम्भ कलियुग से २७ वर्ष पूर्व हुआ। दूसरी पद्धति स्पष्टतः वाराह मिहिर के सिद्धान्त का शुद्धिकरण है जो "ज्योतिशत्वा" में दिया गया है इसमें कलियुग का प्रथम वर्ष तथा इसका प्रथम वर्ष एक ही माना गया है। "उत्तरी भारत में ये दोनों पद्धतियां प्रयुक्त होंती रही हैं। जहां जोवियन के प्रत्येक ८६ वें वर्ष का लोप कर दिया गया है।[4] तीसरी पद्धति दक्षिण भारत में प्रचलित है जिसमें सूर्य वर्ष तथा जोवियन वर्ष को एक ही माना गया है। इसमें बृहस्पति मान का विशेष महत्त्व नहीं रह जाता।

---

१. रायबहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, 'भारतीय प्राचीन लिपि माला', अजमेर, १९१८, पृ० १८७-८८
२. राबर्ट सीवैल, "दि इण्डियन कलैण्डर", पृ० ३३
३. वही
४. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए इण्डियन ऑफ एराज', वाराणसी, १९७६, पृ० १८

एक रूप में उसे सूर्य वर्ष ही मान लिया गया है ।[1] कनिंघम ने सूर्य सिद्धान्त के आधार पर बृहस्पति मान की ६० वर्षीय गणना पद्धति के लिए कलियुग के बीते वर्षों को ८६ से भाग देकर चालू वर्ष तथा चक्र ज्ञात करने की पद्धति दी है। बृहस्पति मान की ६० वर्षीय गणना पद्धति के लिए कलियुग के बीते वर्षों को ८६ से भाग दें। भजन फल में भाज्य अर्थात् कलि के बीते वर्षों को जोड़ ६० से भाग दें, जो शेष बचे यदि वह ३१ से कम है तब उसमें २८ जोड़ें, यदि ३१ से अधिक है तब २७ जोड़ें इससे चक्र का चालू वर्ष निकल आयेगा ।

उदाहरण[2] —

कलियुग ३३२४=२२३ ई०

३३२४÷८६=३८; ३८+३३२४=३३६२

३३६२÷६०=५६+२ अधिक ; जोड़ें २+२८=३०

इस प्रकार कलियुग का ३३२४ वां वर्ष बृहस्पति के ६० वर्षीय चक्र के ५७ वें चक्र का ३० वां चालू वर्ष है।

उत्तरी हिन्दुस्तान में शिला लेख आदि में बार्हस्पत्य संवत्सर लिखे जाने के उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं, परन्तु दक्षिण में इसका प्रचार अधिकता के साथ मिलता है। लेखादि में इसका सबसे पहला उदाहरण दक्षिण के चालुक्य राजा मंगलेश के समय के बादामी के स्तम्भ लेख में मिलता है जिसमें "सिद्धार्थ" संवत्सर लिखा है।[3]

बृहस्पति का एक दूसरा चक्र १२ संवत्सर का है। जिसके वर्षों के नाम चन्द्र महीनों पर दिये गये हैं। इसके वर्षों के नाम कार्तिकादि १२ महीनों के अनुसार है। परन्तु कभी-कभी महीनों के नाम से पहले महा लगाया जाता है, जैसा कि महाचैत्र, महावैसाख आदि।[4] "यह १२ वर्षीय चक्र दो प्रकार का है।

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज', वाराणसी, १६७६, पृ० १६

२. वही

३. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, 'भारतीय प्राचीन लिपि माला,' अजमेर, १६१८, पृ० १८६

४. वही, पृ० १८६

एक में संवत्सर बृहस्पति के 'सहसूर्योदय' से आरम्भ होता है तथा करीब ४०० सौर्य दिवसों का होता है। एक संवत्सर प्रत्येक १२ वर्षों में निष्कासित हो जाता है दूसरे में जिसका नाम हमने 'माध्य राशी व्यवस्था' रखा है। वर्ष ६० वर्षीय चक्र के वर्षों की लम्बाई के बराबर ही होते हैं व ठीक ६० वर्षीय चक्र वाले वर्ष के साथ ही आरम्भ होते हैं। दोनों प्रकार पुराने समय में प्रचलित थे। दूसरे वाले का प्रयोग आधुनिक दिनांकों के लिए किया जाता था विशेष रूप से कोलम सम्वत् के लिये।"[1]

इस प्रकार बृहस्पति के ६० वर्षीय चक्र का १/५ भाग १२ वर्षीय चक्र है। इस १२ वर्षीय चक्र का १/१२ वां भाग एक वर्ष कहलाता है। इसकी गणना का सिद्धान्त इस प्रकार है : "शक का समानवर्ष ढूढ़े, उसे २२ से गुणा करें तथा उसमें ४२९१ जोड़े, उसे १८७५ से भाग दें, भजन फल को बगैर भिन्न के शक वर्ष में जोड़े, योग को ६० से भाग दें, इससे बीते हुए चक्र निकल आयेगें और जो शेष बचेगा वह अगले चक्र के बीते वर्ष होंगे। इसी शेष को १२ से भाग देकर इससे १२ वर्षीय चक्र निकल आयेगें, तथा शेष बची संख्या पूर्ण वर्ष व उससे अगला चालू वर्ष होगा।"[2]

उदाहरण—१६६ ई० = ८८ शक

८८ × २२ = १९३६ + ४२९१

६२२७ ÷ १८७५ = ३

३ + ८८ = ९१; ९१ ÷ ६० = १ + ३१ (शेष बचा)

३१ ÷ १२ = २ पूर्ण तथा ७ शेष

इस प्रकार ८८ शक वर्ष बृहस्पति के १२ वर्षीय चक्र के २ पूर्ण चक्र तथा ७वें चालू वर्ष के बराबर है।

परशुराम का चक्र

परशुराम का सम्वत् १००० वर्षों का एक चक्र है। ऐसा माना जाता है कि इसका आरम्भ ११७५,३/४ अथवा ११७६ ई० पूर्व में हुआ। कर्नल वारेन का कथन है कि इसका प्रचलन प्रायः द्वीप (भारत) के दक्षिणी भाग तक ही

---

१. राबर्ट सीवैल 'दि इण्डियन कलैण्डर' लन्दन, १८९६, पृ० ३७

२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज', वाराणसी, १९७६, पृ० २६

सीमित था जिसमें मलयालम तथा ट्रावनकोर सहित कन्या कुमारी तक का प्रदेश सम्मिलित था।

परशुराम चक्र के तीसरे चक्र का ९७७ वां वर्ष ३९७७ अश्विन प्रथम, १७२३ शक था तथा १४ सितम्बर, १८०० ई० से मेल खाता था। परन्तु कनिंघम का विचार है कि यह गलत है और यह १८०१ होना चाहिये जो शक १७२३ से मेल खाता है।[१] कावसजी पटेल ने भी इसे वर्ष ९७७=१५ सितम्बर, १८०१ ई० माना है। कनिंघम का विचार है कि यह चक्र कोलम संवत् से संबन्धित है। इसे कोलम संवत् अथवा कोलम अंदु भी कहा जाता है। डा० वर्गीज ने इसे कोलम अंदु संवत् कहा है। इस लेख के अनुसार पिछला चक्र समाप्त होने पर नया चक्र २५ अगस्त, ८२५ ई० में आरंभ हुआ जबकि कावसजी पटेल ने यह तिथि उसी वर्ष की २९ अगस्त दी है। कलैण्डर सुधार समिति ने कोलम संवत् के दो रुपों का वर्णन किया है तथा इसका आरंभ ८२५ ई० से माना है। उत्तरी मालाबार में प्रचलित कोलम संवत् का आरंभ १७ सितंबर से होता था तथा यह "कन्यादी" था तथा कोलम संवत् का दूसरा रूप जिसको दक्षिण मालाबार में १७ अगस्त से ग्रहण किया गया "सीमहादी" था।

कनिंघम ने परशुराम चक्र की प्रमुख तिथियां इस प्रकार दी हैं[३] :

चक्र	तिथि
प्रथम	११७६ ई० पूर्व
द्वितीय	१७६ ई० पूर्व
तृतीय	८२५ ई०
चतुर्थ	१८२५ ई०

यह संवत् उत्तरी भारत में कभी प्रयोग नहीं किया गया तथा ज्योतिषियों

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज', वाराणसी, १९७६, पृ० ३३

२. 'रिपोर्ट ऑफ दि कलैण्डर रिफोर्म कमेटी', दिल्ली, १९५५, पृ० २५८

३. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इन्डियन एराज," पृ० ३३

को भी नाम भर से ही इसका ज्ञान है ।[1] कनिंघम द्वारा दी गयी परशुराम चक्र की तिथियों से स्पष्ट है कि प्रति एक हजार वर्ष बाद इसका नया चक्र आरंभ होता है । उपरोक्त तालिका में प्रथम चक्र ११७६ ई० पूर्व तथा दूसरे चक्र १७६ ई० पूर्व में १००० वर्षों का अन्तर है परन्तु दूसरे चक्र १७६ ई० पूर्व था तीसरे चक्र ८२५ ई० में १००१ वर्षों का अन्तर है जबकि तीसरे चक्र ८२५ ई० से चौथे चक्र १८२५ ई०के बीच १००० वर्षों का ही अन्तर है । ऐसा किस कारण है, स्पष्ट नहीं । प्रथम चक्र ११७६ ई० पूर्व से आरंभ हुआ तथा तीसरे चक्र ८२४-२५ ई० में इसे कोलम संवत् के नाम से संबोधित किया जाने लगा ।

ग्रह परिवर्ती चक्र

ग्रह परिवर्ती संवत्सर ९० वर्ष का चक्र है जिसके ९० वर्ष पूरे होने पर फिर वर्ष १ से लिखना शुरू करते हैं । इसका प्रचार बहुधा मद्रास इहाते के मदुरा जिले में है । इसका आरंभ वर्तमान कलियुग संवत् ३०७९ (ई० स० पूर्व २४) से होना बताया जाता है । वर्तमान कलियुग संवत् में ७२ जोड़कर ९० का भाग देने से जो बचे वह उक्त चक्र का वर्तमान वर्ष होता है अथवा वर्तमान शक संवत् में ११ जोड़कर ९० का भाग देने से जो बचे वह वर्तमान संवत्सर होता है । इसमें सप्तर्षि संवत् की नांई वर्षों की संख्या ही लिखी जाती है ।[2] पुर्तगाली मिशनरी बेशी जो मथुरा में ४० वर्ष रहा, के आधार पर वारेन ने इसका वर्णन किया है । "इसका आरंभ कलियुग ३०७८ अथवा २४ ई० पूर्व से होता है । दूसरा चक्र ७६ ई० में पड़ा होगा । यह सम्भव प्रतीत होता है कि बृहस्पति के ज्योतिष चक्र से इसका कोई सम्बन्ध रहा होगा जो इसी समय से आरंभ होता है ।"[3] २४ ई० पूर्व से चक्र आरंभ होने पर ६६ ई० में वह पूर्ण हो जाना चाहिए था (२४+६६=९०) क्योंकि इस चक्र को

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज', वाराणसी, १९७६, पृ० ३३

२. राय बहादुर पं० गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, 'भारतीय प्राचीन लिपि माला,' अजमेर, १९१८, पृ० १८९

३. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'ए बुक ऑफ इण्डियन एराज', पृ० ५१

कनिंघम ने ९० वर्ष का लिखा है। फिर प्रथम चक्र को ७६ ई० में समाप्त किस लिये आया है यह स्पष्ट नहीं है। एक चक्र में ९० सौर्य वर्ष होते हैं। प्रत्येक वर्ष की लम्बाई ३६५ दिन, १५ घड़ी, ३१ पल है तथा वर्ष मेष से आरंभ होता है।[1] "चक्र में सूर्य के एक चक्र का, मंगल के १५ चक्करों का, मरकरी के २२ चक्करों का, बृहस्पति के ११ चक्करों का, शुक्र के ५ चक्करों का तथा शनी के २९ चक्करों का जोड़ है।"[2]

ग्रह परिवर्ती चक्र पर आधारित सम्वत् ओड़को है। इसका प्रचार मद्रास राज्य के गंजम जिले में है। इसके माह पूर्णिमान्त हैं। लेकिन १२ भाद्रपद शुक्ल से वर्ष का आरंभ होता है तथा यह १२ वां ही दिन कहलाता है, न कि पहला। दूसरे शब्दों में प्रत्येक भाद्रपद शुद्ध के १२ वें दिन वर्ष बदलता है। ओड़को गणना का आरंभ कब हुआ इस सन्दर्भ में निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते। कुछ साक्ष्यों से पता चलता है कि यह गणना छोड़ागणा जो कि गड़ग वंश का प्रवर्त्तक था के समय आरंभ हुयी। उसकी तिथि अधिकांशत: ११३१-३२ ए० डी० मानी जाती है। सटन ने **उड़ीसा के इतिहास** में लिखा है कि यह १५८० ए०डी० में आरम्भ हुआ। परलाकिमेडी, पडाकिमेडी चिन्नकिमेडी, की जमींदारी के हिस्सों में ओड़को पंचांग ही माना जाता है।[1] लेकिन ये लोग इसे विशेष रूप से अपने तरीके से ही मानते हैं। ये वर्षों के नाम अपने जमींदारों के नामों पर ही रखते हैं। जो एक बात इन सभी में सामान्य रूप से है, वह यह है कि वे इनके लिपिकरण में जिन वर्षों का अंक ६ है या जिन वर्षों का अंत ६ या ० से होता है (१० को छोड़कर) वह छोड़ दिये जाते हैं।[2] उदाहरण के लिए ५वें व दशवें ओड़को (राजकुमार या जमीदारों के) के अगले ओड़को को ७ वां २१ वां कहेगें न कि छठा व बीसवां। इस तरह की गणना का क्या आधार है, बताना कठिन है लेकिन वहां के लोगों का विश्वास है कि उनके शास्त्रों व रीति-रिवाजों के अनुसार ये बुरी संख्यायें हैं जो छोड़ दी जाती हैं। यह भी सम्भव है कि यह वर्षों में राज्य बढ़ाने के लिए किया जाता है। एक और विशेष बात यह थी कि ओड़को वर्ष ५९ के बाद नहीं गिने जाते थे उसके बाद के वर्षों के लिए वे द्वितीय श्रेणी, एक द्वितीय श्रेणी आदि प्रकार से गिनते थे। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जब एक राजकुमार किसी ओड़को वर्ष के बीच में मर जाता था तो उसके उत्तराधिकारी का पहला ओड़को जो

---

१. राबर्ट सीवैल, 'दि इण्डियन कलैण्डर', लन्दन, १८९६, पृ० ३७

२. वही

कि उसकी गद्दी पर आने से शुरू होता था, पूरे एक वर्ष तक नहीं चलता था बल्कि आने वाली भाद्रपद शुद्ध के ११ वें दिन समाप्त हो जाता था ; इस तरह से पहले राजा का अन्तिम राज्य काल का वर्ष तथा दूसरे के राज्य काल का पहला वर्ष मिलाकर एक वर्ष होता था । इस प्रक्रिया में एक वर्ष छूट जाता था । इस तरह से एक ओड़को वर्ष का समकालीन अंग्रेजी वर्ष निकालने के लिए प्रथम यह आवश्यक था कि यह कौन सा ओड़को है अर्थात् जगन्नाथ है या पालिकमैंडी है अथवा कोई अन्य । द्वितीय यह कि जो वर्ष छोड़े गये हैं उनका घटना (अर्थात् पहला, छठा, सोलहवां, बीसवां, छब्बीसवाँ, तीसवां, छत्तीसवां, चालीसवां, पचासवां, व छप्पनवां)उड़ीसा के राजकुमारों की सूची उपलब्ध है लेकिन १७९७ ई० तक की गणना बिल्कुल विश्वसनीय नहीं हैं ।[1]

---

१. राबर्ट सीवैल, 'दि इन्डियन कलैण्डर', लन्दन, १८९६, पृ० ३८-३९।

द्वितीय अध्याय

धर्म चरित्रों से सम्बन्धित सम्वत्

भारत में कुछ सम्वतों का सम्बन्ध धर्म प्रचारकों, धर्म प्रवर्तकों अथवा आध्यात्मिक चरित्रों जिन्हें भगवान मान लिया गया है, के जीवन की घटनाओं से है। इनमें जन्म, ज्ञान प्राप्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति की घटना से आरम्भ होने वाले सम्वत् हैं। प्रस्तुत अध्याय में ऐसे ही सम्वतों का उल्लेख हुआ है।

इस अध्याय में वर्णित सम्वत् इसाई व हिज्री ऐसे हैं जिनकी उत्पत्ति भारत से बाहर विदेश में हुई परन्तु उनके अनुयायियों द्वारा भारत में शासन किया गया तथा उनके द्वारा इन संवतों का प्रयोग भारत के प्रशासनिक कार्यों में कई शताब्दियों तक किया गया। आज भी धार्मिक व दैनिक व्यवहार के कार्यों के लिए इन संवतों का प्रयोग हो रहा है, साथ ही इन संवतों का प्रयोग भारतीय इतिहास के पुर्न-लेखन के लिए भी हुआ है। अतः भारतीय संवतों का उल्लेख करते समय इन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। भारत में अपने निरन्तर प्रचलन के कारण इनकी गिनती भी अब भारतीय संवतों में ही की जाने लगी है।

इस अध्याय में वर्णित इसाई, हिज्री, बहाई व महर्षि दयानन्दाब्द संवत् यद्यपि तिथिक्रम के आधार पर काफी बाद के हैं तथा इनसे पहले आरम्भ हुये संवतों का उल्लेख तृतीय अध्याय में हुआ है परन्तु इनका आरम्भ धर्म प्रवर्तकों से जुड़ा होने के कारण उन्हें इसी अध्याय में देना अनिवार्य हो गया। अतः तिथिक्रम को नजरअन्दाज करते हुए इन संवतों का उल्लेख इसी अध्याय में किया गया है।

यद्यपि बुद्ध व महावीर ऐतिहासिक चरित्र ही हैं क्योंकि उनके जन्म, मरण तथा जीवन की अन्य घटनाओं के विषय में पर्याप्त प्रमाणिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। उनकी तिथि निर्धारण के साथ ही अनेक घटनाओं व राजवंशों का तिथिक्रम प्राप्त होता हैं तथा इन महात्माओं की शिक्षाओं ने राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक इतिहास को प्रभावित किया है तथापि उनके साथ एक धर्म विशेष का नाम जुड़ा है। एक सामाजिक वर्ग द्वारा उन्हें भगवान के रूप में माना जाता है अतः इन दोनों सम्वतों को इसी धार्मिक चरित्रों से सम्बन्धित अध्याय में रखा

गया है, न कि "ऐतिहासिक घटनाओं से आरम्भ होने वाले संवत्" नामक अध्याय में।

सृष्टि सम्वत्

सृष्टि के नाम पर ही यह सम्वत् सृष्टि सम्वत् के नाम से जाना जाता है। सृष्टि सम्वत् के अतिरिक्त यह कल्प सम्वत् व आर्य सम्वत् भी कहा जात है। सृष्टि सम्वत् का प्रचलन क्षेत्र हिन्दू धर्म साहित्य ही है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों व पंचांगों पर इस सम्वत् का अंकन रहता है।

सृष्टि सम्वत् की गणना हिन्दुओं ने एक बहुत बड़े समय से की है जिसमें सबसे छोटी इकाई दिन, माह अथवा वर्ष नहीं बल्कि पूरा एक युग है। अतः इस सम्वत् का वर्तमान युग क्या है, इस सम्बन्ध में एक उद्धरण निम्नवत् है : "ब्रह्मा के एक दिन में १४ मन्वन्तर होते हैं। ७१ चौकड़ी का एक मन्वन्तर होता है। आशय यह है कि १४ मन्वन्तर में से ६ मन्वन्तर (१ स्वायम्भुवः, २ स्वरोचिश, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुव) समाप्त होकर सातवां मन्वन्तर चल रहा है जिसकी २७ चौकड़ी पूर्ण, २८वीं चौकड़ी में ३ युग (सत्युग, त्रेता, द्वापर) समाप्त होकर चौथा युग यह कलियुग चल रहा है, जो समाप्त होने पर २८ चौकड़ियों को पूर्ण करेगा। इसके पश्चात् वैवस्वत् मन्वन्तर में (७१-२८=) ४३ चौकड़ियां शेष रहेंगी"[1]।

सृष्टि सम्वत् का सम्बन्ध हिन्दू धर्म से है अतः इसके आरम्भ के लिए हिन्दू धर्म प्रचारकों को ही उत्तरदायी समझना चाहिए, किसी विशिष्ट व्यक्ति को नहीं। सृष्टि की आयु के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों व विभिन्न सम्प्रदाय के धर्म ग्रन्थों से अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। सृष्टि की आयु का निर्णय ही सृष्टि सम्वत् के आरम्भ समय का निर्णय है।

सृष्टि उत्पत्ति का समय क्या है ? कितने वर्षों तक रहती है ? उसके क्या विभाग हैं ? आदि विषयों पर धर्म ग्रन्थों में विचार उपलब्ध होते हैं। यह माना जाता है कि चैत्य मास के पक्ष के प्रारम्भ में दिन, मास, वर्ष, युग आदि एक साथ प्रारम्भ हुये। ऐसा विश्वास विद्यमान है कि चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्मा ने जगत की रचना की। यजुर्वेद में आये एक श्लोक की महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदत्त व्याख्या में सृष्टि के निर्माण के समय का संकेत मिलता है। "मनुष्य, पृथ्वी और जल में जो औषधियां उत्पन्न होती हैं, जब वे तीन वर्ष पुरानी हो जायें तब उन्हें ग्रहण करके वैद्यक शास्त्र की विधि से सेवन करते हैं। वे सेवन की हुयी सब मर्म स्थलों में व्याप्त होकर रोगों को हटाकर

---

१. 'शुद्ध भारद्वाज पंचांग', मेरठ, १९८८-८९, पृ० १।

शारीरिक सुखों को शीघ्र उत्पन्न करती हैं।" इस व्याख्या में तीन वर्ष का तात्पर्य तीन युगों से लिया जाता है।[1] अथर्ववेद के एक श्लोक से भी कुछ विद्वान सृष्टि की आयु का अनुमान लगाते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि—१० लाख तक बिन्दु रखकर उससे पूर्व २, ३, ४ के अंक रख देने चाहिये। यह संख्या इस प्रकार होगी—४३२०००००००० वर्ष। वेद के आधार पर यह सृष्टि की आयु है। मनु-स्मृति में भी सृष्टि की आयु का वर्णन हुआ है। सूर्य सिद्धांत के अनुसार सृष्टि की आयु में १४ मन्वन्तर तथा उसकी १५ संधियों का समय लगता है।[2]

सूर्य सिद्धान्त के रचयिता के समय सृष्टि की कितनी आयु हो चुकी थी, कितनी शेष थी, इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है—"इस कल्प सृष्टि की उत्पत्ति अब तक संधियों के स्वायम्भुव मनु से लेकर चाक्षुव मनु तक ६ मनु तो पूर्ण और सातवें वैवस्वत् मनु की एक संधि तथा २७ चतुर्युग तो सम्पूर्ण और २८वें इस वर्तमान चतुर्युग, के सतयुग, त्रेता द्वापर के बीतने पर यह कलियुग चल रहा है। जिसके ५०७५ वर्ष बीतकर यह ७६वां वर्ष चल रहा है।"[3]

इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। स्वामी दयानन्द ने सृष्टि सम्वत् के सम्बन्ध में लिखा है—"यह जो वर्तमान सृष्टि है इसमें सातवें वैवस्वत् मनु का वर्तमान है। इसके पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं और साठवां वैवस्वत् चल रहा है तथा स्पर्वाणि आदि सात मन्वन्तर आगे होंगे। सब मिलाकर १४ मन्वन्तर होते हैं और ७१ चतुर्युगियों का नाम मन्वन्तर रखा गया है। ऐसे १४ मन्वन्तर एक ब्रह्म दिन में होते हैं और इतना ही परिमाण ब्रह्म रात्रि का भी होता है।"[4] स्वामी जी आगे लिखते हैं—"ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि अर्थात् ब्रह्म जो परमेश्वर—उसने संसार के वर्तमान और प्रलय की संज्ञा की है इसीलिए इसका नाम ब्रह्म दिन है। इसी प्रकार असंख्य मन्वन्तरों में जिनकी संख्या नहीं हो सकती अनेक बार सृष्टि हो चुकी है, अनेक बार होगी। सो इस सृष्टि को सदा से सर्वशक्तिमान जगदीश्वर, सहज स्वभाव से रचना, पालन और प्रलय करता है, और सदा ऐसे ही करेगा। जब एक मन्वन्तर समाप्त होकर दूसरा आरम्भ

---

१. निरूपण विद्यालंकार, 'महर्षि दयानन्द और सृष्टि सम्वत्', 'स्मारिका', मेरठ आर्य समाज शताब्दी समारोह, १९७८, पृ० ९६।

२. वही।

३. वही, पृ० ९७।

४. वही, पृ० ९८।

होता है तब खण्ड प्रलय होती है। खण्ड प्रलय व महाप्रलय कब तक रहती है यह नियत है तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रहों आदि की गति का जो अनादि काल से नियम चला आता है वह नियत है।"[1]

डा० त्रिवेद ने सृष्टि के व्यतीत समय की गणना की व्यवस्था इस प्रकार दी है—"हम आधुनिक सृष्टि के व्यतीत समय का इस प्रकार भी हिसाब लगा सकते हैं क्योंकि ब्रह्मा के दिन अथवा कल्प में १४ मनु होते हैं। प्रत्येक समयावधि को मनु अथवा मन्वन्तर कहते हैं। यह सातवां मन्वन्तर चल रहा है, अनुमानतः ७१ चतुर्युगों की गणना निम्न प्रकार होगी—

१२००० × ३६० × २७ = ११६६,४०,००० तथा ५०२७ वर्ष कलि (अर्थात् ४८०० + ३६०० + २४०० × ३६० = ३८८८००० इस प्रकार कुल युग = १,९६,०८,५३,०५८ वर्ष होगी। यह गणना १९५७ ई० की है।[2]

अलबेरुनी ने ब्रह्मा की कुल आयु की गणना इस प्रकार की है—

"हमारे माप के पहले ब्रह्मा की आयु के हमारे २ नील, ६२ खरब, १५ अरब, ७३ करोड़, २९ लाख, ४८ हजार, १३२ वर्ष बीत चुके हैं (२,६२,१५,७३,२९,४८,१३२ वर्ष)। ब्रह्मा के अहोरात्र अर्थात् दिन के कल्प के १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४८ हजार, १३२ तथा सातवें मन्वन्तर के १२ करोड़ ५ लाख ३२ हजार १३२ वर्ष बीत चुके हैं।"[3]

इसाईयों की परम्परानुसार विश्व का निर्माण ४००४ ई० पूर्व अथवा ७१० जूलियन युग में हुआ। जूलियन युग का आरम्भ ४७१४ ई० पूर्व माना जाता है।[4]

जैन परम्पराओं के अनुसार संसार अनंत है न इसका आदि है न अन्त। इसके अनुसार संसार पहिये के समान घूमने वाला चक्र है। ऊपर चलने वाला समय उत्सर्पिनी तथा नीचे चलने वाला अवसर्पनी कहलाता है। जैन धर्म का आरम्भ भी कब हुआ इस सम्बन्ध में भी निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। जैन

---

१. निरूपण विद्यालंकार, 'महर्षि दयानन्द और सृष्टि सम्वत्', 'स्मारिका', मेरठ आर्य समाज शताब्दी समारोह, १९७८, पृ० ९८।

२. डी० एस० त्रिवेद, 'इण्डियन क्रोनोलोजी', बम्बई, १९६३, पृ० २।

३. अलबेरूनी, 'अलबेरूनी का भारत' (अनु० रजनीकांत), इलाहाबाद, १९६७, पृ० २९४।

४. डी० एस० त्रिवेद, 'इन्डियन क्रोनोलोजी', पृ० २।

रिवाजों के अनुसार प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण माघ के महीने में चतुर्दशी के दिन हुआ था। जैनियों के अनुसार तब से जो समय व्यतीत हुआ है वह समझ के बाहर है तथा वह वास्तव में बहुत बड़ी संख्या है। इसे इस प्रकार गिन सकते हैं—

४१,३४,५२,६३,०३,०८,२०,३१,७७,७४,९५,१२,१९१ × ९४५[1]

सृष्टि के निर्माण से वर्तमान युग तक के समय की गणना के लिए डा० त्रिवेद ने एक और पद्धति दी है। उनके अनुसार—सृष्टि के निर्माण से अब तक के समय की गणना शतरंज के प्रत्येक खाने में दूनी संख्या रखने से की जा सकती है। जैसे—

१, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६

अर्थात्—$१ + २ + २^{२} + २^{३} + २^{४} + २^{५} + २^{६} + २^{७} + \cdots + २^{६३} + २^{६४} — १ = ७३,७०,९५,५१,६१५$ वर्ष

इसके अतिरिक्त कुछ विचारकों ने सृष्टि का जीवन काल ५८ बिलियन वर्ष माना है। अर्थात्—५८,०००,०००,०००,०००,००० वर्ष।[2]

'अथर्ववेद', काण्ड ८ सूक्त २ मन्त्र २१ के अनुसार क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने युग वर्ष गणना के सम्बन्ध में यह सारणी दी है।[3]

नोट— सारणी पृष्ठ ३८ पर देखे।

इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों के रिवाजों पर आधारित सिद्धान्त सृष्टि की आयु की गणना करने के लिए दिये गये हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

महर्षि दयानन्द, आचार्य चतुर सेन तथा डा० डी० एस० त्रिवेद आदि स्वदेशी विद्वानों ने सृष्टि सम्वत् की व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त विदेशी लेखक अल्बेरूनी ने अपने समय में प्रचलित हिन्दू रिवाजों के आधार पर सृष्टि की आयु का अनुमानित समय बताया है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन व इसाई धार्मिक ग्रन्थों में भी सृष्टि की आयु के सम्बन्ध में व्याख्या मिलती है। सृष्टि सम्वत् का मुख्य उद्देश्य सृष्टि की आयु का अनुमान लगाना है इसी

---

१. डी० एस० त्रिवेद, 'इण्डियन क्रोनोलोजी', बम्बई, १९६३, पृ० २—३।

२. वही, पृ० ३।

३. 'अथर्ववेद', (अनु० क्षेम करण दास त्रिवेदी), दिल्ली, विक्रमाब्द २०३८, पृ० १७।

सूचना—मन्त्र में केवल (सौ, दश सहस्र, वर्ष, दो युग, तीन और चार) पद हैं, कलि आदि पदों की कल्पना की गई है। एक देववर्ष में ३६० (तीन सौ साठ) मानुष या सौर वर्ष होते हैं ॥

सन्धि और युग	कलि		द्वापर		त्रेता		कृतयुग		चतुर्युगी	
	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष
सन्धि	१००	३६,०००	२००	७२,०००	३००	१,०८,०००	४००	१,४४,०००	१,०००	३,६०,०००
युग	१०,०००	३६,००,०००	२०,०००	७२,००,०००	३०,०००	१,०८,००,०००	४०,०००	१,४४,००,०००	१,००,०००	३,६०,००,०००
योग	१०,१००	३६,३६,०००	२०,२००	७२,७२,०००	३०,३००	१,०९,०८,०००	४०,४००	१,४५,४४,०००	१,०१,०००	३,६३,६०,०००

२—मनु अध्याय श्लोक ६९—७० और सूर्य सिद्धान्त अध्याय १५—१७ के अनुसार युग वर्ष गणना ॥

सन्धि और युग	कृतयुग		त्रेतायुग		द्वापरयुग		कलियुग		चतुर्युगी	
	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष	दैव वर्ष	मानुष वा सौर वर्ष
सन्ध्या वर्ष	४००	१,४४,०००	३००	१,०८,०००	२००	७२,०००	१००	३६,०००	१,०००	३,६०,०००
युग वर्ष	४,०००	१४,४०,०००	३,०००	१०,८०,०००	२,०००	७,२०,०००	१,०००	३,६०,०००	१०,०००	३६,००,०००
संध्यांश वर्ष	४००	१,४४,०००	३००	१,०८,०००	२००	७२,०००	१००	३६,०००	१,०००	३,६०,०००
योग···	४,८००	१७,२८,०००	३,६००	१२,९६,०००	२,४००	८,६४,०००	१,२००	४,३२,०००	१२,०००	४३,२०,०००

उद्देश्य से अनेक सम्प्रदायों व धर्म ग्रन्थों में इसका उल्लेख हुआ है, धर्म ग्रन्थों (हिन्दू) में ऐसी गणना पद्धति को सृष्टि सम्वत् का नाम दे दिया गया है। सृष्टि सम्वत् का एक मुख्य उद्देश्य हिन्दू गणना पद्धति की प्राचीनता को दर्शाना भी है, जैसा कि अनेक धर्म चरित्रों से सम्बन्धित सम्वतों का रहा है। सृष्टि सम्वत् की उपयोगिता धर्म ग्रन्थों, धर्म चरित्रों व धर्म नेताओं से सम्बन्धित घटनाओं के समय को आंकने में रही हैं तथा हिन्दू धर्म साहित्य में इस सम्वत् को पर्याप्त स्थान मिला है। सृष्टि सम्वत् अब भी हिन्दू धार्मिक अनुष्ठानों तथा पंचांग निर्माण के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

यह सम्वत् कल्पना पर अधिक निर्भर है क्योंकि सृष्टि के निर्माण का कोई साक्षी नहीं है। सृष्टि निर्माण के बाद ही, उस पर भी मनुष्य का आदिम अवस्था से ऊपर उठकर सुसंस्कृत होने के पश्चात् ही सृष्टि की निर्माण तिथि तथा उससे सम्बन्धित अन्य घटनाओं को तिथ्यांकित करने का प्रयास किया गया।

कालयवन सम्वत्

कालयवन राक्षस के नाम से इस सम्वत् का नाम कालयवन सम्वत् पड़ा है। इस सम्वत् के संदर्भ में दो साक्ष्य उपलब्ध होते हैं—प्रथम मेगस्थनीज का लेख तथा दूसरा अलबेरूनी का भारतीय संवतों क संदर्भ में वर्णन।

मेगस्थनीज के लेख जिन्हें उसके देशवासियों ने सुरक्षित रखा, के आधार पर पंडित भगवद् दत्त ने कालयवन सम्वत् का आरम्भ त्रेता युग से बताया है। "यवन शब्द डायोनोसियस अथवा बेकस दानवासुर विप्रचित का विकृत रूप है। उसके बाद सुरकुलेश विष्णु हुआ। विष्णु विप्रचित्ति से १५ स्थान पश्चात् है। बारह भ्राताओं में वह सबसे कनिष्ठ था। ११ स्थान इन भ्राताओं के और ४ स्थान अन्य, इस प्रकार विप्रचित्ति १५ स्थान पहले था। विप्रचित्ति दनु का पुत्र था, अतः वह दानवासुर कहलाया। विप्रचित्ति त्रेतायुग के आरम्भ में था, उससे लेकर भारत युद्ध तक १०० राजा थे। भारत युद्ध से रिपुंजय तक २२ राजा, तत्पश्चात् ५ प्रद्योत राजा, तदन्तर १० शैशुनाग राजा, तदन्दर ९ नन्द हुये। ये सब १४६ बनें। सम्भव है मगध के राजाओं की जो पुरानी गणना हो, उसमें कुछ अन्तर हो। तथापि इतनी बात ठीक है कि त्रेता के आरम्भ से अर्थात् विप्रचित्ति के काल से नन्दों के अन्त तक ६४५१ वर्ष अवश्य बीत चुके थे। यह वर्ष संख्या मेगस्थनीज ने भारत के राजवृत्तों से ली। पुराणों के तुषारों अथवा देव पुत्रों के राज्य का एक वर्षमान ७००० वर्ष का है। यह वर्षमान त्रेता के आरम्भ से गिना गया प्रतीत होता है।"[1] अलबेरूनी के वर्णन से भी

---

१. भगवद्दत्त, 'भारतवर्ष का वृहद इतिहास', नई दिल्ली, १९५०, पृ० १६०।

कालयवन नामक सम्वत् का उल्लेख मिलता है। वह इसका आरम्भ द्वापर युग से बताता है—"हिन्दुओं का एक सम्वत् कालयवन नाम का है। इसके विषय की पूर्ण जानकारी मुझे नहीं हो सकी। वे इसका गणनारम्भ अन्तिम द्वापर युग के अन्त में करते हैं। कालयवन नामक राक्षस ने उनके देश तथा धर्म दोनों को घोर रूप से पीड़ित किया था।"[1]

कालयवन सम्वत् के सम्बन्ध में उपलब्ध दोनों साक्ष्यों में सम्वत् के आरम्भ के सम्बन्ध में दिये गये समय में दो युगों का अन्तर है। मेगस्थनीज के वर्णन के आधार पर भगवद् दत्त इसका आरम्भ त्रेता के आरम्भ से मानते हैं तथा अलबेरूनी ने इस सम्वत् का आरम्भ द्वापर के अन्त को बताया है, अर्थात् पूरा द्वापर व पूरा त्रेता दो युगों का अन्तर है।

भारतीय धार्मिक परम्पराओं के अनुसार इन दोनों युगों में मानव जाति के उद्धार व असुरों के विनाश के लिए भगवान ने अवतार लिया और यह सम्वत् तभी एक ऐसी घटना से जुड़ा है जबकि एक पीड़क असुर का विनाश किया गया जो देश व धर्म को पीड़ित करने वाला था। इस संदर्भ में यदि चतुर सेन के राम के समय के सम्बन्ध में दिये गये मत को रखें तो कालयवन राक्षस की मृत्यु व उससे आरम्भ होने वाले सम्वत् का समय त्रेता का अन्त व द्वापर का आरम्भ हो सकता है अर्थात् दोनों युगों का संधि का समय। "राम त्रेता द्वापर की सन्धि में उपस्थित थे। यह काल बहुत करके मसीह पूर्व सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दी है, अर्थात् अब से ३८५० वर्ष पूर्व राम का राज्य काल है।"[2]

कालयवन सम्वत् के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि भगवान विष्णु के अवतार राम ने त्रेता द्वापर की सन्धि के समय कालयवन नामक राक्षस को मारा व इसी से कालयवन सम्वत् का आरम्भ हुआ। इस सम्वत् के सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसके सम्बन्ध में उपलब्ध दोनों साक्ष्य विदेशी लेखकों के हैं तथा अलबेरूनी द्वारा शक, गुप्त व हर्ष सम्वत् के सम्बन्ध में दिये गये विचारों का, जिसमें वह इन सम्वतों का आरम्भ राजा शक की मृत्यु, गुप्त वंश की समाप्ति व हर्ष की मृत्यु से बताता है, खण्डन हो जाने के बाद कालयवन

---

१. अलबेरूनी, 'अलबेरूनी का भारत', (अनु० रजनी कांत), इलाहाबाद, १९६७, पृ० २९५।

२. आचार्य चतुर सेन, 'भारतीय संस्कृति का इतिहास', मेरठ, १९५८, पृ० २६२।

सम्वत् के आरम्भ के संदर्भ में भी यही समझना चाहिए कि यह कालयवन की मृत्यु पर उसी के नाम से चला सम्वत् नहीं हो सकता। यह सम्भव है कि किसी दुष्टात्मा की हत्या की गयी हो व कालयवन कोई दूसरा व्यक्ति हो जिसने दुष्टात्मा के अन्त में सहायता दी हो तथा उसके सम्मान में इस सम्वत् का नाम कालयवन पड़ा हो। और यदि वास्तव में इस सम्वत् का नाम देश धर्म के पीड़क राक्षस कालयवन के नाम पर ही है भले ही वह उसकी मृत्यु के अवसर पर ही दिया गया हो तो यह सम्वत् भारतीय सम्वत् आरम्भ की परम्परा के प्रतिकूल है क्योंकि भारत में किसी शुभ अवसर पर अथवा महान् आत्माओं के निर्वाण पर सम्वत् आरम्भ की परम्परा रही है।

कालयवन सम्वत् का उल्लेख भारतीय साहित्य में नगण्य है। विदेशी साक्ष्यों से ही उसका परिचय मिलता है। अतः इसकी अरम्भिक तिथि, गणना पद्धति, वर्ष, माह, दिन आदि के संदर्भ में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

कृष्ण सम्वत्

भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण के नाम पर यह सम्वत् प्रचलित है। इसे कृष्ण सम्वत् के नाम से ही जाना जाता है तथा कृष्ण के जन्म के समय से इस सम्वत् का आरम्भ माना जाता है।

हिन्दुओं द्वारा देश के विभिन्न स्थानों पर इस सम्वत् का प्रयोग अपने धार्मिक कार्यों के लिए किया जाता है तथा वर्तमान समय में यह पंचांगों पर भी अंकित मिलता है। विश्व हिन्दू परिषद् के कुमायूं विभाग से प्रकाशित नव वर्ष बधाई पत्र में इसका चालू वर्ष ५२१२वां दिया है जो १९८६ ई० के बराबर है। यह कलियुग सम्वत् ५०८८, श्री विक्रम सम्वत् २०४३ तथा श्री शाली-वाहन सम्वत् १९०८ के बराबर है।[1] हिन्दू पंचांगों पर भी कृष्ण सम्वत् का अंकन मिलता है। भारद्वाज पंचांग में अनेक सम्वतों के वर्तमान चालू वर्ष के साथ कृष्ण सम्वत् का चालू वर्ष भी दिया गया है—"श्री कृष्ण जन्म सम्वत् ५२२५, शक १९११, विक्रमादित्य राज्याब्द २०४६ तथा ई० सन् १९८९-९०।"[2]

कृष्ण सम्वत् का प्रयोग तो देश में विभिन्न स्थानों पर रह रहे हिन्दुओं द्वारा हो रहा है तथा पंचांगों पर इसका अंकन भी हो रहा है, परन्तु ऐसा प्रतीत

१. विश्व हिन्दू परिषद्, (कुमायूं विभाग), 'नव वर्ष मंगलमय हो', श्री विक्रम सम्वत् २०४३ (१९८६)।
२. नरेश दत्त शर्मा, 'शुद्ध भारद्वाज पंचांग', मेरठ, १९८९-९०, पृ० १।

होता है कि इसके संदर्भ में कोई प्राचीन मान्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और न ही कोई ऐसी वैज्ञानिक गणना पद्धति है जिसको देश के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले लोग अपनाते हों, क्योंकि उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर से प्रकाशित होने वाले शुद्ध भारद्वाज पंचांग में शक १९११, कृष्ण सम्वत् ५२२५ तथा ई० सन् १९८९—९० दिया है जो ५२२५-१९८९=३२३६ ई० पूर्व आता है अर्थात् ३२३६ कृष्ण सम्वत् का आरम्भ वर्ष है, जबकि उपरोक्त वर्णित कुमायूं मण्डल के नव वर्ष बधाई पत्र में यह क्रम इस प्रकार है—शक १९०८, कृष्ण सम्वत् ५२१२ जो ई० सन् १९८६ के बराबर है अर्थात् ५२१२—१९८६=३२२६ ई० पूर्व कृष्ण सम्वत् का आरम्भ हुआ। इस प्रकार कुमायूं व मेरठ के पंचांगों में कृष्ण सम्वत् आरम्भ का अन्तर १० वर्ष है। इस अन्तर का मूल कारण क्या है, ज्ञात नहीं। सम्भवतः इस सम्वत् की गणना क्षेत्रीय है, अतः अलग-अलग स्थानों पर स्वतन्त्र रूप से गणना की जा रही है व पूरे देश में इसमें समरूपता लाने का कोई प्रयास नहीं है। यह भी सम्भव है कि देश के अन्य स्थानों पर यह अन्तर और भी अधिक हो।

कृष्ण सम्वत् धार्मिक चरित्र से सम्बन्धित सम्वत् है अतः इसका प्रयोग धार्मिक कार्यों के लिए ही किया जा रहा है।

युधिष्ठिर सम्वत्

महाभारत युद्ध की विजय के बाद राजा युधिष्ठिर ने शासन आरम्भ किया तथा अपने नाम से युधिष्ठिर सम्वत् का प्रचलन किया। किन्तु इस सम्वत् को कुछ विद्वान कलियुग सम्वत् ही मानते हैं तथा कुछ कलियुग सम्वत् से पृथक। इस सम्वत् के सम्बन्ध में बहुत कम साक्ष्य उपलब्ध हैं। इस तरह से यह महाभारत की ही किसी घटना से सम्बन्धित है अथवा महाभारत के प्रमुख पात्र युधिष्ठिर के जीवन की किसी घटना से सम्बन्धित है। कल्हण के अनुसार महाभारत युद्ध की तिथि २४४९ ई० पूर्व है। वाराहमिहिर के अनुसार भी महाभारत २४४९ ई० पूर्व में हुआ तथा कलैण्डर सुधार समिति ने युधिष्ठिर सम्वत् का आरम्भ २४४८ ई० पूर्व दिया है।[1] जिससे कलि व युधिष्ठिर सम्वतों को एक ही मानने की सम्भावना हो सकती है परन्तु इस समिति की रिपोर्ट में कलि व युधिष्ठिर सम्वतों को पृथक्-पृथक् दिया गया है तथा पहले कलि सम्वत् का आरम्भ व बाद में युधिष्ठिर सम्वत् का आरम्भ दिया है। लेकिन अन्य साक्ष्यों से स्पष्ट है कि राजा युधिष्ठिर महाभारत युद्ध के समय स्वयं युद्ध

---

१. 'रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी', दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

में सम्मिलित थे तथा युद्ध समाप्ति के एक दम पश्चात् शासक बने, इसके बाद अपने उत्तराधिकारी परीक्षित को राज्य देकर वन गये। तब युधिष्ठिर का युग अथवा सम्वत् कलियुग के बाद कैसे आया क्योंकि कलियुग का आरम्भ परीक्षित के राज्यारोहण से ही माना जाता है। अतः स्पष्ट रूप में नहीं कहा जा सकता कि युधिष्ठिर व कलि सम्वत् एक ही हैं अथवा पृथक्-पृथक् तथा उनमें किसका आरम्भ पहले हुआ। कलि व युधिष्ठिर सम्वतों को एक ही मानने वाले विद्वानों में गौरी शंकर ओझा का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। "भारत के युद्ध (भारत युद्ध सम्वत्) और शक सम्वत् के बीच का अन्तर (३७५३—५५६=) ३१९७ वर्ष आता है। ठीक यही अन्तर कलियुग सम्वत् और शक सम्वत् के बीच होना ऊपर बताया गया है। अतएव उक्त लेख (चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय के समय का ऐहोल पहाडी पर स्थित जैन मन्दिर का शिलालेख) के अनुसार कलियुग सम्वत् और भारत युद्ध सम्वत् एक ही हैं। भारत के युद्ध में विजय पाने से राजा युधिष्ठिर को राज्य मिला था जिससे इस सम्वत् को युधिष्ठिर सम्वत् भी कहते हैं।"[1] "कलियुग सम्वत् को भारत युद्ध सम्वत् व युधिष्ठिर सम्वत् भी कहते हैं। इस सम्वत् का मुख्य उपयोग ज्योतिष के ग्रन्थों तथा पंचांगों में होता है। तो भी शिलालेख आदि में भी कभी-कभी इसमें दिये हुये वर्ष मिलते हैं। इसका प्रारम्भ ई० सम्वत् पूर्व ३१०२ तारीख १८ फरवरी के प्रातःकाल से माना जाता है।"[2] युधिष्ठिर सम्वत् के संदर्भ में एक अन्य स्रोत का जिक्र करते हुए एक विचारक ने लिखा है—सुमति तन्त्र नामक ग्रन्थ जो सन् ५७६ के आसपास लिखा गया, से युधिष्ठिर सम्वत् का उल्लेख मिलता है। इसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ में इसके लिखे जाने की तिथि दी गयी है—"युधिष्ठिर राज्याब्द २०००, नन्द राज्याब्द ८००, चन्द्र गुप्त राज्याब्द १३२, शुद्रक देव राज्याब्द २४७ वर्ष, शक राज्याब्द ४९८।"[3] जो भी हो पद्धति दोनों की लगभग समान है तथा कलि सम्वत् जिसका प्रयोग खगोल शास्त्रियों ने किया था लिखित रूप में लगभग १००० ई० पूर्व से मिलता है तथा दोनों ही का उल्लेख हिन्दू धर्म ग्रन्थों में हुआ है।

श्री कृष्ण जन्म सम्वत्, कलियुग आरम्भ सम्वत् व युधिष्ठिर सम्वत्, इन तीनों सम्वतों का उल्लेख विभिन्न लेखों से मिलता है। ये तीनों ही महाभारत

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, 'भारतीय प्राचीन लिपि-माला', अजमेर, १९१८, पृ० १९१।

२. वही।

३. अरुण, 'भारतीय पुराइतिहासकोष', मेरठ, १९७८, पृ० ७।

युद्ध से सम्बन्धित हैं। इनमें कृष्ण सम्वत् सबसे पहले आरम्भ हुआ, इसके बाद युधिष्ठिर सम्वत् का आरम्भ आना चाहिए तदुपरान्त कलि सम्वत् का आरम्भ। परन्तु विभिन्न साक्ष्यों से उपलब्ध तिथियां व तिथिक्रम पहले कृष्ण सम्वत् इसके बाद कलि सम्वत् व इसके बाद युधिष्ठिर सम्वत् का आरम्भ दर्शाते हैं, जो उचित नहीं है। युधिष्ठिर सम्वत् के आरम्भ को किसलिये कलि सम्वत् के आरम्भ के बाद रखा गया है, इस सम्बन्ध में कोई कारण ज्ञात नहीं है।

कलियुग सम्वत्

काल विभाजन के चार युगों में से एक युग कलियुग के नाम पर इस सम्वत् का नाम कलियुग सम्वत् पड़ा है। कलियुग सम्वत् का प्रयोग हिन्दू धर्म साहित्य में हुआ है तथा यह हिन्दू धर्म से ही सम्बन्धित है। अतः इसका प्रयोग हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों व पंचांगों में होता है। इस सम्बन्ध में किसी क्षेत्र विशेष को इंगित करना उचित नहीं है। यह मानना चाहिए कि देश भर में जहां भी महाभारत युद्ध की घटना व उससे सम्बन्धित तथ्यों में लोग आस्था रखते हैं वहीं महाभारत युद्ध से सम्बन्धित सम्वत् भी विद्यमान हैं।

कलि सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष ३१०१+१९८९=५०९०[१] है जो विक्रमादित्य सम्वत् २०४६, शक १९११, श्री कृष्ण जन्म सम्वत् ५२२५, बौद्ध २५६२, मौहम्मद हीजरी १४०९-१०, फ़सली सन् १३९७-९८ तथा ई० सन् १९८९-९० के बराबर है।

कलि सम्वत् के आरम्भकर्ता के रूप में किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं लिया गया है। मात्र सम्वत् आरम्भ की घटना व समय का ही उल्लेख विभिन्न परम्पराओं में हुआ है। इससे यही अर्थ निकलता है कि कलियुग सम्वत् का आरम्भ इसके वास्तविक आरम्भ बिन्दु से कुछ समय बाद ही किया गया होगा तथा इसके आरम्भ की तिथि निर्धारण, गणना पद्धति का निश्चय आदि तथ्यों को तय करने का कार्य विद्वानों की किसी सभा के द्वारा हुआ होगा न कि किसी व्यक्ति विशेष द्वारा। जैसी कि आजकल भी विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं की तिथि निश्चित करने के लिए अनेक सभायें व विद्वानों की समितियां नियुक्त की जाती हैं, ऐसी ही किसी सभा या समिति द्वारा कलि सम्वत् का भी आरम्भ किया गया होगा इसी से किसी व्यक्ति विशेष का नाम इस सम्वत् के आरम्भ के साथ नहीं जुड़ा है।

---

१. 'शुद्ध भारद्वाज पंचांग', मेरठ, १९८९-९०, पृ० १।

सभी विद्वगण कलियुग का आरम्भ महाभारत युद्ध से मानते हैं, परन्तु महाभारत युद्ध कब हुआ, इस प्रश्न पर उन सभी में व्यापक मतभेद हैं। भारत में कुछ परम्परायें प्रचलित हैं जिनके आधार पर महाभारत युद्ध की तिथि व कलियुग का आरम्भ का निर्धारिज करने का प्रयास किया गया है—

(१) आर्य भट्ट परम्परा
(२) वृद्ध गर्ग परम्परा
(३) सप्तर्षि परम्परा
(४) भास्कर परम्परा
(५) कृष्ण जन्म परम्परा
(६) कल्हण की परम्परा
(७) एहोल अभिलेख परम्परा

आर्य भट्ट की सूचनायें खगोलशास्त्रीय तथ्यों पर आधारित हैं। इनका आधार सूर्य सिद्धान्त है। "उज्जैन में अर्द्धरात्रि के समाप्त होने पर १७ फरवरी, ३१०२ ई० पूर्व को कलियुग का आरम्भ हुआ। आर्य भट्ट ने ग्रहों की स्थिति का खण्डन किया।"[1] यह माना हुआ सत्य है कि आर्य भट्ट द्वारा दी गयी अपने जन्म की तिथि सही है। ३ युग व कलियुग के ३६०० वर्ष व्यतीत होने पर वह २३ वर्ष का था। यदि ४९९ ई० आर्य भट्ट के जन्म की मान्य तिथि है तब इसके अनुसार कलियुग का आरम्भ ३१०१ ई० पूर्व में हुआ तथा महाभारत युद्ध की तिथि ३१३७ ई० पूर्व आयी।[2] आर्य भट्ट की एक दूसरी परम्परा के अनुसार कलियुग आरम्भ की तिथि ३०७८ ई० पूर्व तथा कुरुक्षेत्र युद्ध की तिथि ३११४ ई० पूर्व आती है। पौराणिक संदर्भ में कलि के आरम्भ से ३६०० वर्ष पूर्व युद्ध हुआ। इस प्रकार आर्य भट्ट परम्परा में ३१३७ व ३११४ ई० पूर्व की दो तिथियां कुरुक्षेत्र युद्ध के संदर्भ में मिलती हैं। अतः आर्य भट्ट परम्परा में कलियुग आरम्भ की तिथि तथा कुरुक्षेत्र युद्ध की तिथि पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हो पाती है। वृद्ध गर्ग परम्परा में कलि के आरम्भ व कृष्ण की मृत्यु की तिथि ३१०१ ई० पूर्व मिलती है। इसी समय युधिष्ठिर ने संसार को त्यागा।"[3] पुराणों में राजा परीक्षित के समय सप्तीर्ष तारामण्डल की स्थिति दी गयी है जिसके आधार पर कलियुग के आरम्भ का अनुमान लगाया जाता है। हस्तिनापुर के युधिष्ठिर के उत्तराधिकारी परीक्षित के लिए सेन गुप्त ने ३७१ ई० पूर्व या ३०० ई० पूर्व की तिथियां दी हैं। सेन गुप्त के विचार में ये अधिक विश्वसनीय नहीं है—"पौराणिक तथ्यों में सप्तर्षि के लिए जो स्थिति

---

१. ए० एन० चन्द्रा, 'द डेट ऑफ कुरुक्षेत्र वार', कलकत्ता, १९७८, पृ० ७६
२. वही, पृ० ७८।
३. वही, पृ० ८२।

परीक्षित के समय बतायी गयी है वह न तो परीक्षित से सम्बन्धित है और न ही खगोल शास्त्र से।"[1] सप्तर्षि चक्र की दूसरी व्याख्या के अनुसार सप्तर्षि चक्र प्रत्येक सौ वर्ष में दिन और रात बराबर करने वाले बिन्दु के आगे-पीछे हटने से सम्बन्धित हैं। २७००० वर्षों का सप्तर्षि का एक चक्र है, इसके आधार पर परीक्षित का समय १४०० ई० पूर्व के करीब आता है। विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न तरीकों से सप्तर्षि परम्परा का उल्लेख किया है। जिससे इसके द्वारा किसी निश्चित व विश्वसनीय निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन हो जाता है। "पुराणों में सप्तर्षि की पारम्परिक तिथि का उल्लेख किया गया है, लेकिन पुराणों में सम्वतों का उल्लेख कुरुक्षेत्र युद्ध की तिथि निश्चित करने में अब हमारी विशेष मदद नहीं करता।"[2]

खगोलशास्त्री भास्कर ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' में कलियुग आरम्भ का उल्लेख किया है। "शक राजा के अन्त तक ३१७९ वर्ष कलियुग को आरम्भ हुए बीत चुके थे। यदि ७८ ई० का शालीवाहन शक माना जाये तब ऐसा प्रतीत होता है कि भास्कर के अनुसार कलियुग ३१०१ ई० पूर्व में आरम्भ हुआ। परिस्थितियों के अनुसार कुरुक्षेत्र युद्ध की तिथि ३१३७ ई० पूर्व आती है।"[3] कृष्ण जन्म के समय सूर्य की स्थिति का वर्णन खगोलशास्त्रीय पुस्तकों में हुआ है, इसके आधार पर खगोलशास्त्री कुरुक्षेत्र युद्ध की तिथि तथा कलि के आरम्भ के विषय में अनुमान लगाते हैं। "कृष्ण जन्म परम्परा के आधार पर कुरुक्षेत्र युद्ध की तिथि ३१३७ ई० पूर्व प्राप्त होती है।"[4] जो पारम्परिक तिथि के करीब की तिथि है। काश्मीर के विद्वान कल्हण ने पारम्परिक तिथि से काफी बाद की तिथि कुरुक्षेत्र युद्ध के लिए दी है—"कलियुग आरम्भ के ६५३ वर्ष बाद कौरव-पाण्डव अस्तित्व में आये।" इस प्रकार यदि ३१०१ ई० पूर्व कलियुग आरम्भ माना जाये तब कौरव-पाण्डवों का समय २४४८ ई० पूर्व आया तथा युद्ध का समय इसके ३६ वर्ष पहले था। आधुनिक विद्वानों का विचार है कि कल्हण का सिद्धान्त किसी भ्रान्ति पर आधारित है। "कल्हण का तर्क सही नहीं है क्योंकि वह ३५ गोदराज राजाओं के नाम नहीं बता पाया और न ही

---

१. पी० सी० सेनगुप्त, 'एंशियेंट इण्डियन क्रोनोलॉजी', कलकत्ता, १९४७, पृ० ५७।

२. ए० एन० चन्द्रा, 'द डेट ऑफ कुरुक्षेत्र वार', पृ० ८५।

३. वही, पृ० ८६।

४. वही, पृ० ८६।

उनके शासन काल के विषय में कुछ कहता है।"[1] स्पष्ट है कि कल्हण ६५३ वर्षों का कोई स्पष्टीकरण नहीं दे पाया। कल्हण की इस भूल का कारण सम्भवतः यह रहा होगा कि वह भारतीय इतिहास के उन तीन कालों का, जो राजाओं रहित थे, उनका अनुमान नहीं लगा पाया जिनमें एक ३०० वर्षों का, दूसरा १२० वर्षों का था, तीसरे का समय निश्चित नहीं है।[2]

दक्षिण के चालुक्य वंशी राजा पुलकेशी द्वितीय के समय के, एहोल की पहाड़ी पर के जैन मन्दिर के शिलालेख में भारत युद्ध से ३७३५ और शक राजाओं के (शक सम्वत्) ५५६ वर्ष बीतने पर उक्त मन्दिर का बनना बताया है। उक्त लेख के अनुसार भारत के युद्ध और शक सम्वत् के बीच का अन्तर (३७५३—५५६=)३१५७ वर्ष आता है। ठीक यही अन्तर कलियुग सम्वत् और शक सम्वत् के बीच होना ऊपर बताया गया है। अतएव उक्त लेख के अनुसार कलियुग सम्वत् और भारत युद्ध सम्वत् एक ही है।[3]

इस प्रकार विभिन्न परम्पराओं के आधार पर २४०० से ३१३७ ई० पूर्व तक की विभिन्न तिथियां महाभारत युद्ध की तिथि के लिए प्राप्त होती हैं। ३१०१ ई० पूर्व कलि आरम्भ व ३१३७ ई० पूर्व भारत युद्ध की तिथि की पुष्टि अधिकांश साक्ष्यों से होती है। "अभी हाल में बिजनौर में हुई महाभारत सभा जिसमें विभिन्न विद्वानों ने भाग लिया तथा अपने-अपने स्वतन्त्र विचार दिये जो पारम्परिक तिथि के करीब की तिथि की ही पुष्टि करते हैं। पुराणों में विभिन्न राजाओं तथा उनके शासन काल के विषय में एक तालमेल है, इसके आधार पर भी पारम्परिक तिथि के करीब की ही तिथि निश्चित की गयी है। इन संदर्भों के बीच का अन्तर जो बहुत साधारण है, का ध्यान रखते हुए तथ्यों का झुकाव पारम्परिक तिथि ३१३७ ई० पूर्व की तरफ जाता है।"[4] स्वामी

---

१. अ—ए० एन० चन्द्रा, 'द डेड ऑफ कुरुक्षेत्र बार', कलकत्ता, १९७८, पृ० ९१, पंडित ओझा ने भी कल्हण के सिद्धान्त की आलोचना की है।
   ब—रायबहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला', अजमेर, १९१८, पृ० १९२।

२. ए० एन० चन्द्रा, 'द डेट ऑफ कुरुक्षेत्र वार', पृ० ९२।

३. रायबहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, १९१८, पृ० १९१।

४. ए० एन० चन्द्रा, "द डेट ऑफ कुरुक्षेत्र वार", १९७८, पृ० ९६।

बी० एच० बोन ने अपने सभापतित्व भाषण में कहा था—"३१३६ ई० पूर्व अमावस्या की तिथि भारत युद्ध की तिथि है। इसके अनुसार (मूलपर्व के अनुसार) यह लड़ाई कलि से ३६ वर्ष पूर्व लड़ी गयी तथा कृष्ण की मृत्यु के साथ ही कलियुग का आरम्भ हुआ। इस प्रकार फरवरी माह की अमावस्या ३१३६ ई० पूर्व की तिथि भारत युद्ध की तिथि है।"[1] ए० एन० चन्द्रा ने विभिन्न खगोलशास्त्रीय आधारों पर महाभारत युद्ध के लिए ३१३७ ई० पूर्व की तिथि का समर्थन किया तथा यह मत प्रतिपादित किया कि महाभारत युद्ध कोई "मिथक" नहीं वरन् एक ऐतिहासिक घटना है।

महाभारत युद्ध को द्वापर व कलियुग के सन्धिकाल में होना माना जाता है। युद्ध के बाद ही कलियुग का आरम्भ हुआ। लेकिन कलियुग आरम्भ की निश्चित तिथि तथा घटना के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विचारक परीक्षित के राज्यारोहण (डा० डी०एस० त्रिवेद), कुछ कृष्ण की मृत्यु (वृद्ध गर्ग परम्परा) कुछ युधिष्ठिर के गृह त्याग की घटना (वृद्ध गर्ग परम्परा) से कलियुग का आरम्भ मानते हैं तथा इसी के साथ उनके अनुसार कलि सम्वत् का आरम्भ होता है। "परीक्षित का राज्य सरस्वती तथा गंगा नदी के प्रदेश में स्थित था। आधुनिक थानेश्वर, देहली एवं गंगा नदी के दोआब का उपरिला प्रदेश उसमें समाविष्ठ था। कलियुग का आरम्भ एवं नागराज तक्षक के हाथों इसकी मृत्यु हुयी थी। ये परीक्षित के राज्य काल की दो प्रमुख घटनायें थीं"[2]। भारतवर्ष के प्रायः सभी राजाओं ने महाभारत युद्ध में कौरव पाण्डवों की ओर से भाग लिया। भारत युद्ध काल ही पौराणिक वंश गणना है तथा आगे पीछे गणना का आधार है। भारतीय परम्परा के अनुसार यह युद्ध कलि सम्बत् के आरम्भ होने से ३६ वर्ष पूर्व या खृष्ठ पूर्व[3] ३१३७ में हुआ[4]। डा० त्रिवेद के अनुसार पाण्डवों द्वारा परीक्षित को राज्य दिया जाने की घटना से कलियुग का आरम्भ हुआ तथा इसके ३६ वर्ष पूर्व महाभारत हुआ[5]। महाभारत के युद्ध के बाद अधिकांश विद्वानों के कलियुग का आरम्भ माना है। जिस दिन श्री कृष्ण ने इस पृथ्वी को त्यागा उसी दिन अविवेकियों को मोहित करने वाले कलियुग का अधिकार

---

१. "द स्टेट्समैन", नई दिल्ली, २८ अक्टूबर, १९७५।
२. सिद्धेश्वरी शास्त्री, 'भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोष' पूना, १९६४, पृ० ३९९।
३. डा० त्रिवेद ने ई० पूर्व के लिए खृष्ठ पूर्व का प्रयोग किया है।
४. डा० देव सहाय त्रिवेद, 'प्राड० मौर्य बिहार', पटना, १९५४, पृ० १७१।
५. डा० देव सहाय त्रिवेद, 'इण्डियन क्रोनोलॉजी', बम्बई, १९६३, पृ० १३।

संसार पर हो गया। प्रत्येक घर, राज्य और बस्ती में लोभ, असत्य भाषण, कुटिलता, छल, कपट और हिंसा आदि के रूप में अधर्म को फलते देख राजा युधिष्ठिर ने समझ लिया कि राज्य में कलियुग का प्रवेश हो गया है। अधर्म के सहायक कलियुग ने आकर लोगों के चित्त पर अधिकार जमा लिया है, यह जानकर और धर्म, अर्थ आदि का भली भाँति सम्पादन करके भगवान् के चरण कमलों को ही अपना कल्याणकारी समझकर अर्जुन आदि चारों भाई शरीर छोड़ने का निश्चय करके युधिष्ठिर के पीछे भगवान् का ध्यान करते हुए चले अर्थात् कृष्ण की मृत्यु, पाण्डवों का गृह त्याग, युद्ध की समाप्ति तथा कलियुग का आरम्भ सभी एक ही समय की घटनायें हैं। "४००० वर्षों के अंतराल ने यह भुला दिया कि ३१०२ ई० पूर्व में क्या हुआ था, लेकिन यह निश्चित है कि उस वर्ष कोई महत्वपूर्ण घटना घटी थी। बहुत सम्भव है कि उस वर्ष "शतपथ ब्राह्मण" में वर्णित प्रलय आयी हो, इस प्रलय का संसार की हर सभ्यता में वर्णन है। प्रलय का नायक वैवस्वत मनु है और इस प्रकार दोनों उल्लेखों को मिलाने से ३१०२ ई० पूर्व प्रलय की तारीख पता लग जाती है।"[१] "बैबीलोन में आयी प्रलय का समय भी लगभग ३१०० ई० पूर्व वहाँ पाये गये लेखों में मिलता है।"[२] इस तिथि के दो अन्य प्रमाण भी मिलते हैं। आइने अकबरी में अबुल फजल सम्वत् १६५२ में लिखता है कि नगर बल्ख का ग्रन्थकार अब्बू मशर जलप्लावन की जो तिथि लिखता है उसके अनुसार जल प्लावन को ४६९६ वर्ष हो गये हैं। ४६९६—१६५२=३०४४ विक्रमी सम्वत् पूर्व+५७=३१०१ ई० पूर्व।[3] भारत युद्ध से पूर्व भारत में कौन-कौन से सम्वत् प्रचलित थे, यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। परन्तु भारत युद्ध द्वापर व कलि की सन्धि में हुआ, यह निर्विवाद है। पंडित भगवद्दत्त ने महाभारत के अनेक पर्वों से उदाहरण लेकर इस विचार की पुष्टि की है: "भारत युद्ध द्वापर के अन्त अथवा कलि द्वापर की सन्धि में हुआ। कलि के आरम्भ से कलि सम्वत् प्रचलित हुआ यह निर्विवाद है।"[४]

कलि सम्वत् का आरम्भ कलियुग आरम्भ के साथ ही माना जाता है तथा डा० त्रिवेद् ने इस सम्वत् की गणना कलि से पूर्व तथा कलि सम्वत् में की

---

१. अरुण, "भारतीय पुरा इतिहास कोष", मेरठ, १९७८, पृ० ६।

२. वही, पृ० ७।

३. वही।

४. पं० भगवद् दत्त, "भारतवर्ष का वृहद् इतिहास", नई दिल्ली, १९५०, पृ० १६१।

है ।[1] इस प्रकार "कुरुक्षेत्र युद्ध के पूर्व के वर्ष" तथा "कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद के वर्ष" की भी गणना की जाती है ।[2] एस० बी० राय ने अपनी पुस्तक में भी इसी की पुष्टि की है ।[3]

कलि सम्वत् रूप से खगोलशास्त्रीय कार्यों के लिए विकसित किया गया। इसका आरम्भिक समय भी खगोलशास्त्रीय दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण है तथा बाद में भी खगोलशास्त्रियों ने इसकी इकाई पद्धति तथा वर्ष आदि का प्रयोग खगोलशास्त्रीय गणनाओं के लिये किया । "इसके वर्ष चैत्रादि चन्द्र सौर्य तथा मासादि सौर्य दोनों हैं । इसका प्रयोग खगोलशास्त्रीय तथा पंचांग निर्माण दोनों कार्य में हुआ है । बाद में कभी इसका "गुजरा वर्ष" तथा कभी चालू वर्ष दिया गया व कभी दोनों साथ-साथ दिये गये । इसका प्रयोग बहुधा शिलालेखीय कार्यों के लिए नहीं हुआ है ।"[4] यह बात सही है कि कलियुग सम्वत् का प्रयोग शिलालेखीय कार्यों के लिए नगण्य ही है तथा यह ज्योतिषियों व खगोलशास्त्रियों का ही सम्वत् रहा। फिर भी यदा-कदा अभिलेखों में इसका परिचय मिल जाता है । उदाहरण के लिए : "चम्बा के अभिलेखों में तिथियों को तीन भिन्न प्रकार से दर्शाया गया है शास्त्र सम्वत्, कलियुग सम्वत् तथा राज्यपाल के राज्य वर्ष में । कलियुग का प्रयोग कुछ विशेष रुचि का है क्योंकि इसका प्रयोग कुछ पुरा लेखों में मुश्किल से ही किया जाता है । वास्तविक वर्ष ४२७० लिखा गया है तथा बाकी वर्ष भी लिखे गये हैं । यदि दोनों संख्याओं को जोड़े तब ४३००० आयेगी। यह संख्या पाप के युग को प्रदर्शित करती है । कलि ४२७२, ११६८-६९ ई० के समकक्ष है ।"[5] एस० पिल्लैयी ने भी कलि सम्वत् आरम्भ की ३१०२ ई० पूर्व की तिथि का समर्थन किया है तथा सम्पूर्ण भारत में इसके प्रचलन को सौर्य मासादि तथा चन्द्र सौर्य चैत्रादि के रूप में माना है ।[6] आर्य

---

१. डा० देव सहाय त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० १३ ।
२. एस० बी० राय, "डेट ऑफ महाभारत बैटल", नई दिल्ली, १९७६, पृ० १०० ।
३. एस० बी० राय, "एनशियेंट इण्डिया : ए क्रोनोलोजिकल स्टैडी", दिल्ली, १९७५, पृ० १० ।
४. रौबर्ट सीवैल, "द इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४०-४१ ।
५. जे० वोगल, "एन्टिक्वेटीज ऑफ चम्बा स्टेट", कलकत्ता, १९११, पृ० ७६ ।
६. एल० डी० स्वामी पिल्लैई, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४३ ।

भट्ट के समय तक कलि सम्वत् का प्रयोग ज्योतिषियों द्वारा किया जाता था तथा कलियुग के आरम्भ से काल गणना की प्रथा थी। आर्य भट्ट के विचार से युग वर्ष, मास, दिवस आदि सभी का आरम्भ एक ही समय से हुआ है। काल अनंत एवं अनादि है, ग्रहों के आकाश में गमन करने से उसका अनुमान किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों एवं पंचांगों में कलियुग के प्रारम्भ के समय की ग्रहस्थिति का उल्लेख किया गया है।[1] वाराह मिहिर के समय से जो आर्य भट्ट का लगभग समकालीन ही था कलियुग का प्रयोग समाप्त हो गया। वाराह मिहिर ने सर्वप्रथम खगोलशास्त्रीय कार्यों में शक सम्वत् का प्रयोग किया। "जब कलियुग सम्वत् अकेला प्रयोग किया जाता है तो माह के दिनों को सौर्य वर्ष अथवा चन्द सौर्य के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। साधारणतः वर्ष को दो कालों में व्यक्त किया जा सकता है जिसमें एक सूर्य वर्ष से तथा दूसरा चन्द्र से जोड़ा जा सकता है। उत्तरी भारत में शक सम्वत् व कलि सम्वत् साधारणतः सूर्य की गति से बाधित हैं परन्तु हमेशा नहीं।"[2]

महाभारत के पश्चात् युधिष्ठिर के उत्तराधिकारी परीक्षित के राज्यारोहण के समय से कलि सम्वत् की गणना की जाती है। परन्तु महाभारत व पुराण परीक्षित नाम के दो राजाओं का उल्लेख करते हैं। अभिमन्यु पुत्र परीक्षित तथा वैदिक परीक्षित। हेमचन्द्र राय चौधरी ने विभिन्न साक्ष्यों का परिचय देते हुए इन दोनों को एक ही माना है। "यदि हम उस तथ्य पर ध्यान दें कि न केवल परीक्षित नाम, वरन् उसके अधिकांश पुत्रों के नाम एक जैसे हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि परीक्षित प्रथम व परीक्षित द्वितीय एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। उनसे सम्बन्धित व्यक्ति तथा कहानियां समान हैं। अतः सम्भावना यही है कि कुरुवंश में केवल एक ही परीक्षित हुए थे जिनके पुत्र ने तुर व इन्द्रोत दोनों पुरोहितों को प्रश्रय दिया था।"[3] मैकडोनल, कीथ और पार्जिटर आदि ने यह माना है कि परीक्षित प्रथम जनमेजय के पिता तथा पाण्डु के पूर्वज थे। डा० एन० दत्त ने इस मत का समर्थन किया है परन्तु राय चौधरी

---

१. डा० मुरली मनोहर जोशी, 'हमारी प्राचीनतम काल गणना कितनी आधुनिक व वैज्ञानिक', "धर्मयुग", दिसम्बर २५-३१, १९८३, पृ० २७।
२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ३२।
३. हेमचन्द्र राय चौधरी, "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास", इलाहाबाद, १९८०, पृ० १४-१५।

ने इन विचारों का खण्डन करते हुए एक ही परीक्षित के अस्तित्व पर बल दिया है। "प्रथम तो परीक्षित के सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। दूसरे दोनों में अधिकांश तथ्यों की समानता मिलती है। जैसे कुरुराज्य की समृद्धि का वर्णन, दो अश्वमेघ यज्ञों का होना तथा कश्यपों से युद्ध आदि।"[1]

महाभारत युद्ध के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न परम्पराओं से युद्ध के लिए ३१३७ ई० पूर्व की तिथि की पुष्टि होती है। युद्ध समाप्ति के पश्चात् कलियुग का आरम्भ हुआ तथा इसी समय से कलि सम्वत् की गणना की जाती है। यद्यपि कुछ विद्वान् ऐसा मानते हैं कि कलि के आरम्भ से कई शताब्दी पश्चात् कलि सम्वत् की गणना आरम्भ हुई, परन्तु गणना का आधार वही समय व वर्ष माना जाता है जिससे कलियुग का आरम्भ हुआ। अधिकांश सम्वतों के सम्बन्ध में यही बात रही है कि जिस घटना से उनकी गणना की जाती है उससे काफी समय पश्चात् सम्वत् की स्थापना की गयी। यह प्रवृत्ति न केवल भारतीय सम्वतों में सामान्य रूप से पायी जाती है वरन् विश्व के अनेक प्रमुख सम्वतों के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणायें प्रचलित हैं। उदाहणार्थ, अनेक विद्वान इसाई सम्वत् का आरम्भ इस सम्वत् की १०वीं शताब्दी में प्रचलित किया मानते हैं।

महाभारत की घटना ने न केवल भारतीय इतिहास को वरन् विश्व इतिहास को प्रभावित किया। अनेक राष्ट्रों के साहित्य से इस घटना के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है तथा वहां यह समय गणना का आधार रही है। डा० त्रिवेद के अनुसार कलि के आरम्भ से ३६ वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध लड़ा गया। प्राचीन ग्रीस, चीन, मिश्र, अरेबिया तथा मैक्सिको आदि में यह तिथि इतिहास की आधारशिला है तथा वहां के साक्ष्यों से भी इस तिथि की पुष्टि होती है।[2]

कलि सम्वत् के आरम्भ के लिए ३२०१-२ ई० पूर्व की तिथि की पुष्टि अनेक विद्वानों ने की है। इनमें डा० डी० एस० त्रिवेद[3], एलैग्जेण्डर कनिंघम[4], सी० मोबल डफ[5] (शुक्रवार १८ फरवरी, ३१०२ ई० पूर्व कलियुग का आरम्भ

---

१. हेमचन्द्र राय चौधरी, "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास" इलाहाबाद, १९८०, पृ० १८।

२. डी० एस० त्रिवेद, "भारत का नया इतिहास", वाराणसी, पृ० ९।

३. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० १३।

४. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० १९।

५. सी० मोबल डफ, 'द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", वोल्यूम-प्रथम, वाराणसी, १९७५, पृ० ४।

अथवा भारतीय ज्योतिष सम्वत् जो जुलियन के ५८८, ४६६ दिन पड़ते हैं, अथवा विक्रम सम्वत् से ३०४४ वर्ष पूर्व अथवा शक सम्वत् से ३१७९ वर्ष पूर्व कलियुग का आरम्भ हुआ), डा० मुरली मनोहर जोशी[1], रघुनाथ सिंह[2], हेमचन्द्र राय चौधरी, एस० पिल्लैयी[3], अरुण, राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा[4], आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतीय कलैण्डर सुधार समिति ने भी ३१०१ ई० पूर्व कलियुग के आरम्भ की तिथि मानी है तथा यही तिथि अब सर्वाधिक मान्य व प्रमाणित समझी जाती है। यह चन्द्र सौर्य पद्धति पर आधारित है, चैत्र शुदी प्रथम से वर्ष आरम्भ होता है तथा क्रिश्चियन सम्वत् के समान ही बाद में ग्रहण किया गया है।[5]

भारतीय काल गणना के इतिहास में कलिसम्वत् को प्रथम गणना पद्धति माना जा सकता है। वास्तव में गणना पद्धति का विकास शनैः-शनैः हुआ। पंचांग सुधार के लिये समय-समय पर अनेक आन्दोलन चले। परन्तु इस सबका आधार यही आरम्भिक कलिसम्वत् गणना पद्धति रही है। तिथि, पक्ष, माह, आयन (उत्तरायण व दक्षिणायन) ऋतुयें तथा वर्ष आदि की जो व्यवस्था कलि-सम्वत् गणना पद्धति की है वही भारत में आरम्भ होने वाले विभिन्न सम्वतों का आधार रही तथा आज भी हिन्दू पंचांग निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है तथा खगोलशास्त्रीय कार्यों का आधार है।

लौकिक सम्वत्

इसको सप्तर्षि सम्वत्, लौकिक काल, लौकिक सम्वत्, शास्त्र, सम्वत् पहाड़ी सम्वत् या कच्चा सम्वत् आदि नामों से जाना जाता है। इस सम्वत् का प्रचलन मुल्तान व काश्मीर व आस-पास के क्षेत्र में रहा। यह २७०० वर्षों वाले

---

१. मुरली मनोहर जोशी, 'हमारी प्राचीनतम काल गणना कितनी आधुनिक व वैज्ञानिक', "धर्मयुग", दिसम्बर २५-३१, १९८३, पृ० २७।

२. रघुनाथ सिंह, "ए डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड क्रोनोलॉजी", वोल्यूम-प्रथम, वाराणसी, १९७७।

३. एल० डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४३।

४. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १६१।

५. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५२।

सप्तर्षि चक्र पर आधारित है इसकी पद्धति का उल्लेख अध्याय प्रथम में "सप्तर्षि चक्र" नामक शीर्षक से किया जा चुका है।

लोक काल वास्तव में पूर्व प्रचलित सप्तर्षि काल का ही नया नाम था। लोक काल सम्वत् के आरम्भ की तिथि ७२४ ई० पूर्व दी गयी है।[1] इस प्रकार लोक काल सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष ७२४+१९८९=२७१३÷२७०० =१ पूर्ण व १३ शेष, अर्थात् एक चक्र पूर्ण होकर दूसरे का १३-१४ वर्ष चालू है। यह वर्तमान वर्ष अनुमानित है। सप्तर्षि सम्वत् का प्रयोग अभिलेखों के लिए भी हुआ है। "११वीं शताब्दी में हमें ऐसे लेख मिलते हैं जिन पर सर्वमान्य सम्वत् में तिथियाँ लिखी हैं। यह लोक काल या लोकप्रिय सम्वत् है। इसे सप्तर्षि काल जिसे कल्हण ने राजतरंगणी में प्रयोग किया है, कहते हैं। चम्बा लेख में इस सम्वत् के वर्षों को शास्त्र या शास्त्रीय संवत्सर कहा गया है, कभी-कभी सिर्फ सम्वत् भी लिखा मिलता है।[2] मथुरा से पाये जाने वाले कुषाण राजाओं के लेखों में पाये जाने वाले सम्वत् जिसकी तिथियां सदैव सौ से कम रहती हैं, को भी कुछ लोग सप्तर्षि सम्वत् ही मानते हैं। परन्तु, कतिपय मत इसको कनिष्क द्वारा चलाये गये किसी सम्वत् की तिथि मानने के पक्ष में भी हैं। अतः इस संदर्भ में मतभिन्नता है, स्पष्ट निष्कर्ष नहीं है। जो भी हो यदा कदा अभिलेखों में इस सम्वत् का अंकन हुआ है। कल्हण द्वारा इस सम्वत् का प्रयोग तो निश्चित ही है, अतः इसकी साहित्यिक व ऐतिहासिक उपयोगिता है। इसे काश्मीर के पंचांगों में भी प्रयोग किया गया है।

इस सम्वत् की आरम्भ तिथि के सम्बन्ध में ही उल्लेख मिलते हैं, आरम्भकर्ता के रूप में किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं आता, अर्थात् यह परम्परागत रूप में सप्तर्षि चक्र को नया नाम दे देने के कारण ही नये रूप में जाना जाने लगा, किसी विशिष्ट घटना पर व्यक्ति विशेष ने इसकी स्थापना नहीं की।

संक्षेप में लोक काल सम्वत् को इस प्रकार समझा जा सकता है कि पूर्व प्रचलित सप्तर्षि चक्र जिसका आरम्भ ३१७६ ई० पूर्व के लगभग हुआ ७२४-२५ ई० पूर्व में लोक काल के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। भारत के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में इसका प्रयोग किया गया, लोक काल का विशेष महत्त्व काश्मीर इतिहास में है।

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

२. जे० वोगल, "एन्टीक्वेटीज ऑफ चम्बा स्टेट", कलकत्ता, १९११, पृ० ६९।

बुद्ध निर्वाण सम्वत्

बौद्ध धर्म प्रवर्तक गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण से आरम्भ हुआ यह सम्वत् बुद्ध निर्वाण सम्वत् के नाम से जाना जाता है। बुद्ध निर्वाण सम्वत् का प्रचलन किसी क्षेत्र विशेष में नहीं वरन् सम्प्रदाय विशेष में है। इसका आरम्भ बौद्ध धर्म के प्रवर्तक के परिनिर्वाण से होता है अतः इस धर्म के अनुयायियों के लिए धार्मिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण तिथि है। विश्व भर में जहां भी बौद्ध धर्म के अनुयायी बसते हैं, वे बुद्ध निर्वाण सम्वत् का प्रयोग करते हैं। किसी भी क्षेत्र के सभी लोग इस सम्वत् का प्रयोग नहीं करते, अतः किसी नगर, प्रान्त या राष्ट्र का नाम बुद्ध निर्वाण सम्वत् के प्रचलन के लिए नहीं लिया जा सकता वरन् इस सम्बन्ध में यही कहना उचित है कि बुद्ध निर्वाण सम्वत् का प्रचलन बौद्ध सम्प्रदाय में है। बुद्ध निर्वाण सम्वत् का वर्तमान चालू वर्ष २५३३ है, जो ई० सन् १९८९ विक्रम २०४६, शक १९११, श्री कृष्ण जन्म सम्वत् ५२२५ मौहम्मद हिज्री १४०९-१० के बराबर है।

बुद्ध निर्वाण सम्वत् का आरम्भ एक महापुरुष की पुण्य तिथि के रूप में हुआ, जोकि एक जन समुदाय अथवा पूरे एक सम्प्रदाय द्वारा एक साथ स्वीकार की जाती है व मनायी जाती है। अतः इसके आरम्भ के लिए कोई व्यक्ति विशेष नहीं वरन् पूरा ही बौद्ध सम्प्रदाय उत्तरदायी है। इसके सम्बन्ध में यह सम्भावना अधिक है कि आरम्भ में यह तिथि मात्र पुण्य तिथि के रूप में ही मनायी जाती होगी तथा बाद में इसे पुण्य तिथि के समय से गणना करते हुए एक संवत् का रूप दे दिया गया होगा। आध्यात्मिक रूप से विश्व को एक नयी दिशा देने वाले तथा एक लम्बे समय तक साहित्य का केन्द्र बने रहने वाले महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि आज व्यक्तिगत तथा संघों की रूढ़ियों व पूर्व प्रचलित धारणाओं के बीच एक गहन विवाद का विषय बनी हुयी है। महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण की जितनी अधिक तिथियाँ उपलब्ध होती हैं, शायद ही अन्य किसी व्यक्ति या घटना के विषय में हों। विभिन्न स्थानों पर प्रचलित परम्पराओं ने इस संदर्भ में विभिन्न तिथियां दी हैं। बुद्ध निर्वाण के संदर्भ में उपलब्ध साक्ष्यों को, जिनका प्रयोग तिथि निर्धारण के लिए किया जाता है, स्वदेशी व विदेशी साक्ष्यों में गिना जा सकता है।

बुद्ध निर्वाण सम्वत् के सम्बन्ध में विदेशी साक्ष्यों में सर्वप्रथम नाम कैंटन परम्परा का आता है। इस परम्परा का उल्लेख डा० त्रिवेद व एस० भट्टाचार्य[1]

---

१. एस० भट्टाचार्य, "ए डिक्शनरी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", कलकत्ता, १९६७, पृष्ठ १७४।

ने किया है। "उपाली ने विनय ग्रन्थ बुद्ध निर्वाण के बाद संग्रहीत किये। वे निर्वाण के बाद के सांतवें महीने से पूर्णिमा के दिन उसकी पूजा करते थे तथा प्रति वर्ष एक बिन्दु दिया करते थे। ४६० ई० में वहां ६७५ बिन्दु थे, जो ६७५ वर्षों का प्रतिनिधित्व करते थे। योग्य शिष्यों के अभाव में वहां कोई बिन्दु नहीं रखे गये। अत. भगवान् बुद्ध की निर्वाण तिथि उपाली ने ६७५—४६०=४८५ ई० पूर्व मानी है।"[1] केंटन परम्परा को डा० त्रिवेद ने अविश्वसनीय बताया है तथा इसकी आलोचना की है: "केंटन परम्परा अब विश्वसनीय नहीं रही, क्योंकि यह निश्चित नहीं कि पूर्व में धर्म प्रचार का कार्य उपाली को सौंपा गया था। शताब्दियों के दीर्घकाल में एक या दो बिन्दु भूल जाना या मिट जाना सम्भव है। सुयोग्य अनुयायियों के अभाव में यह भी सम्भव है कि बिन्दु रखें ही न गये हों।"[2] डा० त्रिवेद का विचार है कि विचारकों ने बुद्ध के काल को अपने समीप रखने लिए इन परम्पराओं का सहारा लिया है। डा० त्रिवेद ने स्वयं बुद्ध निर्वाण की तिथि १७९३ ई० पूर्व मानी है।[3] परन्तु डा० त्रिवेद के विचारों को भी अधिक मान्यता प्राप्त नहीं है।

सीलोन, ब्रह्मदेव तथा श्याम परम्पराओं के अनुसार बुद्ध ने ५४३ ई० पूर्व में निर्वाण प्राप्ति की। इन परम्पराओं के सम्बन्ध में भी त्रिवेद का कहना है: बुद्ध निर्वाण की तिथि दीपवंश व महावंश के अनुसार क्रमशः ५४३ ई० पूर्व तथा ५२२ ई० पूर्व है।[4]

एलेग्जेण्डर कनिंघम ने विभिन्न बौद्ध व अन्य दूसरे साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद ५४४ ई० पूर्व बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि स्वीकार की है। "सभी बौद्ध साक्ष्य इस बात पर एकमत हैं कि बुद्ध का निर्वाण अशोक के राज्यारोहण से २१४ वर्ष पूर्व हुआ। इस प्रकार यह तिथि २१४+२६४=४७८ ई० पूर्व बैठती है।"[5] कनिंघम द्वारा और दूसरे साक्ष्यों से बुद्ध निर्वाण की तिथि ५४४ ई० पूर्व पायी गयी। "बुद्ध साक्ष्यों के अतिरिक्त दूसरे साक्ष्य बुद्ध निर्वाण की तिथि ५४४ ई० पूर्व देते हैं। इस प्रकार इन दोनों साक्ष्यों में

---

१. डी० एस० त्रिवेद, "भारत का नया इतिसास", वाराणसी, पृ० १३।
२. वही।
३. वही, पृ० १५।
४. वही, पृ० १२।
५. एलेग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १६७६, पृ० ३५।

६६ वर्ष का अन्तर है।"[1] "इन्हीं कारणों से मैं (कनिंघम) तो बुद्ध निर्वाण की स्वीकृत तिथि ५४४ ई० पूर्व ही स्वीकार करता हूं। जैसाकि बर्मा व लंका के इतिहासकारों ने स्वीकार की है। साथ ही मैं यह भी सोचता हूं कि निश्चय ही इसमें करीब ६६ वर्ष की त्रुटि है।"[2] कनिंघम के कथन से स्पष्ट है कि वे स्वयं ही अपने निर्णय से सन्तुष्ट नहीं हैं। बुद्ध निर्वाण की ५४४ ई० पूर्व की तिथि को कनिंघम ने भी स्वीकार किया है, साथ ही उसकी त्रुटि की ओर भी संकेत किया है तथा इसमें त्रुटि है यह भी माना है।

उपरोक्त वर्णित परम्पराओं के अतिरिक्त कुछ विदेशी विद्वानों ने बुद्ध निर्वाण के संदर्भ में अपने स्वतन्त्र मत भी दिये हैं: केन ३६८, ३७०, ३८०, ३८८ ई० पूर्व, रीज डेविड्स ४१२ ई० पूर्व, एफ० मैक्समूलर ४७७ ई० पूर्व, स्वामी कन्नुपिल्लै ४७० ई० पूर्व, ओल्डन बर्ग ४८० ई० पूर्व, जे० एफ० फ्लीट ४८२ ई० पूर्व, फँचू ४८३ ई० पूर्व, वी० ए० स्मिथ ४८७ ई० पूर्व, स्मिथ ५०८ ई० पूर्व, महावमसा ५२० ई० पूर्व, द्वीपवमसा ५४३ ई० पूर्व।

बुद्ध निर्वाण की तिथि निर्धारण के क्षेत्र में भारतीय विद्वानों का भी योगदान है। इनके मत इस प्रकार हैं: डा० त्रिवेद ने बुद्ध निर्वाण के लिए कुछ तिथियां इस प्रकार दी हैं: १८०७ ई० पूर्व, २१३५ ई० पूर्व, २१३९ ई० पूर्व, २१४८ ई० पूर्व, २४२२ ई० पूर्व। जायसवाल ने ५४४ ई० पूर्व तिथि बतायी है तथा गया लेख के अनुसार ६३३ ई० पूर्व की तिथि दी गयी है। राधा कुमुद मुखर्जी ने ५४४ ई० पूर्व की तिथि का समर्थन किया है: "५४४ ई० पूर्व बुद्ध निर्वाण की तिथि है जैसी कि सिंहली तथ्यों से मिलती है तथा इसी के आधार पर निर्वाण सम्वत् चलाया है। पूर्ण रूप से अस्वीकार नहीं की जा सकती।"[3] डा० मजूमदार ने इस संदर्भ में ४८७ ई० पूर्व की तिथि का ही समर्थन किया है।[4] बुद्ध की छः जन्म कुण्डलियां हैं। इनसे भी निर्वाण तिथि का पता चलता है: ४६३ ई० पूर्व, ४७७ ई० पूर्व, ५४३ ई० पूर्व तथा १८०७ ई० पूर्व की चार तिथियां इन कुण्डलियों से प्राप्त होती हैं।[5]

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम "ए बुक आफ इण्डियन एराज", वराणसी १९७६, पृ० ३५।
२. वही, पृ० ३६।
३. राधा कुमुद मुखर्जी, "दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी", जिल्द, दो बम्बई, १९५३, पृ० ३८।
४. रमेश चन्द्र मजूमदार, "प्राचीन भारत", दिल्ली, १९६२, पृ० ८२।
५. डी० एस० त्रिवेद, "भारत का नया इतिहास", वाराणसी, पृ० १५।

राधा कुमुद मुखर्जी ने बुद्ध व अजात् शत्रु की समकालीनता के आधार पर बुद्ध निर्वाण की तिथि तय करने का प्रयास किया है। "जो भी विवाद रहा हो परन्तु बुद्ध व अजात् शत्रु की समकालीनता को सभी बौद्ध साक्ष्यों ने स्वीकार किया है। अजात् शत्रु के शासनकाल के ८वें वर्ष में बुद्ध मरे, और यह समकालीनता अन्य विद्वानों ने भी स्वीकार की है।"[1] "कैंटन परम्परा के आधार पर ४८६ ई० पूर्व की तिथि बुद्ध निर्वाण के लिए दी गयी है। यद्यपि इसे या अन्य किसी भी तथ्य को पूर्ण मान्यता नहीं है तथापि ४८६ ई० पूर्व की तिथि स्वीकार कर ली गयी है तथा अधिकांश विचारक बुद्ध के निर्वाण की तिथि इसी के आस-पास पाँच वर्षों के बीच स्वीकार करते हैं।"[2] डा० हेमचन्द्र राय चौधरी ने भी विभिन्न साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर बुद्ध के निर्वाण की तिथि ४८६ ई० पूर्व स्वीकार की है।[3]

इस प्रकार विश्व भर में साहित्य, अभिलेखों व अन्य साक्ष्यों से बुद्ध निर्वाण की तिथियां प्राप्त होती हैं जो ई० पूर्व ३६८ से ई० पूर्व २४२२ के बीच की हैं। कलैण्डर रिफोर्म कमेटी द्वारा बुद्ध निर्वाण की तिथि ५४४ ई० पूर्व दी गयी है। यही तिथि अधिक विश्वसनीय व माननीय है। इसका निर्धारण अनेक साहित्यिक व अभिलेखीय साक्ष्यों के विश्लेषण के बाद किया गया है। इसके अतिरिक्त बुद्ध जन्म कुण्डली (५४३ ई० पूर्व), राधा कुमुद मुखर्जी (५४४ ई० पूर्व), दीपवमसा (५४३ ई० पूर्व), कनिंघम (५४४ ई० पूर्व), सीलोन, ब्रह्मदेव व श्याम परम्परायें (५४३ ई० पूर्व), आदि विद्वानों व परम्पराओं द्वारा स्वीकृत तिथियां भी ५४४ ई० पूर्व की तिथि के आसपास ही एक-दो वर्ष के अन्तर से हैं।

बौद्ध सम्प्रदाय में प्रचलित बौद्ध निर्वाण सम्वत् की तिथि से भी ५४४ ई० पूर्व की तिथि का ही समर्थन होता है जैसा कि १९८६ ई० में बुद्ध निर्वाण सम्वत् का २५३०वां वर्ष चालू था।[4] अर्थात् २५३० — १९८६ = ५४४ ई० पूर्व।

बुद्ध निर्वाण सम्वत् का प्रयोग साहित्य व अभिलेख दोनों के लिए हुआ। "बौद्धों में (शाक्यमुनि) के निर्वाण से जो सम्वत् माना जाता है उसको बुद्ध

---

१. राधा कुमुद मुखर्जी, "दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी", जिल्द दो, पृ० ३७।
२. वही।
३. हेमचन्द्र राय चौधरी, "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास", इलाहाबाद, १९८०, पृ० १९९।
४. "राष्ट्रीय पंचांग", नई दिल्ली, १९८६।

निर्वाण सम्वत् कहते हैं। यह बौद्ध ग्रन्थों में लिखा मिलता है और कभी-कभी शिलालेखों में भी।"[1] बुद्ध निर्वाण सम्वत् बौद्ध सम्प्रदाय के धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग होता है तथा उनकी धार्मिक सभाओं व त्यौहारों के अंकन व तिथि निर्धारण के काम आता है अतः इस सम्वत् का धार्मिक महत्व है। इसके अतिरिक्त बुद्ध निर्वाण सम्वत् इतिहास लेखन व इतिहास के उलझे प्रश्नों को सुलझाने में सहायक है। बुद्ध का निर्वाण स्वयं एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है जिसके साथ अनेक राजवंशों का इतिहास जुड़ा है जबकि बुद्ध निर्वाण तिथि का निर्धारण व खोज की जाती है तब इसके समकालीन अनेक राज्यों का इतिहास स्वयं ही सामने आ जाता है तथा उनके तिथिक्रम को निर्धारित करने में सहायता मिलती है। परन्तु इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि बुद्ध निर्वाण सम्वत् का प्रयोग राजनैतिक कार्यों के लिए भी कभी किया गया। जिन शासकों ने बौद्ध धर्म अंगीकार भी किया उन्होंने इसको मात्र धार्मिक दृष्टिकोण से ही महत्व दिया। राजनैतिक क्षेत्र में या तो पूर्व प्रचलित गणना को ही अपनाये रखा अथवा अपने नये सम्वत् की स्थापना की। वैसे राजनीति में बौद्ध निर्वाण सम्वत् का न दिखना इस बात का भी संकेत हो सकता है कि इस सम्वत् का निर्धारण अभी कुछ शताब्दियों पूर्व ही हुआ हो। जिस समय भारत में बौद्ध धर्म के प्रसार व राजाओं द्वारा बौद्ध धर्म अपना लिये जाने की प्रथा थी, तब बौद्ध निर्वाण सम्वत् अथवा बुद्ध से सम्बन्धित अन्य किसी गणना पद्धति का अस्तित्व ही न हो, फिर राजनैतिक क्षेत्र में इस सम्वत् के प्रयोग का प्रश्न ही नहीं रह जाता।

अपने धार्मिक महत्व के लिए आज भी बुद्ध निर्वाण सम्वत् प्रचलित है। इसका प्रयोग विश्व भर में जहां भी बौद्ध धर्म के अनुयायी रह रहे हैं, अपने धार्मिक कृत्यों के लिये करते हैं।

महावीर निर्वाण सम्वत्

जैनों के अन्तिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण अथवा मोक्ष प्राप्ति के समय से आरम्भ हुआ यह सम्वत् महावीर निर्वाण सम्वत् अथवा वीर निर्वाण सम्वत् के नाम से जाना जाता है। यह सम्वत् जैन धर्म के तीर्थंकर के निर्वाण से आरम्भ होता है अतः यह घटना जैन धर्मावलम्बियों के लिए धार्मिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। इस सम्वत् का प्रयोग इसी धर्म के लोगों द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों की पूर्ति के लिए किया जाता है। किसी क्षेत्र विशेष का नाम इस सम्वत्

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १६८।

के प्रचलन के लिए नहीं लिया जा सकता क्योंकि किसी भी क्षेत्र विशेष के सभी लोगों द्वारा इसका प्रयोग नहीं हो रहा है, बल्कि इस संदर्भ में यही कहना उचित है कि जहां भी देश भर में जैन धर्म के अनुयायी हैं उनके द्वारा इस सम्वत् का प्रयोग अपने धार्मिक कृत्यों के लिए किया जाता है।

महावीर निर्वाण सम्वत् का वर्तमान चालू वर्ष २५१५-१६ है जो ई० सन् १९८९, विक्रम २०४६, शक १९११, श्री कृष्ण जन्म सम्वत् ५२२५, मोहम्मद हिज्री १४०९-१० के बराबर है।

जैन सम्प्रदाय के 23वें तीर्थंकर वर्तमान महावीर के परिनिर्वाण की तिथि प्राचीन भारतीय इतिहास की दूसरी घटनाओं की तिथि निश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ के रूप में ग्रहण की जाती है। इसी तिथि से जैन सम्प्रदाय के धार्मिक अनुष्ठानों के लिए महावीर निर्वाण सम्वत् ग्रहण किया जाता है तथा यह सम्वत् अन्य दूसरी घटनाओं का समय निश्चित करने में महत्वपूर्ण रूप से सहायक है। ऐसा माना जाता है कि महावीर का परिनिर्वाण शकों के उज्जयिनी क्षेत्र में पहली बार प्रवेश के ४६१ वर्ष पहले, विक्रम सम्वत् के आरम्भ होने से ४७० वर्ष पहले, शक सम्वत् के आरम्भ होने से ६०५ वर्ष तथा ५ माह पहले तथा प्रथम कल्कि के युग के १००० वर्ष पहले हुआ।

महावीर के निर्वाण की दो महत्वपूर्ण तिथियां प्राप्त होती हैं। "श्वेताम्बर सम्प्रदाय महावीर के निर्वाण की तिथि विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व अर्थात् ५२७ ई० पूर्व मानते हैं। लेकिन दिगम्बरों के अनुसार यह तिथि विक्रम से ६०५ वर्ष पूर्व अर्थात् ६६२ ई० पूर्व है। इस प्रकार ठीक १३५ वर्षों के अन्तर वाली दो तिथियां प्राप्त होती हैं।"[1] इस प्रकार शक सम्वत् से ६०५ वर्ष पूर्व व विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व वाली तिथि हैं। कनिंघम ने इसी त्रुटि की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार "दिगम्बरों द्वारा दी गई तिथि सम्भवतः ६०५ विक्रम न होकर शक होनी चाहिए तब दोनों तिथियों का सामंजस्य हो सकता है"।[2] इसी संदर्भ में उन्होंने आगे लिखा है : "मैंने इस सम्बन्ध में उत्तरी भारत के जैन विद्वानों से पूछताछ की और प्रत्येक का यही उत्तर रहा कि यह तिथि विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व की है"।[3]

---

१. एलेग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ३७।

२. वही।

३. वही।

डा० जायसवाल ने जे० बी० ओ० आर० एस० में लिखे अपने एक लेख में महावीर निर्वाण की तिथि ५४५ ई० पूर्व बतायी है। इसका खण्डन ज्योति प्रसाद ने निम्न रूप में किया है : "जायसवाल के सिद्धान्त की मुख्य कमी यह है कि उन्होंने जैन श्रोतों का मात्र आंशिक उपयोग किया है और केवल उस सीमा तक किया है जिस सीमा तक कि वे उनके सिद्धान्त का समर्थन करते हैं तथा शेष की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। हो सकता है कि जैन लेखकों में इस बात पर मतभेद हो कि विक्रम ने सम्वत् अपने जीवन की किसी तिथि को आरम्भ किया किन्तु इस बात पर पूर्ण सहमति है कि यह सम्वत् महावीर निर्वाण के ४७० वर्ष बाद आरम्भ हुआ।"[1] एस०वी० वेंकटेश्वर ४३७ ई० पू०, प्रो० जार्ज चार्वेन्टीयर ४७७ ई० पूर्व, एच०सी० राय चौधरी ४८६ ई० पूर्व या ५३६ ई० पू० (कैन्टनी या लंका की गणनाओं के आधार पर), प्रो०सी०डी० चटर्जी ४८६ ई०पूर्व, प्रो० एच० सी० सेठ ४८८ ई० पूर्व, एन० गोविन्द पाई ५४६ से ५०१ ई० पूर्व के मध्य, पंडित जे० के० मुख्तार व प्रो० हीरा लाल परम्परागत तिथि ५२७ ई० पूर्व, मुनि कल्याण विजय ५२८ ई० पूर्व आदि विभिन्न विद्वानों ने महावीर निर्वाण के लिए अनेक तिथियां दी हैं। इन विभिन्न तिथियों का विश्लेषण कर ज्योति प्रकाश इस निष्कर्ष पर पहुँचे :

> ये मूल रूप से कुछ धारणाओं या पूर्वाग्रहों और अधिकतर बाह्य और थोड़े से आन्तरिक साक्ष्यों पर आधारित है। यदि हम इस तिथि को विशेषरूप से बुद्ध की तिथि (जोकि अभी भी भारी विवाद का विषय है) के आधार पर तय करें या यूनानी समकालीनता (जोकि पूर्णतः निरापद किया हुआ तथ्य नहीं है) के आधार पर तय करें तो हम इस समस्या के साथ न्याय नहीं कर रहे होंगे। विशेषरूप से इस कारण से कि जैन, बौद्धों व ब्राह्मणों की विभिन्न परम्परायें इस विषय में एकमत नहीं हैं कि महावीर या बुद्ध की मृत्यु और चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनासीन होने के बीच कितने वर्ष का समय बीता। आवश्यकता इस बात की है कि महावीर की तिथि स्वतन्त्र रूप से तय की जानी चाहिए और ऐसे आंकड़ों के आधार पर तय की जानी चाहिए जो अधिक ठोस हों और जिनमें परिवर्तन न हो सके और तभी हमें इसका अन्य परम्पराओं तथा इतिहास के जाने माने और सिद्ध हुए तथ्यों के साथ मेल बैठाने का प्रयास करना चाहिए।[2]

---

१. ज्योति प्रसाद जैन, "द जैन सोर्सिज ऑफ द हिस्ट्री ऑफ एंशियेंट इण्डिया", दिल्ली, १९६४, पृ० ३६।

२. वही, पृ० ४१।

कर्नल टोड ने महावीर निर्वाण ४७७ वर्ष विक्रम से पूर्व माना। जैन रिवाजों से महावीर निर्वाण के लिए ५४५ तथा ४६७ ई० पूर्व की तिथियां भी प्राप्त होती हैं, परन्तु ये तिथियां बुद्ध परम्पराओं तथा साहित्य से मेल नहीं खातीं।[1] डा० डी० एस० त्रिवेद ने महावीर निर्वाण की तिथि १७९५ ई० पूर्व निश्चित करने का प्रयास किया है।[2] उन्होंने अपने मत की पुष्टि में विभिन्न साक्ष्यों का उल्लेख किया है परन्तु, यह मत अधिक मान्य नहीं है।

महावीर निर्वाण सम्वत् को वीर निर्वाण सम्वत् के नाम से भी जाना जाता है। "जैनों के अन्तिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण से जो सम्वत् माना जाता है उसको वीर निर्वाण सम्वत् कहते हैं उसका प्रचार बहुधा जैन ग्रन्थों में मिलता है तो भी कभी-कभी उसमें दिये हुये वर्ष शिलालेखों में भी मिल जाते हैं।"[3] ओझा ने अपने तर्कों के लिए निम्न तीन साक्ष्य दिये हैं: "श्वेताम्बर मेरु तुंग ने अपनी **विचार श्रेणी** नामक पुस्तक में वीर निर्वाण सम्वत् और विक्रम सम्वत् के बीच का अन्तर ४७० दिया है। इस गणना के अनुसार विक्रम सम्वत् में ४७०, शक सम्वत् में ६०५ और ई० सम्वत् में ५२७ जोड़ने से वीर निर्वाण सम्वत् आता है। श्वेताम्बर अम्बदेव उपाध्याय के शिष्य नेमिचन्द्राचार्य रचित **महावीर चरित्र** नामक प्राकृत काव्य में लिखा है: "मेरे (महावीर के) निर्वाण के ६०५ वर्ष व ५ माह बीतने पर शक राजा उत्पन्न होगा।" दिगम्बर सम्प्रदाय के नेमिचन्द्र रचित **त्रिलोकसार** नामक पुस्तक में भी वीर निर्वाण से ६०५ वर्ष और ५ माह बाद शक राजा का होना लिखा है।"[4] इन सब साक्ष्यों के आधार पर पंडित ओझा इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं: "इससे पाया जाता है कि दिगम्बर सम्प्रदाय के जैनों में भी पहले वीर निर्वाण और शक सम्वत् के बीच ६०५ वर्ष का अन्तर होना स्वीकार किया जाता था, जैसाकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय वाले मानते हैं।"[5]

---

१. सी० मोबल डफ, "द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", वोल्यूम-प्रथम, वाराणसी, १९७५, पृ० ५।

२. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० १७।

३. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १६३।

४. वही।

५. वही।

वर्द्धमान महावीर के परिनिर्वाण की तिथि जैन रिवाजों से ५४५ ई० पूर्व तथा ४६७ ई० पूर्व भी प्राप्त होती है तथा ७०७ ई० में **पद्म पुराण** की रचना की गयी, जिसकी तिथि वीर १२०४ है, जो ५४४ या ५४५ ई० पूर्व बैठती है। यहीं से वीर सम्वत् का आरम्भ होता है।[1] डा० त्रिवेद ने यह तिथि ३६२ ई० अथवा २४८ शक सम्वत् दी है।[2] परन्तु डा० त्रिवेद द्वारा दी गयी तिथियों को अभी विशेष मान्यता नहीं है।

आधुनिक समय में जैन सम्प्रदाय में प्रचलित महावीर की जन्म तिथि के आधार पर भी ५२५ ई० पूर्व ही महावीर निर्वाण की तिथि आती है, जिसका समर्थन अन्य बहुत से साक्ष्यों से होता है। उदाहरणार्थ जैसाकि २५-४-८३ को महावीर निर्वाण की २५८१वीं जयन्ती (जन्म दिन) मनायी गयी। यदि इसमें से ई० सम्वत् के १९८३ वर्ष घटा दिये जायें तब महावीर का जन्म ५९७ ई० पूर्व आता है तथा इसमें से महावीर के जीवन काल के ७२ वर्ष घटा देने पर महावीर का निर्वाण काल ५२५ ई० पूर्व आता है जो ५२७ ई० पूर्व की तिथि के करीब है। हेमचन्द्र राय चौधरी[3], सी० मोबल डफ[4], आदि ने भी इसी तिथि का समर्थन किया है अर्थात् ५२७ ई० पूर्व अथवा शक सम्वत् के ६०५ वर्ष पूर्व ही महावीर परिनिर्वाण की तिथि निश्चित की जा सकती है तथा यही जैन सम्वत् की आरम्भ तिथि है। मुनि नागराज ने भी इसे स्वीकारते हुए लिखा है : "महावीर निर्वाण सम्वत् जोकि आजकल जैन रीति-रिवाजों में प्रचलित है, भी ५२७ ई० पूर्व पर आधारित है। ध्यान देने योग्य बात है कि सारे जैन इसको एकमत से तथा बिना किसी विवाद के स्वीकार करते हैं। आजकल (१९६३ ई० में) महावीर का निर्वाण वर्ष २४९० है अर्थात् ईसाई सम्वत् से ५२७ वर्ष आगे, जैसाकि इसे होना चाहिए।"[5]

---

१. सी० मोबल डफ, "क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", वोल्यूम-प्रथम, वाराणसी, १९७५, पृ० ५५।

२. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३३।

३. हेमचन्द्र राय चौधरी, "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास", इलाहाबाद, १९८०, पृ० १६९।

४. सी० मोबल डफ, "क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", वोल्यूम-प्रथम, पृ० ५५।

५. मुनि श्री नाग राज जी, "द कन्टमप्रेरेरीनिटी एण्ड द क्रोनोलॉजी आफ महावीर एण्ड बुद्धा", दिल्ली, १९८०, पृ० ८९।

महावीर निर्वाण सम्वत् के लिए किसी पृथक गणना पद्धति का उल्लेख नहीं है, इसमें वर्ष की लम्बाई ईसाई सम्वत् के वर्ष के बराबर ही है क्योंकि महावीर के निर्वाण से अब तक ईसाई सम्वत् के जितने वर्ष व्यतीत हुए हैं उतने ही वर्ष उस सम्वत् के भी माने जाते हैं जबकि ईसाई सम्वत् की वर्तमान गणना पद्धति ईसाई सम्वत् की लगभग १० शताब्दी बीतने पर निर्धारित हुयी है। इससे यही अनुमान लगाना चाहिए कि महावीर निर्वाण सम्वत् इससे भी बाद में आरम्भ किया गया। महावीर निर्वाण सम्वत् के वर्ष का आरम्भ हिन्दू गणना पद्धति के भी किसी निश्चित समय से आरम्भ होना निश्चित नहीं है। अतः गणना पद्धति के अभाव में इस सम्वत् को सम्वत् न कहकर मात्र वर्ष गणना का एक तरीका कहें तब अधिक उचित है।

जैन साहित्य, धर्म ग्रन्थों तथा अन्य तत्कालीन साहित्य में महावीर निर्वाण सम्वत् का प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है। जैन लोगों द्वारा महावीर निर्वाण सम्वत् का प्रयोग अनेक परम्पराओं में, व्यक्तियों की व घटनाओं की तिथियां बताने के लिए किया गया। साथ ही कुछ जैन ग्रन्थकारों ने अपनी कृतियों के पूर्ण होने की तिथियां बताने तथा कुछ शिलालेखों के लिए भी किया। शिलालेखों के लिए इस सम्वत् का प्रयोग सीमित ही है। इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिलते कि यह सम्वत् कभी शासकीय भी रहा अथवा राजनैतिक उद्देश्यों के लिए इसका प्रयोग हुआ। जैन साहित्य में उल्लिखित घटनायें जो इसी सम्वत् में अंकित है, अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने में मदद करती हैं अर्थात् इस सम्वत् का ऐतिहासिक महत्व है। स्वयं महावीर का परिनिर्वाण एक ऐतिहासिक घटना है जिससे तत्कालीन अनेक राजवंशों का इतिहास जुड़ा है। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए महावीर निर्वाण सम्वत् का प्रयोग आज भी जैन सम्प्रदाय द्वारा किया जा रहा है।

ईसाई सम्वत्

ईस्वी सम्वत् का नाम ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह के नाम पर पड़ा है। जीसस् क्राइस्ट का जिस वर्ष जन्म हुआ, तभी से सम्वत् का आरम्भ हुआ माना जाता है और इसी कारण इस सम्वत् को ईस्वी सन् कहा जाता है। आरम्भ में ईसाई सम्वत् का प्रचलन रोम में हुआ। शनैः-शनैः इसके पंचांग में परिवर्तन होते रहे तथा पहले यूरोप में इस सम्वत् का प्रचार हुआ, फिर विश्व में जहां-जहां भी इसके अनुयायी गये व विश्व के विभिन्न स्थानों में जहां भी उन्होंने अपने उपनिवेशों की स्थापना की, वहीं ईसाई सम्वत् का प्रसार भी किया और अब लगभग सम्पूर्ण विश्व में राजनैतिक घटनाओं की गणना तथा दैनिक व्यवहार की छोटी-बड़ी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ईसाई सम्वत् का

प्रयोग किया जाता है। यदि कहें कि आज सम्पूर्ण विश्व में ही ईसाई सम्वत् का प्रचलन है तो उचित ही होगा। लगभग अपनी १६ शताब्दियां बीतने पर यह सम्वत् भारत आया और पूरे भारतवर्ष में इसका प्रसार हुआ।

अपने आरम्भ के समय से आज तक ईसाई सम्वत् निरन्तर प्रचलन में है। इसके आरम्भ का समय विवदास्पद है। क्राइस्ट के जन्म के वर्ष को ईसाई सम्वत् का आरम्भिक वर्ष माना जाता है परन्तु ईसा मसीह का जन्म किस वर्ष में हुआ यह अनिश्चित है। "इस सन् के उत्पादक डायोनीसियस एक्सिगुअस ने ईसा का जन्म रोम नगर की स्थापना में ७९५वें वर्ष में होना मानकर इस सम्वत् के गत वर्ष स्थिर किये, परन्तु अब बहुत से विद्वानों का मानना है कि ईसा का जन्म ईस्वी सन् पूर्व ८ से ४ के बीच हुआ था, न कि ईस्वी सन् १ में।"[१] "ईसाई सम्वत् का सर्वप्रथम प्रचलन डियोनिसियस ने किया जो रोमन पादरी था। जिसने क्राइस्ट का जन्म ४५ जूलियन सम्वत् अथवा ए० यू० सी० ७५३ रोमन कैलैण्डर के अनुसार निश्चित किया। अब ४ ई० पूर्व ईसाई सम्वत् के आरम्भ की सत्य तिथि मानी गयी है।"[२] कुछ ही वर्षों पहले लन्दन में दो विशेषज्ञों ने एक शोध किया तथा क्राइस्ट की जन्म की तिथि निश्चित करने का प्रयास किया। "लन्दन २२ दिसम्बर ब्रिटेन के दो विशेषज्ञों ने कहा है कि ईसा मसीह शुक्रवार ३ अप्रैल सन् ३३ ई० में सूली पर चढ़ाये गये थे। उन्होंने बताया कि कम्प्यूटर आदि की सहायता से हमने यह हिसाब लगाया है। अब इस बारे में सारे विवाद समाप्त हो जाने चाहिए।"[3] श्री ओझा इसका आरम्भ इस सन् की पांचवी शताब्दी में मानते हैं। "ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में इटली में, आठवीं में इंग्लैण्ड में, आंठवीं तथा नवीं शताब्दी में फ्रांस, बेलजियम, जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड में और ईस्वी सन् १००० के आसपास तक यूरोप के समस्त ईसाई देशों में इसका प्रचार हो गया, जहां की काल गणना पहले भिन्न-भिन्न प्रकार से थी।"[४]

---

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९४।

२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ८५।

३. "नवभारत टाइम्स", नई दिल्ली, २३ दिसम्बर, १९८३, पृ० ७।

४. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९४।

ईसाई सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष १९८९ है। आरम्भ कभी की हुआ हो, लेकिन वर्तमान समय में इस सम्वत् के १९८८ वर्ष व्यतीत व १९८९वां वर्ष चालू है तथा इसके मानने वाले सभी लोग इस बात से सहमत हैं कि सम्वत् की १९ शताब्दियां बीतकर यह २०वीं शताब्दी चल रही है। ईसाई सम्वत् का यह वर्तमान प्रचलित वर्ष हिन्दू सम्वत् शक के वर्ष १९११ व विक्रम के वर्ष २०४६ के समान है।

अपनी पांच शताब्दियां बीत जाने के उपरान्त यह सन् आरम्भ हुआ, ईसाई सम्वत् के विषय में ऐसा माना जाता है। "ईस्वी सम्वत् ५२७ के आसपास रोमनगर के रहने वाले डायोनिसिअस एक्सिगुअस् नामक विद्वान् पादरी ने मजहबी सन् चलाने के विचार से हिसाब लगाकर १९४, ओलिंपिअड् के चौथे वर्ष अर्थात् रोम नगर की स्थापना से ७९५ वर्ष में ईसा मसीह का जन्म होना स्थिर किया और वहां से लगाकर अपने समय तक के वर्षों की संख्या नियत कर ईसाईयों में इस सन् का प्रचार करने का उद्योग किया।"[1] यद्यपि डायोनिसिअस द्वारा ईसाई सम्वत् के लिए जो पंचांग दिया गया था, उसमें बाद में बहुत परिवर्तन किया गया परन्तु ईसाई सम्वत् के आरम्भकर्ता का श्रेय डायोनिसिअस को ही है और तभी से यह सम्वत् प्रचलन में है, ऐसा माना जाता है।

प्रारम्भ में रोम लोगों का वर्ष ३०४ दिन का था जिसमें मार्च से दिसम्बर तक के १० महीने थे, जुलाई के स्थानापन्न मास का नाम क्रिन्क्लिस् और ऑगस्ट के स्थानापन्न मास का नाम सेक्स्टिलिस् था। नुमा पापिलिअस् राजा ने (ई० पूर्व ७१५-६७२) वर्ष के प्रारम्भ में जनवरी और अन्त में फरवरी मास बढ़ाकर १२ चन्द्र मास अर्थात् ३५५ दिन का वर्ष बनाया। ईस्वी सन् पूर्व ४५२ से चान्द्र वर्ष के स्थान पर सौर वर्ष माना जाने लगा जो ३५५ दिन का ही होता था, परन्तु प्रति दूसरे वर्ष क्रमशः २२ और २३ दिन बढ़ाते थे। जिससे चार वर्ष के १४६५ दिन और एक वर्ष के ३६६, १/३ दिन होने लगे। यह वर्ष वास्तविक सौर वर्ष से लगभग १ दिन बड़ा था। इस वर्ष गणना से २६ वर्ष में करीब २६ दिन का अन्तर पड़ गया अतः ग्रीकों के वर्षमान का अनुकरण किया गया जिसमें समय-समय पर अधिक मास मानना पड़ता था। इससे भी अन्तर बढ़ता रहा और जूलियस सीजर के समय वह अन्तर ९० दिन हो गया जिससे उसने ईस्वी सन् पूर्व ४६ को ४५५ दिन का वर्ष मानकर वह अन्तर मिटा

---

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९४।

दिया। इसके बाद भी ईसाई सम्वत् के पंचांग में अनेक परिवर्तन किये गये। जूलियस सीजर ने अधिक मास का झगड़ा मिटाकर ३६५, १/४ दिन का वर्ष नियत कर दिया तथा जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर और नवम्बर महीने तो ३१-३१ दिन के, बाकी के (फरवरी को छोड़कर) ३०-३० दिन के तथा फरवरी २९ दिन का, परन्तु प्रति चौथे वर्ष ३० दिन का स्थिर किया। जुलियस् सीजर के पश्चात् ऑगस्टस् ने, जो रोम का पहला बादशाह हुआ, सेक्सटाइलिस मास का नाम अपने नाम से ऑगस्ट रखा और उसको ३१ दिन का, फरवरी को २८ दिन का, सितम्बर और नवम्बर को ३०-३० दिन का और दिसम्बर को ३१ दिन का बनाया। लेकिन जुलिअस् सीजर का स्थिर किया हुआ ३६५, १/४ दिन का सौर वर्ष वास्तविक सौर वर्ष से ११ मिनट और १४ सैकेंड बड़ा था, जिससे करीब १२८ वर्ष में एक दिन का अन्तर पड़ने लगा। इस अन्तर के बढ़ते-बढ़ते ईस्वी सन् ३२५ में मेष का सूर्य, जो जुलियस सीजर के समय २५ मार्च को आया था, २१ मार्च को आ गया और ईस्वी सन् १५८२ में ११ मार्च को आ गया। इस भूल का सुधार पोप ग्रेगरी १३वें ने किया। उसने आज्ञा दी कि : "इस वर्ष १५८२ के अक्टूबर मास की चौथी तारीख १५ अक्टूबर मानी जाये, इससे लौकिक सौर वर्ष वास्तविक सौर वर्ष से मिल गया। फिर आगे के लिए ४०० वर्ष में तीन दिन का अन्तर पड़ता देखकर उसको मिटाने के लिए पूरी शताब्दी के वर्षों (१६००, १७०० आदि) में से जिसमें ४०० का भाग पूरा लग जावे, उन्हीं में फरवरी के २९ दिन मानने की व्यवस्था की।"[1] पोप द्वारा किया गया यह सुधार रोमन कैथोलिक अनुयायियों ने तो स्वीकार कर लिया, लेकिन प्रोटेस्टेंट वालों ने आरम्भ में इसका विरोध किया अर्थात् पोप द्वारा निर्दिष्ट ५ अक्टूबर के स्थान पर १५ अक्टूबर को इटली, स्पेन, पुर्तगाल आदि में तो स्वीकार कर लिया गया लेकिन इंग्लैण्ड में यह सुधार १७५२ में हुआ। इस समय तक एक दिन और बढ़ चुका था अतः "२ सितम्बर के बाद की तारीख ३ को १४ सितम्बर मानना पड़ा।"[2] "जर्मन वालों ने ईस्वी सन् १६९९ के अन्त के १० दिन छोड़कर १७०० के प्रारम्भ से इस गणना का अनुकरण किया।"[3] "रूस, ग्रीस आदि ग्रीक चर्च सम्प्रदाय के अनुयायी देशों में केवल अभी-अभी इस शैली का अनुकरण हुआ है। उनके यहां के दस्तावेज

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९५।

२. वही।

३. वही।

आदि में पहले दोनों तरह अर्थात् जुलिअन एवं ग्रेगरी की शैली से तारीखें लिखते रहे, जैसे कि २० अप्रैल तथा ३ मई आदि।"[1]

ईस्वी सन् की गणना बी० सी० तथा ए० सी० अथवा ए० डी० संकेतों से की जाती है। बी० सी० से तात्पर्य है बिफोर क्राईस्ट अर्थात् यीशू के जन्म के पूर्व की घटनायें। ए० डी० या ए० सी० का अर्थ है, आफ्टर डैथ या आफ्टर क्राईस्ट अर्थात् यीशू से बाद की घटनायें। "ए० डी० व बी० सी० का प्रयोग आठवीं सदी में महान् विद्वान् बीड आफ जरो ने आरम्भ किया जिससे गणना की सुविधा हो गयी तथा प्रथम जनवरी वर्ष का आरम्भ निश्चित कर दिया गया।"[2] ए० डी० का तात्पर्य एन्नोडोमिनी भी लगाया जाता है। "ए० डी० लैटिन भाषा के एन्नोडोमिनी का संक्षिप्तीकरण है। जिसका अर्थ अंग्रेजी में प्रभु के वर्ष में है।"[3] यीशू के जीवन काल से जब से कि ईसाई सम्वत् की गणना आरम्भ होती है, के समय से ही सम्वत् आरम्भ नहीं हुआ वरन् कई शताब्दी बाद सम्वत् चलाया गया तथा पहले की घटनाओं की भी गणना कर ईस्वी सम्वत् में बताया गया। "इसकी पुष्टि अनेक साक्ष्यों से होती है। यीशू के पैदा होने के समय रोम सत्ता में थे तथा अक्सर अपनी सारी घटनाओं को रोम की स्थापना से तिथ्यांकित करते थे। छठी शताब्दी में पोप ने एक नया कैलैण्डर यीशू के जन्म को आधार मानकर तैयार कराया, अतः सारी तिथियां यीशू के जन्म से तिथ्यांकित की जानी थीं, इस कार्य के लिए उसने डायोनोसियस नाम के साधु को चुना। कलैण्डर के बन जाने पर उसे सारे ईसाई राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया।"[4]

प्रथम जनवरी से वर्ष आरम्भ की व्यवस्था भी ईसाई सम्वत् में काफी बाद में ग्रहण की गयी। आरम्भ से ही ऐसा नहीं था। "ईस्वी सम्वत् के उत्पादक डायोनिसिअस् ने इसका प्रारम्भ तारीख २५ मार्च से माना था और वैसा ही

---

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९५।

२. "इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका", वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ६०३।

३. "ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नरस डिक्सनरी ऑफ कन्टेम्परेरी इंग्लिश", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, पृ० १००७।

४. "इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका", वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ६०३।

ईस्वी सम्वत् की १६वीं शताब्दी के पीछे तक यूरोप के अधिकतर राज्यों में माना जाता था। फ्रांस में ई० सम्वत् १६६३ से वर्ष का प्रारम्भ तारीख १ जनवरी से माना जाने लगा। इंग्लैण्ड में ईस्वी सम्वत् की सातवीं शताब्दी से क्रिस्मस् के दिन (तारीख २५ दिसम्बर) से माना जाता था। १२वीं शताब्दी से २५ मार्च से माना जाने लगा और ईस्वी सम्वत् १७५२ से, जबकि पोप ग्रेगरी के स्थिर किये हुए पंचांग का अनुकरण किया गया, तारीख १ जनवरी से सामान्य व्यवहार में वर्ष का प्रारम्भ माना गया।"[1]

ईसाई सम्वत् में लौंद का वर्ष प्रत्येक चौथे वर्ष आता है अर्थात् कुल व्यतीत वर्षों की संख्या को ४ से भाग देने पर, यदि पूर्ण बंट जाये तब लौंद का वर्ष होगा, लेकिन शताब्दियों को पूर्ण करने वाले वर्षों को ४०० से भाग देकर पूर्ण बट जाने पर ही लौंद का वर्ष होगा। इस प्रकार वर्ष १६००, २००० आदि तो लौंद के वर्ष होंगे। परन्तु १७००, १८००, १९०० आदि ४ से पूर्ण बटने पर भी साधारण वर्ष ही होंगे। कनिंघम ने ईसाई सम्वत् के लौंद के वर्षों की सारणी अपनी पुस्तक "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज" में दी है।

ईसाई सम्वत् के पंचांग का आरम्भ जिस समय हुआ, उस समय निर्धारित उसके स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं। खगोलशास्त्रीय तथ्यों के आधार पर भूलों को सुधारा जाता रहा है, लेकिन अभी भी यह पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि इसका वर्तमान प्रचलित पंचांग बिल्कुल त्रुटि-रहित है, न केवल भारतीय विद्वान् बल्कि स्वयं इसके अनुयायी व पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इसके आरम्भ की तिथि को निश्चित नहीं कर पाये हैं। ईसाई सम्वत् के सन्दर्भ में सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि इसके अनुयायी स्वयं यीशू के जन्म की तिथि को स्थिर नहीं कर पाये जिस पर कि सम्वत् आधारित है। उदाहरण के लिए : "रोमन रिकार्ड्स के अनुसार यीशू के पैदा होने के समय जोड़ा के राजा हैरोड महान् की मृत्यु वर्ष ७५० अन्नो औरविस में हुयी, डायोनासियस ने यीशू के जन्म की तिथि को ७५४ अन्नो औरविस माना है।"[2] इन विषमताओं को देखते हुए आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत स्थापित किया कि "सर्वमान्य कलैण्डर में दी गयी तिथि के चार या पांच वर्ष पहले अर्थात्

---

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला', अजमेर, १९१८, पृ० १९५।

२. वही, पृ० १९४।

४-५ ई० पूर्व यीशू का जन्म हुआ।"[१] कनिंघम[२] ने भी इसको माना है। अर्थात् विभिन्न साक्ष्यों में पता चलता है कि यीशू के शताब्दियों बाद ईसाई सम्वत् की स्थापना हुयी। यीशू के जन्म के बाद व्यतीत जिन घटनाओं की तिथियां निर्धारित की गयीं, उनमें एक घटना स्वयं यीशू के जन्म की थी।

भारतीय इतिहास में शताब्दियों पहले से इस सम्वत् का प्रयोग हो रहा है। ब्रिटिश शासन के आरम्भ के साथ ही ईसाई सम्वत् को भारतीय प्रशासनिक व लेखन सम्बन्धी कार्यों के लिए ग्रहण कर लिया गया और शनैः-शनैः अन्तर्राष्ट्रीय सम्वत् के रूप में अब इसको मान्यता दे दी गयी है। ईसाई सम्वत् की इस अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता का कारण सम्भवतः इसके अनुयायियों का विशाल भू-भाग पर शासन करना तथा अपनी संस्कृति का प्रचार करना था। भारत में भी सदियों के निरन्तर प्रयोग के बाद अब यह सर्वाधिक लोक प्रचलित सम्वत् हो रहा है। अब स्वतन्त्र भारत सरकार द्वारा शक सम्वत् को राष्ट्रीय पंचांग के रूप में ग्रहण कर लिये जाने पर भी ईसाई सम्वत् पहले के समान ही प्रशासनिक व दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त हो रहा है।

ईसाई सम्वत् का भारतीय इतिहास लेखन में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। प्राचीन इतिहास को तिथिक्रम देने और विलुप्त अध्यायों के पुनः लेखन के कार्य में ब्रिटिश तथा अन्य पाश्चात्य इतिहासकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और इन इतिहासकारों द्वारा ईसाई सम्वत् का ही प्रयोग किया गया, अत आज भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध रूप में देखने के लिए बी०सी० व ए०डी० दोनों को ही आधार समझा जाता है। ईसाई सम्वत् का इसी प्रकार प्रयोग विश्व के अनेक राष्ट्रों के इतिहास में हुआ है।

ईसाई सम्वत् का वर्तमान स्वरूप १७वीं शताब्दी के बाद ही निर्धारित हुआ है। अतः इससे पूर्व अभिलेख इतिहास, पंचांग आदि के लिए इसका प्रयोग किसी भी रूप में हुआ हो परन्तु वर्तमान समय में पंचांग निर्माण के लिए ईसाई सम्वत् का प्रयोग किया जाता है। ईसाई सम्वत् के कलैण्डर विश्व भर में छपते हैं और हिन्दू शक, विक्रम के पंचांग में भी ईसाई सम्वत् की तिथियां, वर्ष व वार लिखे होते हैं। हिन्दू पंचांगों में इसको इस रूप में कब ग्रहण किया गया, यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु आज भविष्यवाणियां करने, मुहूर्त सुझाने, ग्रहों

१. "नवभारत टाइम्स", नई दिल्ली, २३ दिसम्बर, १९८३, पृ० ७।

२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ८५।

की चाल, राशियों के फल आदि को बताने के लिए ईसाई सम्वत् का प्रयोग होता है। न केवल हिन्दू पंचांग में वरन् दूसरे सम्प्रदायों में भी अपने सम्वत् के पंचांग को लिखते समय ईसाई सम्वत् की तिथियां लिखी जाती हैं। बहाई सम्प्रदाय द्वारा दिये गये बहाई कलैण्डर का स्वरूप तो पूर्ण रूप से ईसाई सम्वत् पर ही निर्भर है, अपने तिथि, माह व वार को गौण तथा ईसाई तिथि व माह को मुख्य रूप में लिखा गया है जो एक नजर देखने पर ईसाई पंचांग ही जान पड़ता है, बहाई नहीं।

खगोल शास्त्रियों व ज्योतिषियों द्वारा भी ईसाई सम्वत् का प्रयोग राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है। राजनैतिक कार्यों के लिए भी ईसाई सम्वत् का प्रयोग किया जाता है। मात्र धार्मिक क्षेत्र ही ऐसा है जिसमें अभी भारत के विभिन्न सम्प्रदाय अपने ही सम्वत् का प्रयोग करते हैं, उन्हीं के आधार पर मुहूर्त निकालने, शुभ लग्न सुझाने का कार्य होता है। यद्यपि उनकी तिथियों को भी साथ-साथ ही ईसाई सम्वत् की तिथि में परिवर्तित कर भी लिखा जाता है परन्तु उसका आधार उनका अपना प्राचीन समय से चला आ रहा सम्वत् ही रहता है।

हिज्री सम्वत्

इस्लाम धर्म के धार्मिक नेता (पैगम्बर) मोहम्मद के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना से इस सम्वत् का आरम्भ हुआ। जब मोहम्मद ने मक्का से मदीना के लिए पलायन किया उसी सुबह से हिज्री सम्वत् का आरम्भ माना जाता है। "हिज्री" शब्द का अर्थ पलायन है और पलायन की घटना से ही सम्वत् आरम्भ होता है अतः सम्वत् का नाम हिज्री सम्वत् ही रखा गया है। इसके आरम्भ की तिथि निश्चित है। १६ जौलाई, ६२२ ई० से हिज्री सम्वत् का आरम्भ होता है।

आधुनिक समय में वह पूर्ण रूप से चन्द्रमास पर आधारित है। इसके एक वर्ष में १२ चन्द्रमास होते हैं जो क्रमशः ३० व २६ दिन के होते हैं। अतः साधारण वर्ष ३५४ दिन का है। इसके प्रत्येक ३० वर्षीय चक्र में २, ५, ७, १०, १३, १६, १८, २१, २४, २६ तथा २६वां वर्ष लौंद का वर्ष होता है जिसमें अन्तिम महीना २६ के स्थान पर ३० दिन का होता है। आरम्भ में इस्लाम कलैण्डर पूर्ण चन्द्रीय नहीं था, बल्कि चन्द्र सौर व सौर था।[1] बाद में

---

१. गुलाम मोहम्मद रफीक ने अपनी पुस्तक, "इस्लाम क्रूसेड फॉर कलैण्डर", (पट्टन, १९८१) सौर व चन्द्र सौर कलैण्डरों के लिए कुरान की आयत ६ : ३६, ३७; १० : ५ तथा १७ : १२ का हवाला देते हुए कहा है कि उन्होंने सौर इस्लामिक कलैण्डरों को खोज निकाला है। (पृ० ११५-११७)।

चन्द्रीय पद्धति ग्रहण की गयी। इस प्रकार के परिवर्तन के कुछ कारण डा० मोहम्मद हमीद उल्लाह[1] ने बताये हैं: (१) रमजान का समय व दुलहिज्जा की तीर्थ यात्रा का समय अलग-अलग ऋतुओं में आता रहे, एक ही मौसम में बार-बार न आये। जिससे लोगों को न बहुत अधिक कष्ट हो और न ही लोग बहुत अधिक आराम-तलब हो पायें। (२) इस्लाम पूरे संसार के लिए बनाया गया था, इसलिए विभिन्न जलवायुओं को भी ध्यान में रखा गया। (३) "जकात" जोकि धार्मिक व बचत सम्बन्धी कर था वह सौर पंचांग का प्रयोग कर ३६ वर्ष में ३६ बार ही लिया जाता था। इसके स्थान पर चन्द्र पंचांग का प्रयोग कर ३६ वर्ष में ३७ बार लिया जाने लगा। (चन्द्रीय वर्ष, सौर वर्ष से १० दिन छोटा होने के कारण ३६ सौर वर्ष ३७ चन्द्र वर्षों के बराबर होते हैं।)

कुल मिलाकर हमीद उल्लाह के दो ही कारण इस्लाम द्वारा चन्द्र पद्धति को अपनाने के लिए दे पाये हैं: लोगों की सुविधा तथा धर्म नेताओं की चालाकी। हजरत मोहम्मद ने काफी सोच-विचार कर अपनी जिन्दगी की आखिरी तीर्थ यात्रा के समय को (जोकि उन्होंने अपनी मृत्यु के चार महीने पहले की) तय किया था, ऐसा डा० हमीद का मत है। मोहम्मद ने भी यह परिवर्तन किन्हीं वैज्ञानिक कारणों से किया होगा, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। वैसे भी केवल लोगों की सुविधा को ध्यान में रखकर किया गया परिवर्तन स्वीकार्य तब तक नहीं होना चाहिए, जब तक कि उसका वैज्ञानिक आधार न हो। वैसे भी गुलाम मोहम्मद इस बात को स्वीकार ही नहीं करते कि हजरत मोहम्मद ने यह परिवर्तन किया था। उनके विचार से तो हजरत मोहम्मद ने ६ ए० एच० में कुरान में दिये गये सौर कलैण्डर को ही प्रख्यापित किया था।[2]

भारत में इस्लाम के अनुयायियों के आगमन के बाद इसका प्रचलन हुआ, अर्थात् ईसा की ८वीं, ६वीं शताब्दी के बाद। यद्यपि आर० सी० मजूमदार[3]

---

१. मोहम्मद हमीद उल्लाह, "इन्ट्रोडक्शन टू इस्लाम", बेरूत, १६७७, पृ० २३४।

२. गुलाम मोहम्मद रफीक, "इस्लाम क्रूसेड फॉर कलैण्डर", पट्टन, १६८१, पृ० ११७।

३. आर० सी० मजूमदार, 'हर्ष एरा', "आई० एच० क्यू०", १६५१, वोल्यूम २७, पृ० १८७।

ने कुछ अभिलेखों को जो इसकी आरम्भिक शताब्दी के करीब के हैं, हिज्री की तिथि में ही अंकित माना है। लेकिन इस मत की आलोचना डा० डी० सी० सरकार ने की है तथा इन लेखों को हिज्री सम्वत् की तिथि में अंकित न मानकर हर्ष सम्वत् की तिथि में अंकित माना है।[1]

मोहर्रम मास से वर्ष का आरम्भ होता है। अरब, ईरान, ईराक आदि में यह राजकीय सम्वत् हैं। खाड़ी के देशों सीरिया, जोर्डन, मोरक्को आदि में ईस्वी सम्वत् के साथ-साथ मुस्लिम सम्वत् का भी प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि भारत में यह सम्वत् लोकप्रिय नहीं हो पाया, लेकिन कई शताब्दियों तक प्रशासनिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए इसका प्रयोग किया गया। आज भी हिन्दुस्तान भर में जहां भी इस्लाम के अनुयायी बसते हैं, वे अपने धार्मिक कृत्यों के लिए हिज्री सम्वत् का ही प्रयोग करते हैं। भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा तक इस सम्वत् का प्रयोग विशेषरूप से किया जाता है। यूरोपियन नक्षत्रविदों के अनुसार "मुसलमानों का चान्द्र वर्ष जो ३५४, ११/३० या ३५४.३६६ दिन का होता है, वह ३६५.२५ दिन के जूलियन सौर वर्ष का ०.९७०२०२वां होता है।"[2] किन्तु यह सामान्य त्रुटि है जो अधिकांश सम्वतों में रहती है तथा इसके लिए वर्षों बाद लौंद का वर्ष रखा जाता है। हिज्री के ३० वर्षीय चक्र में भी निश्चित वर्ष है, जो लौंद के होते हैं, जिनमें वर्ष ३५४ दिन के स्थान पर ३५५ दिन का होता है। इसमें शुक्रवार का विशेष महत्त्व है। इसी दिन से वर्ष का आरम्भ होता है।[3]

हिज्री सम्वत् का वर्ष पूर्ण रूप से चन्द्रीय पद्धति पर आधारित होने के कारण अन्य सौर अथवा चन्द्र सौर (ईसाई व हिन्दू) सम्वत् के वर्ष से १० दिन छोटा रहता है। अतः निरन्तर वह अन्य पंचांगों से घटता जा रहा है। इस समय को पूरा करने तथा अन्य पंचांगों के साथ इसका सामंजस्य बिठाने के लिए कोई नियम अथवा पद्धति इस्लाम गणना पद्धति में नहीं दी गयी है। लौंद के वर्ष में ३५४ के स्थान पर ३५५ दिन का वर्ष होता है, जो चन्द्रीय चक्र को ही पूरा

१. डी० सी० सरकार, 'हर्षाज एक्शेसन एण्ड एरा', "आई० एच० क्यू०", १९५३, पृ० ७२-७९।

२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ६६।

३. "इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनका", वोल्यूम-तृतीय, टोक्यो, १९६७, पृ० ६००।

करता है, सौर को नहीं। इस प्रकार ६२२ ई० में आरम्भ हुए हिज्री सम्वत् के अब तक (१९८८ ई० तक) १४०७ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा १४०८वां वर्ष चालू है, जबकि सौर ईसाई सम्वत् के १९८८—६२२=१३६६ वर्ष व्यतीत हुये हैं, अर्थात् हिज्री सम्वत् के अब तक व्यतीत समय में ईसाई सम्वत् से ४१ वर्ष अधिक व्यतीत हो चुके हैं। यह अन्तर आगे भी इसी प्रकार बढ़ता रहेगा। जैसा कि डा० मोहम्मद हमीद उल्लाह[1] द्वारा दी गयी तालिका से स्पष्ट है :

हिज्री वर्ष	प्रथम मोहर्रम ई० सन् में
१४०६	१६ सितम्बर, १९८५
१४०७	६ सितम्बर, १९८६
१४०८	२६ अगस्त, १९८७
१४०९	१४ अगस्त, १९८८
१४१०	४ अगस्त, १९८९
१४११	२४ जौलाई, १९९०
१४१२	१३ जौलाई, १९९१
१४१३	२ जौलाई, १९९२
१४१४	२१ जून, १९९३
१४१५	१० जून, १९९४
१४१६	३१ मई, १९९५
१४१७	१९ मई १९९६
१४१८	९ मई, १९९७
१४१९	२८ अप्रैल, १९९८
१४२०	१७ अप्रैल, १९९९

सौर वर्ष की लम्बाई को पूरा न कर पाने की समस्या प्रारम्भिक रोमन पंचांग में भी थी। "प्रारम्भ में रोमन लोगों का वर्ष ३०४ दिन का था जिसमें मार्च से दिसम्बर तक के १० महीने थे।···फिर नुमा पॉपिलिअस् (ई० सम्वत् पूर्व ७१५-६७२) राजा ने वर्ष के प्रारम्भ में जनवरी और अंत में फरवरी मास बढ़ाकर १२ चान्द्र मास अर्थात् ३५५ दिन का वर्ष बनाया। ईस्वी सम्वत् पूर्व ४५२ से चान्द्र मास के स्थान पर सौर वर्ष माना जाने लगा जो ३५५ दिन का ही होता था परन्तु प्रति दूसरे वर्ष (एकांतर से) क्रमशः २२ और २३ दिन बढ़ाते थे।···उनका यह वर्ष वास्तविक सौर वर्ष से करीब एक दिन बड़ा था।

१. हमीद उल्लाह, "इन्ट्रोडक्शन टू इस्लाम", बेरूत, १९७७, पृ० २४८।

इस वर्ष मान से २६ वर्ष में करीब २६ दिन का अन्तर पड़ गया।…जूलियस सीजर के समय वह अन्तर ९० दिन का हो गया, जिससे उसने ईस्वी सन् पूर्व ४६ को ४५५ दिन का वर्ष मानकर वह अन्तर मिटा दिया।"[1] इसी प्रकार का अन्तराल इस्लाम कलैण्डर में भी आता जा रहा है और कोई आश्चर्य नहीं जब इस्लाम कलैण्डर का वर्ष अपनी कम लम्बाई के कारण दूसरे सम्वतों से पृथक पड़ जाये और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय उपयोगिता खत्म होने लगे, क्योंकि जब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सौर कलैण्डर को माना जायेगा व इस्लाम कलैण्डर मात्र चन्द्रीय होगा तो जो समय दूसरे कलैण्डरों द्वारा १०० वर्ष की अवधि गिनी जायेगी वह इस्लाम कलैण्डर द्वारा १०३ वर्ष गिना जायेगा। यदि किसी व्यक्ति की आयु १०० वर्ष है तब इस्लामिक कलैण्डर उसकी आयु १०३ वर्ष बतायेगा। यह समस्या जन्म-मृत्यु अथवा अन्य किसी भी घटना के तिथि अंकन में भी आ सकती है। जब तक दूसरे कलैण्डर किसी वर्तमान वर्ष में अमुक घटना की गणना करेंगे तब तक इस्लाम कलैण्डर का वर्ष बदल जायेगा और उसके अनुसार वह घटना अगले वर्ष में गिनी जायेगी जबकि अधिकांश सम्वतों का आधार सौर वर्ष होगा तब चन्द्रीय वर्ष कुछ अटपटा व हास्यास्पद सा महसूस होगा।

भारत में अनेक शासकों को जो राजकीय कार्यों के लिए इस्लामिक कलैण्डर का प्रयोग करते थे, वित्तीय कार्यों को पूरा करने के लिए फसली पंचांगों को ग्रहण करना पड़ा। चन्द्रीय वर्ष होने के कारण सौर वर्ष से वह छोटा रहता था, जिससे किसानों को अधिक बार लगान चुकाना पड़ता था, साथ ही प्रति वर्ष एक माह उसी ऋतु में नहीं पड़ता था, जिससे लगान वसूली के लिए इस्लामिक कलैण्डर का कोई माह तय किया जा सके। अतः शाहजहां अकबर व अन्य दूसरे प्रान्तीय राजाओं द्वारा हिज्रा वर्ष के स्थान पर फसली पंचांगों को ग्रहण करना पड़ा।

बहाई सम्वत्

बहाई कलैण्डर बाब द्वारा दिया गया तथा बहा उल्लाह द्वारा सत्यापित किया गया।[2] बहा उल्लाह के नाम पर ही इस सम्वत् को बहाई सम्वत् कहा जाता है। बहाई सम्वत् का प्रचलन बहाई सम्प्रदाय में है। यह सम्प्रदाय अपने धार्मिक उत्सवों के लिए इसका प्रयोग करता है। "बहाई सम्वत् का आरम्भ

---

१. पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९५।

२. जोहन फरेबी, "ऑल थिंग्स मेड न्यू", नई दिल्ली, ति० अनु०, पृ० २८०।

१८४४ ई० में बाब की घोषणा से हुआ।" अतः इसकी एक शताब्दी २० मार्च, १९४४ ई० को पूरी हुयी। मार्च के महा विषुव से बहाई सम्वत् का नया वर्ष आरम्भ होता है, अत: १९८९ ई० के मार्च महीने में बहाई सम्वत् के १४५ वर्ष पूरे हो चुके हैं और अब १९८९-९० ई० का यह बहाई सम्वत् का १४६वां वर्तमान प्रचलित वर्ष है।

बहाई सम्वत् में सौर वर्ष का प्रयोग किया गया है। "पूरे वर्ष को १९ महीनों में बांटा गया है तथा प्रत्येक महीना १९ दिन का होता है तथा प्रत्येक वर्ष को पूरा करने के लिए ४ दिन अतिरिक्त जोड़ दिये जाते हैं। प्रत्येक चार वर्ष बाद लौंद का वर्ष होता है, जिसमें एक अतिरिक्त दिन जोड़ दिया जाता है, प्रत्येक दिन का आरम्भ सूर्यास्त से माना जाता है।"[1]

बहाई कलैण्डर में अतिरिक्त दिनों को जोड़ने की एक विशिष्ट व्यवस्था है, इसमें अन्य दूसरे कलैण्डरों की भांति अतिरिक्त दिनों को अन्तिम महीने में न जोड़कर १८वें माह के अन्त में जोड़ा जाता है। "ये अतिरिक्त दिन १८वें व १९वें महीने के बीच जोड़े जाते हैं, जिससे कि इसका (बहाई कलैण्डर का) सौर वर्ष के साथ सामंजस्य किया जा सके। बाब ने महीनों के नाम भगवान के गुणों के आधार पर रखे। १९वां महीना २२ मार्च से आरम्भ होकर २१ मार्च (महा विषुव) को पूरा होता है।"[2]

बहाई कलैण्डर में दिन की गणना सूर्यास्त से सूर्यास्त तक की जाती है। यह एक विशिष्ट प्रथा है, भारतीय कलैण्डरों में सूर्यास्त से दिन को आरम्भ करने की प्रथा नहीं है। इस प्रकार की दिन की गणना प्राचीन समय में प्रचलित कलैण्डर व्यवस्था के अन्तर्गत थी और इसका प्रचलन इटली में था। सम्भवतः बहाई कलैण्डर में यह प्रवृत्ति वहीं से ग्रहण की गयी हो।

बहाई कलैण्डर के १९ महीनों के जो नाम होते हैं, वही नाम महीने के १९ दिनों के होते हैं। "प्रत्येक महीने के प्रथम दिन अधिकतर 19 दिन की दावत होती है, लेकिन अपवाद स्वरूप यह किसी और दिन भी होती है।"[3] १९ दिन की दावत का तात्पर्य, १९ दिन में पूरी होने वाली दावत है, अर्थात् प्रत्येक महीने के प्रथम दिन यह होती है और पूरे वर्ष के १९ महीनों में १९ दिन

---

१. जोहन फरेबी, "ऑल थिंग्स मेड न्यू" नई दिल्ली, ति० अनु०, पृ० २८०।
२. जे०ई० इस्लेमॉ, "बहा उल्लाह एण्ड द न्यू एरा", लन्दन, १९७४, पृ० १६६।
३. जोहन फरेबी, "ऑल थिंग्स मेड न्यू", नई दिल्ली, ति० अनु०, पृ० २८१।

होती है, कभी किसी कारणवश महीने के प्रथम दिन न होकर अन्य किसी दिन भी हो सकती है।

बहाई कलैण्डर के महीनों के नाम तथा इनकी आरम्भ की प्रथम तिथि ईसाई सम्वत् में इस प्रकार रहती है :

बहाई महीने	अरबी नाम	ईसाई सम्वत् की तिथियां
१	बहा	२१ मार्च
२	जलाल	६ अप्रैल
३	जमाल	२८ अप्रैल
४	अजमत	१७ मई
५	नूर	५ जून
६	रहमत	२४ जून
७	कलीमात	१३ जौलाई
८	कमाल	१ अगस्त
९	असमा	२० अगस्त
१०	इज्ज़ात	८ सितम्बर
११	मशीय्यत	२७ सितम्बर
१२	इल्म	१६ अक्टूबर
१३	कुदरत	४ नवम्बर
१४	कव्ल	२३ नवम्बर
१५	मशाइल	१२ दिसम्बर
१६	शरफ	३१ दिसम्बर
१७	सुल्तान	१९ जनवरी
१८	मुल्क़	७ फरवरी
२६ फरवरी से १ मार्च तक के अतिरिक्त दिनों को जोड़कर		
१९	अला	२ मार्च

१९५५ ई० में भारत सरकार की कलैण्डर सुधार सीमित द्वारा दी गई रिपोर्ट में बहाई कलैण्डर का उल्लेख नहीं है (जबकि इस सम्प्रदाय के साहित्य द्वारा विदित है कि बहाई सम्वत् अपने १४५ वर्ष पूरे कर चुका है), जबकि इस समिति द्वारा भारत के उत्तरी दक्षिणी, पूर्वी पश्चिमी, प्राचीन व वर्तमान समय में प्रचलित अनेक कलैण्डरों का उल्लेख है। इस स्थिति में यही माना जा सकता है कि बहाई सम्प्रदाय की उत्पत्ति विदेश में हुयी और भारत में इसका

प्रचार अभी बहुत अल्प है, अथवा अन्य दूसरे सम्प्रदायों में अपने-अपने कलैण्डरों की रिपोर्ट कलैण्डर सुधार समिति को भेजी और इस सम्प्रदाय द्वारा इस प्रकार का कोई प्रयास नहीं हुआ। इसी कारण इस सम्वत् व इसके कलैण्डर का उल्लेख कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट में नहीं हुआ है।

बहाई सम्वत् का प्रति वर्ष कलैण्डर छपता है, जिसमें ईसाई कलैण्डर पर ही बहाई धार्मिक उत्सवों की तिथियां व बहाई महीनों के आरम्भ की तिथियों को रेखांकित कर दिया जाता है और इसको बहाई कलैण्डर नाम दिया जाता है। बहाई कलैण्डर के महीनों के नाम इस पर नहीं दिये जाते और न ही जैसा कि बहाई कलैण्डर के लिए बताया गया कि उसके वर्ष के १९ महीने होते हैं, कलैण्डर को पृथक-पृथक १९ महीनों के नाम के अनुसार विभाजित किया जाता है। इस प्रकार यह कलैण्डर भी अपनी मौलिक पहचान नहीं बना पा रहा है, बल्कि ईसाई सम्वत् का प्रतिरूप मात्र ही दृष्टिगोचर होता है। वैसे इस सम्प्रदाय के लोगों का विश्वास है कि एक दिन पूरा विश्व बहाई कलैण्डर को इसकी सरलता के कारण अपनायेगा।[1] किन्तु अपनी गणना पद्धति को पंचांग में न दर्शा पाने के कारण यह लोगों को कहां तक समझ आयेगा और किस प्रकार नये लोगों को आकर्षित कर सकेगा, यह सन्देहास्पद ही है।

महर्षि दयानन्द सम्वत्

आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के नाम पर ही इस सम्वत् का नाम महर्षि दयानन्द सम्वत् है। इसे दयानन्दाब्द व मद्दयानंदाब्द नामों से भी लिखा जाता है। इसका प्रचलन क्षेत्र वही समझना चाहिए जो आर्य समाज सम्प्रदाय का है। जहां भी आर्य समाजी बसते हैं, वे महर्षि दयानन्द सम्वत् का प्रोयग करते हैं।

इस सम्वत् का आरम्भ महर्षि के जन्म के समय से माना जाता है। महर्षि के जन्म के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा है: "जहां तक महर्षि की जन्मतिथि का सम्बन्ध है, यह तो निर्विवाद है कि उनका जन्म सवम्त् १८८१ (सन् १८२४) हुआ था, क्योंकि उन्होंने अपने आत्मचरित्र में स्वयं इसका उल्लेख किया है, पर सम्वत् १८८१ में उनकी जन्मतिथि कौन सी थी, इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। अभी इस विषय में प्रमाणिक रूप से कोई मत निर्धारित नहीं किया जा सका है।"[2] ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि की एक वर्ष आयु होने (प्रथम जन्म दिवस)

---

१. जे०ई० इस्लेमॉ, "बहा उल्लाह एण्ड द न्यू एरा", लन्दन, १९७४, पृ० १६७।
२. सत्यकेतु विद्यालंकार, "आर्य समाज का इतिहास", प्रथम भाग, नई दिल्ली, ति० अनु०, पृ० १९२।

से महर्षि दयानन्द सम्वत् का आरम्भ माना गया है। इस संदर्भ में कपिल भट्ट का मत है : "आर्य समाजियों ने महर्षि दयानन्द की जन्म तिथि १६ फरवरी, १८२५ ई० से मद्दयानंदाब्द सम्वत् की शुरूआत की।"[1] इन कथनों से यही विदित है कि १८२४ ई० में महर्षि का जन्म हुआ तथा उनके प्रथम जन्म दिवस १६ फरवरी, १८२५ से इस सम्वत् का आरम्भ माना गया।

जैसाकि अन्य दूसरे धार्मिक सम्वतों, महावीर निर्वाण, बुद्ध निर्वाण के आरम्भ के लिए पूरा सम्प्रदाय ही उत्तरदायी है, व्यक्ति विशेष नहीं, ठीक इसी प्रकार महर्षि दयानन्द सम्वत् के आरम्भकर्ता के रूप में पूरा आर्य समाज ही उत्तरदायी है, किसी विशिष्ट व्यक्ति का नाम नहीं लिया जा सकता।

महर्षि दयानन्द सम्वत् विक्रम सम्वत् के ही समान है, इसके लिए पृथक रूप से किसी गणना पद्धति का निर्धारण नहीं किया गया है, मात्र व्यतीत वर्षों व वर्तमान चालू वर्ष की ही गणना की जाती है।

इस सम्वत् का वर्तमान चालू वर्ष १६५वां है तथा फरवरी, १९८९ तक इस सम्वत् के १४६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। १९८९—१८२५=१६४ महर्षि सम्वत् के व्यतीत वर्ष।

इस सम्वत् का प्रयोग आर्य समाज के भवनों के निर्माण वर्ष तथा पुस्तकों के प्रकाशन वर्ष को बताने के लिए किया जाता है। भवनों व पुस्तकों पर सृष्टि सम्वत् व विक्रम सम्वत् के महर्षि दयानन्द सम्वत् का उल्लेख इस प्रकार रहता है[2] :

आर्य सम्वत् १९७२९४९०७३
विक्रमाब्द २०३०
दयानन्दाब्द १४९।

---

१. कपिल भट्ट, 'कैसे-कैसे सम्वत् भारत के', "कादम्बिनी", दिल्ली, अप्रैल १९८६, पृ० ८८।

२. महर्षि दयानन्द, "ऋग्वेद", (आर्य भाषा-भाष्य), दिल्ली, १९७३।

तृतीय अध्याय

ऐतिहासिक घटनाओं से आरंभ होने वाले सम्वत्

मौर्य सम्वत्

'मुरियकाल' के नाम से इस सम्वत् का उल्लेख अभिलेखों में हुआ है जिससे विद्वान यही अनुमान लगाते हैं कि मौर्यवंश से सम्बन्धित सम्वत् है। इस सम्वत् विषय में जानकारी का एकमात्र स्रोत उदयगिरी का हाथीगुम्फा में जैन राजा खाखेल का लेख है। यह अभिलेख मुरियकाल १६५ का है। "नंदवंश को नष्टकर राजा चन्द्रगुप्त ने ईस्वी पूर्व ३२१ के आस-पास मौर्य राज्य की स्थापना की थी अतएव अनुमान होता है कि यह सम्वत् उसी घटना से चला हो। यदि यह अनुमान ठीक हो तो इस सम्वत् का आरम्भ ई० सम्वत् पूर्व ३२१ के आस-पास होना चाहिए।"[1] मौर्य सम्वत् के संदर्भ में खाखेल के लेख के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। श्री रैप्सन, भगवान लाल इन्द्र जी, काशी प्रसाद जायसवाल, चन्द्र भान पाण्डेय[2] आदि विद्वानों ने भी मुरिय काल को मौर्य सम्वत् के रूप में स्वीकार किया है।

हाथी गुम्फा अभिलेख मौर्य सम्वत् १६५ का है, जिससे यह स्पष्ट है कि लगभग २ शताब्दियों तक तो यह सम्वत् प्रचलन में था ही और इससे बाद में भी रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मौर्य वंश के किस शासन द्वारा और वंश के किस शासन वर्ष में सम्वत् आरम्भ किया गया, इस संदर्भ में तथ्य उपलब्ध नहीं है। मौर्य वंश के प्रथम शासक चन्द्र गुप्त मौर्य जो वंश संस्थापक भी था और शक्तिशाली भी था ने सम्भवत: अपने वंश की पहचान को बनाने के लिए सम्वत् की स्थापना की हो। परन्तु चन्द्र गुप्त मौर्य के शासन काल की घटनाओं, उसकी नीति व

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द औझा, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १६५।

२. चन्द्र भान पाण्डेय, "आंध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास", दिल्ली, १९६३ पृ० २७।

राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख कोटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलता है। यदि चन्द्र गुप्त किसी नये सम्वत् की स्थापना करता तब कौटिल्य उसका उल्लेख भी अवश्य करता। मौर्य वंश का दूसरा शक्तिशाली शासक अशोक रहा, उसके द्वारा भी सम्वत् की स्थापना की जा सकती है, लेकिन अशोक का दर्शन जो बौद्ध धर्म से प्रभावित था, "वसुधैव कुटुम्बकम्" की नीति को मानता था अतः अशोक से यह आशा करना कि उसने स्वयं अपनी या अपने वंश की विशिष्टता प्रदर्शित करने के लिए किसी नये सम्वत् की स्थापना की होगी, उचित नहीं। चन्द्र गुप्त व अशोक के बीच का एक शासक और रहता है, बिन्दुसार। इसके शासन काल में भी साम्राज्य शक्तिशाली बना रहा था सम्भव है इसके द्वारा ही मौर्य सम्वत् की स्थापना हुयी हो और उसके आरम्भ का समय चन्द्र गुप्त मौर्य के समय से माना गया हो, जैसाकि हर्ष, गुप्त आदि दूसरे सम्वतों के सम्बन्ध में भी रहा है। परन्तु यदि बिन्दुसार द्वारा मौर्य सम्वत् की स्थापना की गयी मान लिया जाये तब यह समस्या सामने आती है कि स्वयं बिन्दुसार उसके उत्तराधिकारी अशोक तथा अन्य बाद के मौर्य शासकों द्वारा मौर्य सम्वत् का अभिलेखों में अंकन न किये जाने का क्या कारण है ? यह स्वाभाविक सी बात है कि यदि किसी वंश के संस्थापकों द्वारा नया सम्वत् चलाया जाये तो उस वंश के शासक उसका प्रयोग अपने अभिलेखों तथा अन्य लेखों में करें, समकालीन साहित्य में भी सम्वत् का उल्लेख हो, परन्तु मौर्य सम्वत् का प्रयोग किसी मौर्यवंशी शासक द्वारा नहीं हुआ है। स्वयं बिन्दुसार द्वारा भी नहीं और उत्तराधिकारी अशोक द्वारा भी सम्वत् का प्रयोग नहीं हुआ है, यद्यपि अशोक ने बड़ी संख्या में अभिलेख उत्कीर्ण कराये। मौर्य सम्वत् के सम्बन्ध में यह इससे भी बड़ी विसंगति है कि कलिंग राज्य को मौर्य शक्ति से मुक्त कराने वाले शासक खारवेल द्वारा सम्वत् का प्रयोग अपने अभिलेख में हुआ है जो उचित नहीं लगता। इसका कारण है कि कोई भी शासक जिस सत्ता से मुक्ति पाता है व स्वतंत्र राज्य की स्थापना करता है वह स्वयं को आधीन रखने वाले के चिन्हों का भी प्रयोग करना पसन्द नहीं करता। फिर विशेषकर हाथीगुम्फा जैसे अभिलेख में जिसमें खारवेल अपनी शक्ति प्रदर्शन व विजय का उल्लेख करता है, खारवेल द्वारा मौर्य सम्वत् का प्रयोग अनुचित ही लगता है।

"हाथीगुम्फा अभिलेख मौर्य सम्वत् १६५ का है।"[1] इस लेख के आधार पर दो तथ्य दीख पड़ते हैं जिसके आधार पर हाथीगुम्फा अभिलेख पर अंकित सम्वत्

---

१. सत्यकेतु विद्यालंकार, "मौर्य साम्राज्य का इतिहास" नई दिल्ली, १९८६, पृ० ६७९।

को मौर्य सम्वत् कहा जा सकता है : प्रथम राजमुरियकाल शब्द का प्रयोग, तथा दूसरा खारवेल का मौर्य सम्वत् १६५ में राज्यकाल। इन समस्त विषमताओं व विसंतगियों का निष्कर्ष यही दिया जा सकता है कि चन्द्र गुप्त मौर्य या बिन्दुसार द्वारा मौर्य सम्वत् की स्थापना की गयी। अपने वंश की किसी विशिष्टता के प्रदर्शन से बचकर अभिलेखों पर विनीत भाव से मात्र शासन वर्ष का अंकन अशोक ने किया। उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसका अनुकरण किया। चूंकि खारवेल के समय मौर्य वंश का अन्त हो चुका था अतः नियमित शासन वर्ष के रूप में उसका प्रयोग नहीं रहा। सम्भवतः मौर्य वंश के पश्चात् के रूप में इसका संदर्भ दिया जाने लगा इससे यह सम्भावना होती है कि मौर्य सम्वत् हाथीगुम्फा अभिलेख के अंकन के समय तक प्रचलन में था अतः कलिंग राज खारवेल ने अपने शासन वर्ष के साथ-साथ मौर्य सम्वत् का अंकन भी अभिलेख में किया हो।

मौर्य सम्वत् का प्रयोग मात्र अभिलेखों तक ही सीमित रहा रहा। अभिलेखों के आधार पर ही सम्वत् के अस्तित्व की सम्भावना की जा सकती है। तत्कालीन साहित्य में इस सम्वत् का उल्लेख नहीं हुआ है।

मौर्य सम्वत् एक ऐसे वंश द्वारा चलाया गया जिसके शासन के आरम्भ की तिथि स्वयं ही विवाद का विषय है। इससे भी अधिक विवाद का विषय यह है कि इस वंश के किस शासक ने सम्वत् का आरम्भ किया ? मौर्य वंश किस जाति अथवा वर्ण से सम्बन्धित था ? विद्वानों का एक वर्ग इस वंश का सम्बन्ध शूद्र अथवा दास वर्ग से जोड़ता है। इन सब विषमताओं का परिणाम सम्भवतः यही रहा होगा कि समाज में इस वंश द्वारा दिये गये सम्वत् को अधिक सम्मान प्राप्त न हुआ हो। साथ ही इस वंश की समाप्ति के साथ ही सम्भवतः यह सम्वत् भी समाप्त हो गया हो। मौर्य सम्वत् की शीघ्र समाप्ति का एक कारण यह भी हो सकता है कि वास्तव में यह सम्वत् व्यापक रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ। यह तो मात्र शासन वर्ष की गणना थी, अतः मौर्य सम्वत् को कोई नया अथवा पृथक सम्वत् नहीं कहा जा सकता अतः इसके प्रयोग का दीर्घकालिक न होना भी स्वाभाविक ही था।

सैल्यूसीडियन सम्वत्

सैल्यूसीडियन नाम से ही ऐसा लगता है कि इस सम्वत् का सम्बन्ध सिकन्दर के उत्तराधिकारी सैल्युकस से है, किन्तु इस सम्बन्ध में विवाद यह है कि इस सम्वत् का आरम्भ स्वयं सैल्यूकस ने किया जिसके कारण यह सैल्यूसीडियन सम्वत् कहलाया अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने इसका आरम्भ किया और इसका

नाम सैल्यूकस के नाम पर सैल्यूसीडियन सम्वत् रखा। सैल्यूसीडियन सम्वत् का प्रचलन क्षेत्र बैक्ट्रिया तथा हिन्दुस्तान के काबुल व पंजाब प्रदेश माने जाते हैं। "सैल्यूकस के राज्य पाने के समय अर्थात् १ अक्टूबर ईस्वी सम्वत् पूर्व ३१२ से उसका सम्वत् चला जो बाकट्रिआ में भी प्रचलित हुआ। हिन्दुस्तान के काबुल तथा पंजाब आदि हिस्सों पर बाकट्रिआ के ग्रीकों का आधिपत्य होने के बाद उक्त सम्वत् का प्रचार भारत के उन हिस्सों में कुछ-कुछ हुआ हो, सम्भव है।"[1]

सैल्यूकस के राज्य पाने के समय से सैल्यूसीडियन सम्वत् का आरम्भ माना जाता है अर्थात् ३१२ ईस्वी पूर्व। इसका वर्तमान प्रचलित वर्ष २३४३ है[2] जो ई० १९८९ के समान है। यह सम्वत् शताब्दियों पहले प्रचलन से निकल गया है और अब इसकी गणना पद्धति व वर्ष की लम्बाई का ठीक पता नहीं है। अतः इसके वर्तमान प्रचलित वर्ष के सम्बन्ध में भारद्वाज पंचाग का साक्ष्य कहां तक प्रमाणिक है, कहा नहीं जा सकता। पंचांग में मात्र वर्तमान प्रचलित वर्ष दिया गया है, इसके स्रोतों का उल्लेख नहीं है। साथ ही इस पंचांग में सम्वत् के लिए सिकन्दरी नाम का प्रयोग हुआ है जबकि त्रिवेदी व कनिंघम सैल्यूसीडियन नाम का उल्लेख करते हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि सैल्यूसीडियन सम्वत् ही है अथवा कोई और।

सैल्यूसीडियन सम्वत् के आरम्भकर्त्ता के रूप में दो नाम लिये जाते हैं: प्रथम गुप्त वंशी नरेश समुद्र गुप्त (त्रिवेद) तथा दूसरा सैल्यूकस (कनिंघम), इस सम्वत् के सम्बन्ध में कनिंघम का मत ही अधिक माननीय है। त्रिवेद के अनुसार सैल्यूकस चन्द्र गुप्त मौर्य का नहीं वरन् समुन्द्र गुप्त को समकालीन था। समुद्र गुप्त ने सैल्यूकस को ३०५ ई० पूर्व में परास्त कर उसकी पुत्री हेलेना से विवाह किया तथा सैल्यूसीडियन सम्वत् का आरम्भ किया।[3] डा० त्रिवेद गुप्त वंश का शासन भी ३२० ई० पूर्व में मानते हैं, इसी आधार पर समुद्र गुप्त को सैल्यूकस का समकालीन माना है व इसी आधार पर समुद्र गुप्त को सैल्यूसीडियन सम्वत् का आरम्भकर्ता बताया है परन्तु डा० त्रिवेद के मत का विद्वान् खण्डन करते हैं तथा सैल्यूसीडियन सम्वत का आरम्भकर्ता सैल्यूकस निकाटार को मानते

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१३, पृ० १६५।

२. "शुद्ध भारद्वाज पंचांग", मेरठ, १९८९-९०, पृ० १।

३. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० २७।

हैं।[1] ई० पूर्व ३२३ में सिकन्दर का देहान्त होने पर उत्तराधिकारी के अभाव से उसके सेनापतियों में राज्य के लिए संघर्ष हुआ। अन्त में तीन राज्य कायम हुये : मसिडोनिया, मिस्र और सीरिया। सीरिया का स्वामी सैल्यूकस बना, इसी को सैल्यूसीडियन सम्वत का आरम्भकर्ता माना जाता है। उलूघबेग[2] ने सिकन्दर की मृत्यु के १२ वर्ष पश्चात् अर्थात् मौहम्मद के हिज्री सम्वत १६ जुलाई, ६२२ ई० के ३४०७०० दिन पूर्व इस सम्वत् का आरम्भ माना है, इस प्रकार उलूघ के अनुसार ३ अक्टूबर, ३१२ ई० पूर्व में सम्वत् का आरम्भ हुआ। तीसरी गणना सिकन्दर की मृत्यु के १२ वर्ष पश्चात् जिसमें मृत्यु की तिथि नहीं दी गयी है (नवोन्सार के ४२५वें वर्ष अर्थात् १२ नवम्बर, ३२४ ई० पूर्व को मानी जाती है) इसके अनुसार इस सम्वत् का आरम्भ ३१२ ई० पूर्व के प्रायः अन्त में आता है।[3] इन विभिन्न विचारों का उल्लेख करते हुए कनिंघम ने लिखा है : "वास्तव में सम्वत् सैल्यूकस द्वारा सेनापति निकानोर की हार से आरम्भ हुआ। इस प्रकार इससे भी इस सम्वत् का आरम्भ ३१२ ई० पूर्व बैठता है। इसके अतिरिक्त अनेक सिक्कों से भी इसका उल्लेख मिलता है।"[4]

उपरोक्त उद्धहरणों से इतना तो निश्चित है कि सैल्यूसीडियन सम्वत् किसी-न-किसी रूप में सैल्यूकस से सम्बन्धित था। डा० त्रिवेद जोकि इस सम्वत् का आरम्भकर्ता समुद्र गुप्त को मानते हैं, ने भी इस बात को स्वीकार किया है। ओझा ने स्वयं सैल्यूकस को ही सम्वत् आरम्भकर्ता माना है। कनिंघम सैल्यूकस द्वारा सेनापति निकानोर की पराजय की घटना से सम्वत् का आरम्भ मानते हैं। तात्पर्य यही है कि सैल्यूकस ने इस सम्वत् का आरम्भ किया। इसमें डा० त्रिवेद द्वारा दिये गये तथ्य, जिसमें वे गुप्त वंश का शासन ३२० ई० पूर्व मानते हैं और समुद्र गुप्त को सैल्यूकस का समकालीन मानते हैं, विवादास्पद हैं। अतः उनके द्वारा दिया गया तथ्य कि सैल्यूसीडियन सम्वत् का आरम्भ समुद्र गुप्त द्वारा किया गया प्रमाणिक साक्ष्यों पर आधारित नहीं है। इसी मत की सम्भावना अधिक है कि अपनी ताजपोशी के समय स्वयं सैल्यूकस द्वारा ही इस सम्वत् की स्थापना की गयी है जैसाकि सम्वत् के नाम

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १६५।
२. एलेग्जैण्डर कनिंघम द्वारा उद्धत, "एक बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ४०।
३. वही।
४. वही।

से भी आभास होता है और जब सैल्यूकस भारत विजय की लालसा से यहां आया तब अन्य सांस्कृतिक तथ्यों के आदान-प्रदान के साथ ही काल गणना के तथ्यों का भी परिचय हिन्दुओं का विदेशियों से और विदेशियों का हिन्दुओं से हुआ हो तथा इसी अवसर पर भारतीयों का परिचय सैल्यूमीडियन सम्वत् से भी हुआ हो। सम्भवतः कुछ समय तक भारत के भी यवन प्रभावित प्रदेशों में इस सम्वत् का प्रचलन रहा हो। उलूगबेग व कनिंघम जैसे विदेशी विद्वानों तथा ओझा व डा० डी० एस० त्रिवेद जैसे भारतीय विद्वानों के लेखन से सैल्यूसीडियन सम्वत् के विषय में जानकारी मिलती है।

शक तथा कुषाण वंशियों के खरोष्ठि लेखों में लिखे यूनानी महीनों के विषय में यह सम्भावना की जाती है कि क्योंकि यह विदेशी शैली में हैं, अतः यह किसी विदेशी सम्वत् से ही सम्बन्धित होंगे। "जो लोग विदेशी मसीडोनियन (यूनानी) महीने लिखते थे, वे सम्वत् भी विदेशी ही लिखते होंगे, चाहे वह सैल्यूकीडी (शताब्दियों के अंक सहित) पार्थियन या कोई अन्य (शक) सम्वत् हो।"[1] यद्यपि अभी यह पूर्ण प्रमाणित नहीं है कि सैल्यूसीडियन सम्वत् का प्रयोग भारत में किस रूप में हुआ लेकिन जैसाकि श्री ओझा के उपरोक्त कथन से विदित है: अभिलेखों के लिए सैल्यूसीडियन सम्वत् का भारत में प्रयोग हुआ, ऐसी सम्भावना है। क्योंकि यह सम्वत् भारतीयों के लिए विदेशी ही था और आक्रमणकारियों द्वारा भारत लाया गया था अतः जनमानस के लिए इसकी गणना पद्धति को समझना और इसे सम्मानपूर्वक ग्रहण करना सम्भव न हो सका। मात्र राजनैतिक सम्बन्धों को बल देने के लिए ही अल्पावधि में ही यह भारत में जाना गया होगा और चन्द्रगुप्त के शासन समाप्ति के साथ ही सैल्यूसीडियन सम्वत् का प्रभाव भी भारत में समाप्त हो गया होगा। भारत में इसके प्रयोग व आरम्भ के सम्बन्ध में निश्चित प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण भारत सरकार की कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट में तो इसे भारतीय संवतों की श्रेणी में भी नहीं रखा गया है।

सैल्युसीडियन सम्वत् की गणना पद्धति मैसीडोनियन तथा अथैनियन पद्धति पर आधारित है। अर्थात् पूर्ण रूप से विदेशी पद्धति पर। इसमें १९ वर्षीय चक्र का प्रयोग हुआ है। "सैल्युसीडियन सम्वत् में अथैनियन तथा मैसीडोनियन पंचांगों के समान ही चन्द्र सौर पद्धति को ग्रहण किया गया है तथा १९ वर्षीय चक्र अर्थात् २३५ चन्द्रमासों को माना गया है।"[2]

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० ६५।

२. एलैग्जैण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ४०।

पार्थिया सम्वत्

इस सम्वत् को पार्थिया के अतिरिक्त पारद, पार्थियन, अथवा एरेसिड आदि नामों से जाना जाता है। इस सम्वत् का प्रचलन पंजाब के पश्चिमोत्तर प्रदेश में रहा। जार्ज स्थिमथ ने बेबीलोन से प्राप्त तीन पार्थियन सारणियों के आधार पर २४८ ई० पूर्व पार्थियन सम्वत् का आरम्भ माना।[1] परन्तु कनिंघम इससे सहमत नहीं हैं: "पार्थियन सम्वत् का आरम्भ अप्रैल २४७ ई० पूर्व में हुआ होगा न कि अक्टूबर २४८ ई० पूर्व में।"[2] कनिंघम ने पार्थियन स्वतन्त्रता की तिथि २४७ ई० पूर्व मानी है और यहीं से पार्थियन सम्वत् का आरम्भ माना है तथा कनिंघम का विश्वास है कि २४६ ई० पूर्व तक प्रथम वर्ष पूर्ण हुआ होगा।[3] भारत में यह मौर्य वंशी सम्राट अशोक के शासन का समय था। पंडित भगवद् दत्त ने पार्थियन सम्वत् का आरम्भ "शक विक्रम सम्वत् से १८९ वर्ष (२४६ वर्ष पूर्व) पहले चला"[4] माना है। इस सम्बन्ध में यही समझना चाहिए कि २४८ ई० पूर्व के करीब ही पार्थिया सम्वत् का आरम्भ हुआ। यदि एक-दो वर्ष का अन्तर चालू या व्यतीत वर्ष लिखे जाने के कारण रह सकता है जैसाकि अन्य बहुत से भारतीय सम्वतों में रहता है। इस सम्वत् के विषय में अधिक विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है अतः इसकी गणना पद्धति, प्रचलन क्षेत्र व प्रचलन समय के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस सम्वत् से सम्बन्धित एक लेख का उल्लेख पंडित भगवद् दत्त ने 'प्रोग्रेस ऑफ इण्डिक स्टैडीज' के आधार पर इस प्रकार किया है: "पहलवी भाषा का एक अति पुराना लेख सन् १९०९ में कुर्दिस्तान से मिला था उस पर हर्वतत् मास का इस शक का ३०० वर्ष अंकित है।"[5] इस अभिलेख के उद्धरण से यही तात्पर्य निकलता है कि सैल्युसीडियन सम्वत् के समान ही पार्थियन सम्वत भी विदेशी था। यदाकदा राजनीतिक प्रभाव से अभिलेकों के लिये भारत में इसका

---

१. कनिंघम द्वारा अपनी पुस्तक, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", में उद्धृत, वाराणसी, १९७६, पृ० ४६।
२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ४६।
३. वही।
४. पंडित भगवद दत्त, "भारतवर्ष का वृहद इतिहास", दिल्ली, १९५०, पृ० १७०।
५. वही, पृ० १७१।

प्रयोग हुआ परन्तु जनमानस में इसका प्रचार नहीं हुआ और इन्हीं कारणों से यह भारतीय इतिहास में कोई स्थान न पा सका तथा शीघ्र लुप्त हो गया। कलैण्डर सुधार समिति ने सैल्युसीडियन सम्वत् की भांति इसे भी भारतीय सम्वतों में नहीं गिना है।

विक्रम सम्वत्

हिन्दुओं के धार्मिक अनुष्ठानों में मुख्य स्थान पाने वाला सम्वत् विक्रम सम्वत् है। इसे कृत सम्वत्, मालव सम्वत्, मालव काल अथवा मात्र सम्वत् के नाम से भी जाना जाता है। सम्वत् के नामों में इस प्रकार का परिवर्तन कब और कैसे हुआ? विक्रम सम्वत् का अभिलेखों में प्रयोग किस प्रकार किया गया? सम्वत् की गणना पद्धति उसकी मुख्य इकाईयां, विस्तार क्षेत्र तथा लोकप्रियता आदि तथ्यों को ही इस अध्याय में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है और अन्त में, क्या विक्रम सम्वत् को राष्ट्रीय सम्वत् माना जा सकता है, इस प्रश्न का विवेचन किया गया है।

किसी भी वंश के संस्थापक से उस वंश की शक्ति को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचाने वाला व्यक्ति अधिक महान होता है। विभिन्न वंश जब अपने चर्मोत्कर्ष पर थे, तो उनके शासकों ने इस घटना को महत्व प्रदान करते हुए सम्वतों की स्थापना की। विक्रम सम्वत् भी एक ऐसा ही सम्वत् है। भारत में अनेक सम्वतों का प्रचलन रहा किन्तु इन सभी के बीच जीवित रहकर विक्रम सम्वत् ने सर्वाधिक जीवनी शक्ति प्रदर्शित की है। यह आज भी भारत के बड़े भू-भाग पर प्रचलित है। अनेक शताब्दियों से प्रशासनिक कार्यों में इसका प्रयोग बन्द कर दिये जाने पर भी भारतीयों के धार्मिक व सामाजिक कार्यों में यह अबाध गति से प्रचलित है। स्वतन्त्र भारत सरकार द्वारा शक सम्वत् को सरकारी सम्वत् स्वीकार कर लिये जाने पर भी विक्रम सम्वत निरन्तर प्रचलित है। विक्रम सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष २०४६ है जो इसाई सम्वत् १९८९-९०, शक सम्वत् १९११, हिज्री सम्वत् १४०९-१०, बुद्ध निर्वाण सम्वत् २५६२, महावीर निर्वाण सम्वत् २५१५-१६ के बराबर है। इससे व्यतीत वर्षों का सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु आरम्भ से ही सम्वत् को विक्रम सम्वत् नाम न दिये जाने के कारण इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं प्रचलित रही हैं तथा विभिन्न विद्वानों ने विक्रम सम्वत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम फर्गुसन के विचार को लिया जा सकता है। उनका मत है कि विक्रम सम्वत् की स्थापना ५४५ ईस्वी में हुयी। उनके अनुसार, "उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने हूणों के विरुद्ध

कोरूल के युद्ध में निर्णायक विजय प्राप्त की तथा इसी विजय को शाश्वत बनाने के लिये एक सम्वत् की स्थापना की और इस सम्वत् को कालपूजित बनाने के लिये इसकी स्थापना की तिथि ६०० वर्ष पीछे ५६ ईस्वी पूर्व में ठेल दी।"[1] फर्गुसन के इस मत के समर्थक मैक्समूलर थे तथा काफी समय तक यह विचार मान्य रहा परन्तु कुछ अभिलेखों की प्राप्ति के पश्चात् यह विदित हुआ कि ५४५ ईस्वी से पूर्व भी विक्रम सम्वत् का प्रचलन था अतः फर्गुसन के सिद्धान्त की आलोचना की जाने लगी। डा० राजबली पाण्डेय ने फर्गुसन के सिद्धान्त की आलोचना निम्न आधारों पर की है[2] : प्रथम छठी शताब्दी में उज्जयिनी में हर्ष विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं था। मन्दसौर का यशोधर्मन ही प्रमुख राजा था। मन्दसौर में उपलब्ध दो स्तम्भ लेखों में उसकी विजयों का वर्णन मिलता है किन्तु उनमें उसकी विक्रमादित्य उपाधि कहीं भी नहीं है और न ही किसी प्रमाणिक लेख से इसका पता चलता है। दूसरे, विक्रमादित्य सम्वत् का संस्थापक शकारि (शकों का शत्रु) था, हूणों का नहीं जैसाकि फर्गुसन का हर्ष विक्रमादित्य है। तीसरे, इस मत के प्रतिपादक ने इस बात की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं की कि उक्त सम्वत् का संस्थापन अन्य शताब्दियों में नहीं बल्कि ६०० वर्ष पूर्व ही क्यों ठेल दिया गया। चतुर्थ, विक्रम सम्वत् की तिथि में बहुत से प्रमाणिक लेख प्रकाश में आये जो सम्वत् संस्थापन की कल्पित तिथि से पूर्व के हैं। फर्गुसन के सिद्धान्त की आलोचना हरिनिवास द्विवेदी तथा विजय गोविन्द द्विवेदी आदि विद्वानों ने भी की है।[3]

विक्रम सम्वत् की स्थापना के सम्बन्ध में कनिघम ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि विक्रम सम्वत् का आरम्भ कनिष्क ने किया। बाद में फ्लीट ने इस तथ्य की पुष्टि की। उन्होंने कनिष्क की राज्यारोहण की तिथि को प्रथम शती ईस्वी पूर्व रखा और अपने तर्क उपस्थित किये कि कनिष्क जैसे सम्राट ने जो राजनीति व धर्म में समान रूप से महान था, एक सम्वत् का आरम्भ किया

---

१. राजबली पाण्डेय द्वारा उद्धृत, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्तक", वाराणसी, १६६०, पृ० ४७।

२. वही, पृ० ४८।

३. हरि निवास द्विवेदी, "मध्य भारत का इतिहास", प्रथम खण्ड, १६५६, पृ० ४३३।

जिसे व्यापक रूप से लोगों ने स्वीकार कर लिया।"[1] यह मत निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सका : प्रथम, पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में प्राप्त पुरातत्वीय प्रमाण दोनों अभिलेखीय व मुद्रा शास्त्रीय, इस बात को सिद्ध करते हैं कि कनिष्क वर्ग के राजाओं को कैडफिसस वर्ग के राजाओं के पूर्व नहीं रखा जा सकता। अतः कनिष्क का राज्यारोहण भी प्रथम सदी ई० पूर्व में नहीं रखा जा सकता। कनिष्क का समय प्रथम ई० सदी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। अतः कनिष्क विक्रम सम्वत् का प्रवर्त्तक नहीं माना जा सकता। द्वितीय, विक्रम सम्वत् में अंकित सभी लेख दक्षिण पूर्वी राजपूताना तथा मध्य भारत में ही पाये गये जहां पर कनिष्क का राज्य नहीं था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि कनिष्क का समय ५८ ई० पूर्व नहीं अन्यत्र है। स्पष्ट है उसने विक्रम सम्वत् की स्थापना नहीं की जो ५७ ई० पूर्व में आरम्भ हुआ। फ्लीट ने यह मत व्यक्त किया था कि कनिष्क ने विक्रम सम्वत् प्रारम्भ किया था, "किन्तु तक्षशिला में जो पुरातन सामग्री मिली है उससे यह सब निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया है कि कनिष्क का राज्य पहली शती ई० पूर्व नहीं है इसीलिए कनिष्क भी प्रकार से विक्रम सम्वत् का चलाने वाला नहीं हो सकता।"[२] फ्लीट के मत का समर्थन कैनेडी, बरनेट तथा लांगबर्थ डेनीज आदि ने किया है। कतिपय विद्वान जैसे वी०ए० स्मिथ, बेडेल और थामस ने इस मत को अस्वीकार किया है।

सरजान मार्शल ने जिस मत का प्रतिपादन किया उसके अनुसार[3] ५८-५७ ई० पूर्व में आरम्भ होने वाले सम्वत् को गान्धार के प्रथम शक राजा अज से प्रवर्तित किया। इस मत के सन्दर्भ में कुछ आपत्तियां उठायी गयी हैं : पंजाब से प्राप्त कोई लेख ऐसा नहीं है जिसमें ५७ ई० पूर्व में स्थापित सम्वत् का उल्लेख हो, अज की महानता व कृतियों की कोई भी लोकमान्य परम्परा नहीं है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार विक्रम सम्वत् का संस्थापन मालवा में हुआ, पंजाब में नहीं। साथ ही यह भी प्राचीन परम्परा है कि सम्वत् का आरम्भकर्ता शकारि (शकों का शत्रु) था, वह स्वयं शक नहीं था।

---

१. राजबली पाण्डेय द्वारा उद्धृत, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्त्तक", वाराणसी, १९६०, पृ० ४९।

२. ओम प्रकाश द्वारा उद्धृत, "प्राचीन भारत का इतिहास", दिल्ली १९६७, पृ० १९६।

३. राजबली पाण्डेय, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्त्तक", पृ० ५१।

अय्यर महोदय ने अपने ग्रन्थ **क्रोनोलॉजी ऑफ एंशियेंट इण्डिया** में इस मत का प्रतिपादन किया कि विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक उज्जयिनी का महाक्षत्रप चष्टन था। "अय्यर महोदय का मत कई अनुमानों पर आधारित है तथा स्वीकार करने योग्य नहीं। आज की ही भांति चष्टन भी शक राजा था। सभी भारतीय अनुश्रुतियां एक मत हैं कि विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक शकारि (शकों का शत्रु) था स्वयं शक नहीं। अतः कोई भी शक विक्रमादित्य उपाधि का दावा नहीं कर सकता।"[1]

कीलहौर्न का मत है कि विक्रमादित्य नामक कोई राजा ई० पूर्व ५७ में नहीं था। विक्रम काल का अर्थ उन्होंने युद्ध काल माना है और चूंकि मालव सम्वत् का प्रारम्भ शरद ऋतु में होता है जब राजा लोग युद्ध के लिए निकलते थे, इसीलिए उसका नाम विक्रम सम्वत् रखा गया। इस मत को मानने में भी अनेक बाधायें हैं। एक तो विक्रम और युद्ध शब्दों में अर्थ सामान्य नहीं हैं, दूसरे विक्रम सम्वत् शरद ऋतु में ही सर्वत्र प्रारम्भ नहीं होता।[2] जायसवाल के अनुसार लोकप्रिय कहानियों और अनुश्रुतियों का विक्रमादित्य गौतमी पुत्र शातकर्णी था। उनके विचार में प्रथम शती ई० पूर्व में शकों के विरुद्ध दो महत्वपूर्ण भारतीय सफलतायें हैं : प्रथम आन्ध्र राजा गौतमी पुत्र शातकर्णी द्वारा नहपान की पराजय, दूसरी मालवों द्वारा शकों की पराजय। जायसवाल का विचार है कि इस संयुक्त मोर्चे का नायक गौतमी पुत्र शातकर्णी था। अतः वही शकारि विक्रमादित्य है। मालवों ने भी इस युद्ध में भाग लिया तथा इस घटना की स्मृति को बनाये रखने के लिए उन्होंने मालव सम्वत् की स्थापना की। क्योंकि उनका नायक गौतमी पुत्र शातकर्णी (विक्रमादित्य) था अतः उसका विरुद विक्रमादित्य सम्वत् से सम्बन्धित हो गया। परन्तु जायसवाल के मत के सम्बन्ध में कई आपत्तियां हैं[3] : प्रथम नहपान की राष्ट्रीयता तथा तिथि अभी तक निश्चित नहीं है, द्वितीय न तो पुराण और न आन्ध्र प्रदेश के अभिलेख इस बात का उल्लेख करते हैं कि गौतमी पुत्र अथवा इस वंश के अन्य किसी राजा ने

---

१. राजबली पाण्डेय, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्त्तक", वाराणसी, १९६०, पृ० ५३।
२. हरि निवास द्विवेदी, व अन्य, "मध्य भारत का इतिहास", प्रथम खण्ड १९५६, पृ० ४३३।
३. राजबली पाण्डेय, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्त्तक", वाराणसी, १९६०, पृ० ५४।

विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, तृतीय भारतीय अनुश्रुतियों के अनुसार विक्रमादित्य उज्जयिनी के शासक थे, जबकि गौतमी पुत्र प्रतिष्ठान का शासक था।

भण्डारकर ने विक्रमादित्य का समीकरण चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य से किया है, जिसने लगभग ३७५ ई० से ४१३ ई० तक पाटली पुत्र में राज्य किया था। सर्वप्रथम इस मत का प्रतिपादन डा० दत्तात्रेय रामकृष्ण भण्डारकर ने किया था।[1] बाद में वी० ए० स्मिथ[2], बेरडिल, कीथ तथा भारतीय इतिहासकारों के एक वर्ग ने इसे स्वीकार किया। कुछ विद्वानों ने विक्रमादित्य का समीकरण समुद्र गुप्त से किया है। डॉ० भण्डारकर के मत की आलोचना करते हुए डॉ० राजबली पाण्डेय ने लिखा है :

> विक्रमादित्य उज्जयिनी के शासक का व्यक्तिगत नाम था। उसकी उपाधि सहसांक तथा शकारि थी। द्वितीय चन्द्र गुप्त तथा अन्य गुप्त राजाओं ने विक्रमादित्य उपाधि धारण की थी यह उसका व्यक्तिगत नाम नहीं था। इसके साथ ही गुप्त राजाओं का अपना एक सम्वत् था, जिसकी स्थापना ३१९-२० ई० में चन्द्र गुप्त प्रथम द्वारा हुयी थी। सभी गुप्त शासकों के लेखों की तिथि गुप्त सम्वत् में हैं तथा गुप्त सम्वत् के ह्रास के एक दम बाद मालवा से प्राप्त लेखों में स्वतन्त्र रूप से मालव सम्वत् का प्रयोग मिलता है। अत: यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि द्वितीय चन्द्र गुप्त अथवा अन्य किसी गुप्त राजा की विक्रम उपाधि कैसे मालव सम्वत् से सम्बन्धित हो सकती है। इसके साथ ही मूल विक्रमादित्य की शक्ति का केन्द्र उज्जयिनी था, जबकि गुप्त सम्राटों ने पाटली पुत्र में शासन किया तथा उज्जयिनी उसकी प्रादेशिक राजधानी थी, जहां राज्यपाल शासन करते थे।[3]

विक्रमीय सम्वत् को विक्रमादित्य नामक व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित न मानने वालों में डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर भी हैं। उनका कहना है कि विक्रम सम्वत् का मूल नाम कृत सम्वत् है और उसे मालव गण के कृत नामक

---

१. भण्डारकर, "जे० बी० आर० एस०", २०, १९००, पृ० ३९८।

२. वी० ए० स्मिथ, "अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया", १९१४ (तृतीय संस्करण), पृ० २९०।

३. राजबली पाण्डेय, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्त्तक", वाराणसी, १९६०, पृ० ५६-५७।

सेनाध्यक्ष की शक विजय के उपलक्ष में कृत-सम्वत् की संज्ञा दी गयी। "अब यह भी माना जा सकता है कि जिस कृत नामक प्रजाध्यक्ष ने इस सम्वत् की स्थापना की उसका उपनाम विक्रमादित्य था।"[१] अल्तेकर के विचार के सम्बन्ध में हरि निवास द्विवेदी का मत है : "जब यहां तक अनुमान किया जा सकता है तो ऐसे आधार भी हैं जिनके कारण यह विश्वास किया जा सके कि ई० पूर्व ५८ में विक्रमादित्य ने ही मालवगण नाग तथा अन्य शक विरोधियों का संघ बनाकर उसका नेतृत्व किया होगा। मालव भी उसे अपनी विजय मान सकते थे तथा अन्य भी।"[२] हरिहर नाथ द्विवेदी का मत है : "मालव वंश में विक्रमादित्य नाम का कोई राजा था जिसने ५८ ई० पूर्व में अपने वंश को फिर से स्थापित किया इसीलिए यह विक्रम सम्वत् कहलाया। परन्तु यह मत इसीलिए ग्राह्य नहीं है कि आठवीं सदी ई० पूर्व से किसी अभिलेख में इस सम्वत् को विक्रम सम्वत् नहीं कहा गया है।"[३]

इस प्रकार विक्रम सम्वत् के आरम्भकर्ता के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विभिन्न राजाओं के नाम गिनाये हैं तथा अपने-अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अनेक तर्क दिये और इनमें अनेक मतों की पुष्टि दूसरे विद्वानों ने भी की, किन्तु किसी भी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले मुद्रा व अभिलेखीय साक्ष्यों को देखना तथा उनके आधार पर विद्वानों द्वारा प्राप्त किये गये निष्कर्षों को समझना भी आवश्यक है। क्योंकि विक्रम सम्वत् की आरम्भ तिथि तथा आरम्भकर्ता दोनों ही तथ्यों के सम्बन्ध में मत भिन्नता है।

धौलपुर से चाहमान (चौहान) चंद महासेन का अभिलेख विक्रम सम्वत् ८९८ (ई० सन् ८४१) का शिलालेख प्राप्त हुआ यह प्रथम लेख है जिसमें सम्वत् के साथ विक्रम शब्द जुड़ा हुआ मिलता है। इससे पूर्व लेखों में विक्रम का नाम तो नहीं मिलता किन्तु सम्वत् भिन्न-भिन्न रीति में दिया हुआ इस प्रकार मिलता है[४] : (।) मंदसौर से प्राप्त नरवर्मन के समय के लेख में "मालवगण

१. हरि निवास द्विवेदी द्वारा उद्धृत, "मध्य भारत का इतिहास", प्रथम खण्ड, १९५६, पृ० ४३४।

२. वही।

३. ओम प्रकाश, "प्राचीन भारत का इतिहास", दिल्ली, १९६७, पृ० १९६।

४. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १६६।

प्रचलित किये हुए प्रशस्तकृत संज्ञा वाले ४६१वें वर्ष के लगने पर वर्षा ऋतु में"। (2) राजपूताना में रखे हुए नगरी के लेख में "कृत (नामक) ४८१वें वर्ष (सम्वत्) में इस मालव पूर्वा कार्तिक शुक्ला पश्चिमी के दिन" (3) मंदसौर से मिले हुए कुमार गुप्त प्रथम के समय शिलालेख में : "मालवों के गण (जाति) की स्थिति से ४९३ वर्ष बीतने पर पौष शुक्ल १३ को"। (४) मंदसौर से मिले यशोधर्मन के समय के शिलालेख में : "मालवगण (जाति) की स्थिति के वंश से काल ज्ञान के लिये लिखे हुए ५८९ वर्षों के बीतने पर"। (5) कोटा के पास के कणस्वा के शिव मन्दिर में लगे हुए शिलालेख में : "मालवा या मालव जाति के राजाओं के ७९५ वर्ष बीतने पर"। इन सभी अवतरणों से यही पाया जाता है कि : (अ) मालवगण (जाति) अथवा मलव (मालवा) के राज्य या राजा की स्वतन्त्र स्थापना के समय से इस सम्वत् का प्रारम्भ होता था। (आ) अवतरण एक और दो में दिये हुए वर्षों की संख्या "कृत" भी थी। (इ) इसकी मास पक्ष युक्त तिथिगणना भी मालवों की गणना के अनुसार ही कहलाती थी।

प्राचीन अभिलेखों में विक्रम सम्वत् को देखते हुए हरि निवास द्विवेदी[1] ने कुछ निष्कर्ष इस प्रकार दिये हैं : सम्वत् १२०० विक्रमीय तक के लगभग २६१ अभिलेख प्राप्त हुये हैं इनमें सम्वत् ९०० से पूर्व के केवल ३३ ही हैं। (1) २८२ से ४८१ तक इसे कृत सम्वत् कहा गया है। (2) सम्वत् ४६१ से ९३६ तक इसे मालव सम्वत् कहा गया है। सम्वत् ४६१ के मन्दसौर के अभिलेख में इसे कृत तथा मालव दोनों संज्ञायें दी गई हैं। (3) सम्वत् ७९४ के ढ़िमकी के अभिलेख में इस सम्वत् को सबसे पहले विक्रम सम्वत् कहा गया है। परन्तु डॉ० अल्तेकर ने इस अभिलेख युक्त ताम्र पत्र को जाली सिद्ध कर दिया है। अतः विक्रम सम्वत् के नाम से यह सर्वप्रथम धौलपुर के चण्ड महासेन के ८९८ के अभिलेख में अभिहित किया गया है। (4) मालव तथा कृत नामों के प्रयोग की भौगोलिक सीमा, उदयपुर, जयपुर, कोटा, भरतपुर मन्दसौर तथा झालावाड़ हैं। विक्रम नाम सम्पूर्ण भारत में प्रयुक्त हुआ है।

शिलालेखों के साथ-साथ कुछ मुद्रा लेख भी प्राप्त हुए हैं, जिन पर विक्रम सम्वत् अंकित हैं। जो इस सम्वत् के आरम्भ तिथि व आरम्भकर्ता के विषय में अनुमान लगाने में सहायक हैं। मालव प्रान्त में मालवगण की मुद्रायें प्राप्त हुई हैं, उनमें कुछ मुद्राओं पर एक ओर सूर्य या सूर्य का चिन्ह है तथा दूसरी ओर

---

१. हरि निवास द्विवेदी एवं अन्य, "मध्य भारत का इतिहास", प्रथम खण्ड, १९५६, पृ० ४३५।

'मालवानां जय:" अथवा "मालवगणस्य जय" अथवा "जय मालवानां जय" लिखा हुआ है। इन मुद्राओं के सम्बन्ध में श्री जय चन्द विद्यालंकार लिखते हैं : "पहली शताब्दी ई० पूर्व के मालवगण के सिक्कों पर मालवानां जय : और मालवगणस्य जयः की छाप रहती है। वे सिक्के स्पष्टत: किसी बड़ी विजय के उपलक्ष में चलाये गये थे और वह विजय ५७ ई० पूर्व की विजय के सिवाय और कौन सी हो सकती थी ?"[1] इस प्रकार आरम्भ में अभिलेखों में कृत सम्वत् नाम का प्रयोग किया गया, ये लेख २८२ से ४८१ के बीच के हैं। इसके बाद ४६१ व ४८१ के लेखों में मालवगण तथा कृत नामों को साथ-साथ दर्शाया गया है। दसवीं शताब्दी के लगभग एक दर्जन लेखों में केवल मालवा या मालव-गण का प्रयोग हुआ है, ७७० के करीब के दो लेखों में न कृत शब्द का और न मालव शब्द का प्रयोग हुआ है, लेकिन सम्वत् को संवत्सर शब्द से निर्दिष्ट किया गया है। ८९४ में विक्रम काल का प्रयोग हुआ इसके बाद मालव का स्थान विक्रम शब्द ने ले लिया तथा उसके बाद के अधिकांश लेखों में विक्रम शब्द ही प्रयुक्त हुआ।

सम्वत् के लिए पहले कृत, फिर मालव तथा इसके बाद विक्रम शब्दों का प्रयोग यह प्रश्न उपस्थित करता है कि यदि सम्वत् का आरम्भकर्ता विक्रमादित्य ही था तब आरम्भ से ही सम्वत् को विक्रम सम्वत् के नाम से क्यों नहीं लिखा गया ? आरम्भ में कृत, फिर मालव तथा अन्त में विक्रम नाम ग्रहण करने की क्या आवश्यकता थी ? विभिन्न विचारकों ने इस समस्या का समाधान दिया है तथा उन कारणों पर प्रकाश डाला जिनसे सम्वत् के नामों में परिवर्तन किया गया।

"कृत युग" का अर्थ कुछ विद्वानों ने सत् युग (स्वर्ण युग) से लगाया है। बर्बर शकों पर मालवगण की विजय के स्मारक स्वरूप सम्वत् चलाया गया। भारत से शकों के निष्कासन् से देश विदेशी आक्रमण से मुक्त हो गया, शक्ति और सम्पन्नता का युग उद्घाटित हुआ, जिसे अलंकारिक रूप से कृत युग (सतयुग) समझा जा सकता था। इसीलिए पहले सम्वत् का कृत नाम सार्थक था। भारतीय ज्योतिष में कृत केवल युग का क्रमिक विभाग नहीं अपितु सुखी व समृद्ध युग का भी बोधक है। शकों के निष्कासन के बाद मालवगण की सुदृढ़ नींव के समय अलंकारिक भाषा में कृत युग आरम्भ किया गया। बाद में यह सम्वत् मालव सम्वत् या मालवों का सम्वत् या मालवेशों का सम्वत् कहा गया।

---

१. हरि निवास द्विवेदी द्वारा उद्धृत, "मध्य भारत का इतिहास", प्रथम खण्ड, १९५६, पृ० ४३७।

अन्ततोगत्वा नवीं सदी के मध्य में इस सम्वत् को विक्रम सम्वत् या राजा विक्रम सम्वत् कहा जाने लगा।[1]

पी० सी० सेन गुप्त ने खगोलशास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर कृत का अर्थ इस प्रकार दिया है : "सूर्य-चन्द्रमा-बृहस्पति व तारों से मिलकर कृत युग के आरम्भ के जो चिन्ह बनते हैं जिन्हें कि ६३ ई० पूर्व में देखा जा सकता था। इस वर्ष सूर्य शीत मकर संक्रान्ति में २४ दिसम्बर को पहुंचा तथा पौष का पूर्णमासी का दिन इससे अगला दिन था। कृत, मालव अथवा विक्रम सम्वत् की वास्तविक शुरूआत इस प्रकार पांच वर्ष बाद पूर्णमासी के दिन २८ दिसम्बर, ५८ ई० पूर्व से हुयी। इस प्रकार सम्वत् ० वर्ष करीब-करीब ५७ ई० पूर्व ही था तथा सम्वत् वर्ष की संख्या चालू वर्ष को दर्शाती है, जैसाकि क्रिश्चन सम्वत् में हैं।"[2] ऐसा अनुमान किया जाता है कि विदेशी आक्रमणों से मुक्त भारत ने ५७ ई० पूर्व से ७८ ई० तक १३५ वर्ष शान्ति और समृद्धि का उपभोग किया। इसके बाद शकों के पुनः आक्रमण आरम्भ हुए। अवन्ति का भू भाग मालवों के हाथ से छिन गया फिर भी उनकी राष्ट्रीयता विद्यमान रही तथा अवन्ति को पुन: जीतने तथा फिर एक बार कृत युग की स्थापना करने की आशा में, वे अवन्ति के उत्तर पूर्व में हट गये जहां एक नये मालव देश का निर्माण किया तथा ५७ ई० पूर्व में स्थापित सम्वत् अब भी कृत कहलाता रहा। शकों के साथ उनका युद्ध चलता रहा, किन्तु शक्ति के संगठन के अभाव में वे अपनी खोयी भूमि व कीर्ति न पा सके। कृत युग स्थापना का विचार धूमिल होने लगा, किन्तु मालव राज्य अब भी जीवित था अतः सम्वत् को अब मालव सम्वत्, मालवगण सम्वत् तथा मालवेश सम्वत् नामों से पुकारा जाने लगा। ईसा की आठवीं, नवीं शताब्दी तक भारत में राजतन्त्र पूर्ण रूप से स्थापित हो गया। गणराज्य की कल्पना भी भारतीयों के मस्तिष्क क्षितिज से परे हट गयी। मालवगण की स्मृति भी धूमिल पड़ने लगी, लेकिन विक्रमादित्य की स्मृति अब भी लोगों के मानस पटल पर स्थिर रही तथा सम्वत् का नाम भी विक्रमादित्य के नाम के साथ जोड़कर विक्रम सम्वत् कहा जाने लगा।

अभी तक हमने फरगूसन, कनिंघम, मार्शल, अय्यर, अल्तेकर आदि अनेक विद्वानों के विचार देखे, जिन्होंने विक्रम सम्वत् की प्रचलित मान्यता से पृथक

---

१. राजबली पाण्डेय, "विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्त्तक", वाराणसी, १९६०, पृ० ८९।
२. पी० सी० सेन गुप्त, "एंशियेंट इण्डियन क्रोनोलॉजी", कलकत्ता, १९४७, पृ० २४१।

अपने मत प्रस्तुत किये तथा सर्वथा भिन्न तिथियां सम्वत् आरम्भ के लिए दीं। इसके साथ ही इन सिद्धान्तों की आलोचना भी दी गयी। सम्वत् के आरम्भ की निश्चित तिथि को जानने के लिए यह आवश्यक है कि उन अनेक विद्वानों के मतों को देखा जाये जो ५८ ई० पूर्व की निश्चित तिथि पर एक मत हैं तथा अपने विचार की पुष्टि में पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। "विक्रम सम्वत् का आरम्भ कलियुग सम्वत् के ३०४४ वर्ष व्यतीत होने पर माना जाता है। जिससे इसका गत एक वर्ष कलियुग सम्वत् ३०४५ के बराबर होता है। इस सम्वत् में से ५७ या ५६ घटाने से ईस्वी सन् और १३५ घटाने से शक सम्वत् आता है।"[1] इस प्रकार कलि, विक्रम तथा ईसाई सम्वतों के पारस्परिक मिलान से विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ होने की तिथि प्राप्त हो सकती है: कलि सम्वत्—५०८८; विक्रम सम्वत्—२०४४-४५; ईसाई सम्वत्—१९८८। इस प्रकार कलि सम्वत् (५०८८—२०४४=) ३०४४-४५ में विक्रम सम्वत् का आरम्भ तथा विक्रम सम्वत्, ईसाई सम्वत् (२०४५—१९८८=५७ ई० पूर्व) के ५७ ई० पूर्व से आरम्भ हुआ।

विक्रम सम्वत् के आरम्भ की ५७ ई० पूर्व में आरम्भ की तिथि का समर्थन जिन विद्वानों ने किया है उनमें प्रमुख डॉ० त्रिवेद,[2] सी० मोबल डफ,[3] रघुनाथ सिंह,[4] ओम प्रकाश,[5] आदि हैं। साथ ही कलैण्डर रिफोर्म कमेटी की रिपोर्ट[6] जोकि विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेक साहित्यिक, ऐतिहासिक, पुरातत्वीय तथा खगोलशास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर तैयार की गयी है, में भी विक्रम सम्वत् आरम्भ के लिये इसी तिथि को ग्रहण किया गया है।

भारतीय इतिहास में विक्रम सम्वत् एक ऐसा सम्वत् है जिसे निश्चित रूप से भारतीय कहा जा सकता है जिसका प्रयोग विभिन्न समयों पर प्रशासनिक

---

१. राय बहादुर पंडित गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १६९।
२. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलाजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३१।
३. सी० मोबल डफ०, "क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", प्रथम भाग, वाराणसी, १९७५, पृ० १८।
४. रघुनाथ सिंह, "ए डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड क्रोनोलॉजी", वोल्यूम-प्रथम, वाराणसी, १९७७, पृ० ३८१।
५. ओम प्रकाश, "प्राचीन भारत का इतिहास", दिल्ली, १९६७, पृ० १९५।
६. रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी, दिल्ली, १९५५, पृ० २५४।

तथा राजकीय कार्यों के लिये भी किया गया और हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों के लिये अपने जन्म से आज तक निरन्तर प्रयुक्त हो रहा है। विक्रम सम्वत् का उल्लेख केवल श्री सम्वत् नाम से भी किया जाता है। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में पंचांग निर्माण, व्रत, त्यौहार के निर्धारण तथा विवाह आदि शुभ अवसरों की तिथियां निश्चित करने के लिये विक्रम सम्वत् का प्रयोग किया जाता है।

"वर्तमान समय में इसकी दो प्रकार की गणना चैत्रादि व कार्तिकादि प्रचलित हैं। चैत्रादि गणना में वर्ष का आरम्भ २० चैत्र से होता है। जिसका प्रचलन उत्तरी भारत में है तथा कार्तिकादि गणना में वर्ष आरम्भ १२ कार्तिक से होता है जिसका प्रचलन दक्षिणी भारत में है। विक्रम सम्वत् २०४३ का आरम्भ चैत्र २० (१० अप्रैल १९८६ ईस्वी) कार्तिक १२ (३ नवम्बर १९८६ ईस्वी)"[1] नये वर्ष का आरम्भ नवरात्रि प्रथम से होता है जोकि चैत्र के १५ दिन बीतने पर चैत्र माह के मध्य में पड़ता है। फिर यहां इस पंचांग में चैत्र २० व कार्तिक १२ से नव वर्ष आरम्भ किस आशय से लिखा है, समझ नहीं पड़ता। कार्तिकादि नव वर्ष का आरम्भ भी कार्तिक प्रथम से ही होना चाहिये न कि कार्तिक १२ से। विक्रम सम्वत् चन्द्र मास आधारित होने पर भी इसमें सौर मासों का समावेश रहता है। अधिकांश पर्व व त्यौहार चन्द्र मासों पर ही आधारित होते हैं। हमारी संस्कृति और सभ्यता विभिन्न तीज त्यौहारों, पर्वों एवं उत्सवों के रूप में अभिव्यक्त होती है। इस विभिन्नता में भी विक्रमी सम्वत् के रूप में एकता की भावना सर्वत्र लक्षित होती हैं। विक्रम सम्वत् के माह पूर्णरूपेण चन्द्रीय हैं तथा प्रथम माह चैत्र है। पूर्णचन्द्र के बाद से नया माह आरम्भ होता है।[2]

दो शहस्त्राब्दियों से भारत में प्रचलित शताब्दियों तक प्रशासनिक, धार्मिक व सामाजिक कार्यों में प्रयुक्त विक्रम सम्वत् देश के एक बड़े भू-भाग में लोकप्रिय रहा। साहित्य, अभिलेखों, मुद्राअंकन व प्रशस्तियों में सम्वत् ने स्थान पाया। इतनी सब विशिष्टताओं के होते हुये भी प्रश्न यह उठता है कि क्या विक्रम की ये विशिष्टताएं उसको भारत का राष्ट्रीय सम्वत् कहलाने के लिये पर्याप्त हैं। इसके लिये राष्ट्रीय सम्वत् के गुणों को देखना अनिवार्य है। "जो सम्वत् सम्पूर्ण देश में प्रयुक्त हों, राष्ट्रीय भावनाएं जिसके साथ जुड़ी हों तथा जो इतिहास का

---

१. राष्ट्रीय पंचांग, दिल्ली, १९८६-८७, भूमिका ४।

२. विक्रम सम्वत् आजकल भी प्रचलन में है अत: इसकी गणना प्रद्धति का विस्तृत विवरण चतुर्थ अध्याय "विभिन्न सम्वतों का पारस्परिक सम्बन्ध व वर्तमान अवस्था" में दिया गया है।

प्रमुख आधार रहा हो तथा अधिकांश जनमानस जिसको सहर्ष स्वीकार करता हो ऐसे सम्वत् को राष्ट्रीय सम्वत् कह सकते हैं।"[1]

विक्रम सम्वत् के विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि एक लम्बी समयावधि तक भारत के बड़े भू-भाग पर प्रचलित रहा। इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण यही है कि आज भी उत्तर व दक्षिण में धार्मिक व सामाजिक अनुष्ठानों की पूर्ति के लिये इसी सम्वत् को अपनाया जाता है और यह भी निश्चित है कि प्रशासनिक कार्यों में इसका प्रयोग हुआ क्योंकि यह साम्राज्य संस्थापक द्वारा विदेशियों से देश को मुक्त कराने के हर्ष के अवसर पर ही स्थापित किया गया। अतः नवनिर्मित राष्ट्र में इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया होगा। विक्रम सम्वत् के साथ राष्ट्रीय भावनाओं के जुड़े होने के तथ्य पर भी शंका नहीं की जा सकती क्योंकि संस्थापक स्वयं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत था तथा किसी भी बाह्य शक्ति का दखल देश में सहन करना उसके लिये असम्भव था। स्वाभाविक रूप में प्रजा ने भी सम्वत् को राष्ट्र के प्रतीक रूप में ग्रहण किया होगा। विक्रम सम्वत् को साहित्य, परम्पराओं व लोककथाओं में पर्याप्त स्थान मिला इसके साथ ही अभिलेखों व मुद्राओं पर सम्वत् का अंकन इस सम्वत् को भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण तथ्य बना देता है जिसके अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तिथियों के अंकन तथा तिथि निर्धारण में सहायता मिलती है। सम्वत् का जन साधारण द्वारा सहर्ष स्वीकार किये जाने के प्रश्नों के सम्बन्ध में यह माना जा सकता है कि सम्वत् के आरम्भ के समय इसको जन-साधारण ने अवश्य ही स्वेच्छा से स्वीकार होगा। "विक्रमादित्य का अर्थ है सौर्य का पुत्र, यह उस व्यक्ति को दी जाती थी जो अपने साहस से बहादुर जाना जाता था। विक्रम सम्वत् चन्द्रमा की गति पर आधारित है अतः यह बिल्कुल सीधा व सही है। एक अशिक्षित किसान भी इससे अर्थ निकाल सकता है।"[2] अतः यह गणना में भी सरल है। अपने आरम्भ के समय यह दैनिक, धार्मिक व व्यावहारिक राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होगा परन्तु धीरे-धीरे भारत की बदली परिस्थितियों, अनेक विदेशी आक्रमणों, अनेक संवतों की स्थापना तथा इन सम्वतों को प्रशासन द्वारा स्वीकार किये जाने आदि तत्वों ने विक्रम सम्वत् की मान्यता को भी ठेस पहुंचाई। आज भारत में अनेक जाति,

---

१. अपर्णा शर्मा, "भारतीय राष्ट्रीय सम्वत्", शोधक, जयपुर, वोल्यूम, १५, पार्ट ए, क्रम संख्या ४३, १९८५, पृ० ३९।

२. अनिल माथुर, "द हिन्दुस्तान टाइम्स", दिल्ली, मार्च २९, १९८७, पृ० ९।

धर्म व सम्प्रदाय के लोग बसते हैं तथा विक्रम सम्वत् को हिन्दुओं का धार्मिक सम्वत् माना जाता है अत: आनुनिक भारत के लिये विक्रम सम्वत् का वर्तमान स्वरूप राष्ट्रीय सम्वत् का स्थान पाने योग्य नहीं रह गया है। इस सबके अतिरिक्त सहस्त्राब्दियों के अन्तराल ने विक्रम सम्वत् में भी अन्य सम्वतों की भांति त्रुटियां उत्पन्न कर दी हैं। इस सं० को राष्ट्रीय सम्वत् का स्थान देने में बाधा यह भी है कि कभी भी खगोलशास्त्र में इसका प्रयोग नहीं हुआ। खगोलशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त सम्वत् शक सम्वत् रहा, विक्रम सम्वत् का प्रयोग खगोलशास्त्रियों ने नहीं किया। अत: राष्ट्रीय सम्वत् के रूप में विक्रम सम्वत् को स्वीकारने के लिये उसमें खगोलशास्त्रीय अध्ययन द्वारा सुधार की आवश्यकता है।

भारत में नया साल होली से १५ दिन बाद मनाया जाता था। ये १५ दिन होली व नये साल के बीच सम्भवत: इसीलिये रखे गये ताकि राजा फसल का अनुमान लगा ले तथा उसी के आधार पर नये वर्ष का बजट बना ले। दुर्गा पूजा से वर्ष का आरम्भ होता है तथा यह नवरात्री दुर्गा पूजा का त्यौहार सम्पूर्ण राष्ट्र में मनाया जाता है जो राष्ट्रीय एकता की भावना को दिखाता है। पहले इस अवसर पर यज्ञ और बली भी दी जाती थी। यह वह समय माना जाता था जबकि भविष्य में समृद्धि के लिये प्रार्थना की जाये व पुराने वर्ष की बुराईयों को भुला दिया जाये। होली जलाना भी इसी बात का प्रतीक है। आज भी इन त्यौहारों की मान्यता वैसी ही बनी हुई है।

यह सम्वत् जिसे आजकल विक्रम सम्वत् के नाम से जाना जाता है चन्द्रीय चैत्र के शुक्ल पक्ष से आरम्भ होता है। यह शुरूआत वैज्ञानिक सिद्धान्तों या खगोल शास्त्र की अन्य पुस्तकों जोकि विभिन्न समय पर लिखी गयी हैं लेकिन जिनमें कोई भी ४९९ ए० डी० से पहली नहीं है, के आधार पर हैं। इतिहास लेखन व साहित्य में भी विक्रम सम्वत् का प्रयोग हुआ है। वर्तमान समय में यह धार्मिक कृत्यों के लिये व्यापक रूप में प्रयुक्त है।

शक सम्वत्

अभिलेखों में इस सम्वत् के लिये शक, शकनृप संवत्सरा, शकनृपति, संवत्सरा, शक नृपति राज्याभिषेक संवत्सरा, शकनृप कालातीत संवत्सरा, शकेन्द्र काल, शक काल, शक समय, शकाब्द, शकाब्दे, शक सम्वत्. शक शालीवाहन, शालीवाहन निरमिता, शक वर्षा आदि नामों का प्रयोग किया गया है। इस सम्वत् ने भारतीय जन मानस में सर्वाधिक उच्च स्थान पाया। यह तीन प्रमुख स्तरों से होकर गुजरा। प्रथम अवस्था, जिसे पुराना शक सम्वत् कहा जाता है

१२३ ईस्वी पूर्व से आरम्भ हुआ। सम्वत् की दूसरी अवस्था वह रही जबकि उसे शक राजा कनिष्क ने ७८ ईस्वी में नये रूप में ग्रहण किया। भारत में दो शस्त्राब्दियों से शक सम्वत् आज तक प्रचलित है। तथा १९५७ को भारतीय सरकार ने देश भर के लिये समान राष्ट्रीय पंचांग के लिये ग्रहण किया, यह सम्वत् का तीसरा चरण है।

पुराने शक सम्वत् के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि वह कनिष्क से शताब्दियों पहले प्रचलन में था। कनिष्क ने किसी नये सम्वत् का आरम्भ नहीं किया, वरन् पूर्व प्रचलित शक सम्वत् को ही अपने नाम से ग्रहण कर पुनः नयी तिथि से गणना आरम्भ की। रैप्सन का विचार है कि "दूसरे विदेशी आक्रमण-कारियों की भांति शक भी भारत आते समय अपनी गणना पद्धति साथ लाये होंगे तथा उसका प्रयोग यहां किया होगा। ऐसी धारणा अतार्किक नहीं है।"[1] पुराने शक सम्वत् के आरम्भ में दी गयी कुछ तिथियां इस प्रकार हैं: डा० जायसवाल मानते हैं कि इसका प्रारम्भ १४५ तथा १०० ईस्वी पूर्व के बीच हुआ। बाद में इसे १२३ ईस्वी पूर्व तय कर लिया गया। आर०डी० बनर्जी १०० ईस्वी पूर्व, जान मार्शल ९५ ईस्वी पूर्व, वान विजक ८४ ईस्वी पूर्व इसका आरम्भ मानते है।[2] हर्ष फैल्टन ने १०० ईस्वी पूर्व से पु० श० सम्वत् का आरम्भ माना है जबकि मैथ्राडेट्स द्वितीय द्वारा शकों का सिस्तान में स्थापन किया गया। रैप्सन १५० ई० पूर्व में सिस्तान में शक राज्य की स्थापना से इस सम्वत् का आरम्भ मानते हैं। टर्न १५५ ई० पूर्व मैथ्राडेट्स प्रथम द्वारा सिस्तान में शक अप्रवासियों के बसने तक। डी-ल्यू के अनुसार पुराना शक सम्वत् १२९ ई० पूर्व में आरम्भ हुआ जबकि शक जातियों ने यू-ची के नेतृत्व में बैक्ट्रिया की ओर प्रस्थान किया तथा पार्थियन राजा उन्हें रोकने के प्रयास में मारा गया। वान-लोहिजन-डी-ल्यू का विश्वास है कि तिथि गणना की प्राचीन भारतीय प्रथा १०० का अंक छोड़कर गणना करने की रही है। मथुरा के अनेक ब्रह्मी अभिलेखों में ५ से ५७ वर्ष तक की तिथियां हैं जिनमें प्राचीन भारतीय प्रथा का अनुसरण किया गया है तथा १०० का अंक छोड़ दिया गया है। ५ (१०५), १४ (११४) कुषाण सम्वत् के लिये प्रयुक्त हुआ है। मथुरा के पास के प्रथम शताब्दी के लेखों की तिथि के सम्बन्ध में यही धारणा है।[3] एम० एन० शाह के

---

१. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा उद्धृत, "द जैन सोर्सिज ऑफ द हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट इण्डिया", दिल्ली, १९६४, पृ० ८३।

२. वही, पृ० ८२-८३।

३. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २३२।

अनुसार कनिष्क का प्रथम वर्ष पुराने शक सम्वत् का २०१ वर्ष है। कनिष्क ७८ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ तथा नया शक सम्वत् चलाया। वान-लोहिजन-डी-ल्यू तथा एम० एन० शाह के विचारों से कुछ तथ्य इस प्रकार निकाले जा सकते हैं : शक सम्वत् सम्भवतः १२३ ई० पूर्व में आरम्भ हुआ होगा, जब शक हूणों के साथ बैक्ट्रिया में सात वर्ष युद्ध करने के बाद आये होंगे तब उनका नेता एजेज प्रथम रहा होगा। सम्भवतः इसी कारण इस सम्वत् का नाम एजेज सम्वत् भी पड़ा।

ज्योति प्रसाद पुराने शक सम्वत् की तिथि सदी ई० पूर्व बताते हैं। उनके विचार से भारत में शकों के प्रवेश की तिथि किसी भी प्रकार से ८४-८० ई० पूर्व से पहले की नहीं हो सकती। अतः इसी के करीब सम्वत् की स्थापना भी हुई होगी। "पुराने शक सम्वत् की तिथि प्रथम सदी ई० पूर्व के ६०वें या ७०वें दशक से पीछे नहीं खिसकाई जा सकती जो इससे पहले की तिथि का समर्थन करते हैं वे अपने सुझावों को या तो अप्रासांगिक गणनाओं पर आधारित मानते हैं या सम्वत् को भारत के बाहर आरम्भ हुआ मानते हैं।"[१] यह मत व्यक्त किया जाता है कि पुराना शक सम्वत् १२३ ई० पूर्व में प्रारम्भ किया गया तथा ७० ई० पूर्व से ६५ ई० तक प्रयुक्त होता था। इस प्रकार तिथि क्रम का वह बड़ा भाग जो अनिश्चय की स्थिति में रहा है, को स्पष्ट समझने में मदद मिल सकती है। आधुनिक अफगानिस्तान तथा उत्तरी-पश्चिमी पंजाब से प्राप्त कुछ आधुनिक खोजें इस परिकल्पना की चारित्रिक विशिष्टताओं को स्थापित करती हैं। एम०एन० शाह की परिकल्पना के अनुसार "कनिष्क का प्रथम तिथ्यांकित रिकार्ड पुराने शक सम्वत् के वर्ष २०१ में है तथा ईसाई सम्वत् के ७८ ई० में, इस प्रकार कनिष्क सम्वत् तथा शक सम्वत् एक समान हैं।"[२]

७८ ई० से आरम्भ होने वाले शक सम्वत् से पूर्व भी एक शक सम्वत् प्रचलित था इसका परिचय भारतीय परम्पराओं से भी मिलता है। संस्कृत साहित्य में इस संदर्भ में उदाहरण मिलते हैं।

---

१. ज्योति प्रसाद जैन, "द जैन सोर्सिज ऑफ द हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट इण्डिया", दिल्ली, १९६४, पृ० ८८।

२. एम० एन० शाह, 'डिफरेन्ट मेथडस ऑफ डेट-रिकार्डिंग इन ऐंशियंट एण्ड मेडिवल इंडिया एण्ड दि ओरिजिन ऑफ द शक ऐरा', "जर्नल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी", वोल्यूम, १९, १९५३, पृ० १८।

विभिन्न विचारकों के मतों के अध्ययन के बाद यही निर्णय दिया जाता है कि पुराना शक सम्वत् (७८ ई० में आरम्भ होने वाले सम्वत् को कुछ वर्ष पूर्व तक नया शक सम्वत् नाम से जाना जाता रहा है। अब १९५५ में भारत सरकार ने शक सम्वत् को पुनः शोधित कर राष्ट्रीय सम्वत् के रूप में ग्रहण किया है। अतः नये शक सम्वत् से तात्पर्य इस सुधरे राष्ट्रीय पंचांग से भी लगाया जा सकता है) से २०० वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ अर्थात् कनिष्क का प्रथम वर्ष पुराने शक सम्वत् का २०१ वर्ष है।

७८ ई० में आरम्भ होने वाला शक सम्वत् नया शक सम्वत् कहा जाता है। विद्वानों का एक वर्ग जोकि अल्बेरूनी के भारत वर्णन से प्रभावित है शकों के विनाश से शक सम्वत् का आरम्भ मानता है, जबकि दूसरा वर्ग शकों की शक्ति के चर्मोत्कर्ष के समय से शक सम्वत् का आरम्भ मानता है। अल्बेरूनी ११वीं शताब्दी के समय भारतीय लेखकों के बारे में बताता है और साथ ही यह भी सूचना देता है कि शक सम्वत् का आरम्भ प्रजापीड़क शक राजा के विध्वंश के समय से हुआ। इसी से मिलते हुये विचार उस समय के कुछ लेखकों ने भी दिये। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भास्कर ने **ग्रहगणिता** में लिखा है: कलि के ३१७९ वर्ष बीतने पर शक राजा की मृत्यु हुयी। **सिद्धान्त शिरोमणी** के लेखक श्रीपति के अनुसार शक काल की समाप्ति पर कलि के ३१७९ वर्ष बीत चुके थे। ब्रह्मगुप्त, वात्यवारा आदि ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। इन सभी विचारकों के विचार उस कथा से मिलते हैं जो अल्बेरूनी[1] ने शक राजा के सम्बन्ध में दी है। अल्बेरूनी के अनुसार शक सम्वत् विक्रम सम्वत् से १३५ वर्ष बाद आरम्भ हुआ तथा शक राजा जो प्रजापीड़क व अत्याचारी था, को विक्रमादित्य द्वारा मार दिये जाने पर इस सम्वत् का आरम्भ हुआ। परन्तु इस सिद्धान्त की आलोचना इसीलिए की जाती है कि शक सम्वत् का आरम्भकर्ता स्वयं शक राजा था, शक राजा को परास्त करने वाला नहीं। विक्रमादित्य ने विक्रम सम्वत् का आरम्भ किया शक सम्वत् का नहीं। अल्बेरूनी ने अपने कथन में शक व विक्रम सम्वत् के संस्थापकों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है: "वे जिजेता का श्री लगाकर स्वागत करते हैं तथा उसे श्री विक्रमादित्य कहते हैं जो सम्वत् कहलाता है। (विक्रम सम्वत्) उसके और शक के मारे जाने के बीच लम्बा अन्तराल है। इसीलिये

---

१. अल्बेरूनी, "अल्बेरूनी का भारत", अनुवादक रजनीकांत, इलाहाबाद, मार्च १९६७, पृ० २९६-९७।

हम समझते हैं कि वह विक्रमादित्य जिससे सम्वत् का वह नाम पड़ा है वही व्यक्ति नहीं जिसने शक को मारा था वरन् केवल उसका समनामधारी है।"[1]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित सभी विद्वानों के विचार यह बताते हैं कि शक सम्वत् का आरम्भ अत्याचारी शक राजा की श्री विक्रमादित्य द्वारा हत्या किये जाने के समय से हुआ। एक अन्य मत प्रो० डूथिया का जोकि ७८ ई० में शक राजा द्वारा सम्वत् की स्थापना के विरोध में जाता है कि आलोचना हेम-चन्द्र राय चौधरी ने की है तथा इस मत की पुष्टि की है कि शक सम्वत् का आरम्भ ७८ ई० में हुआ।[2] और आज अधिकांश विद्वान फर्गुसन, ओल्डेनबर्ग, बनर्जी, रैप्सन, जे०ई० पान लो हुइजन, डी-ल्यू, डी०एस० त्रिवेद आदि इसी मत का समर्थन करते हैं। अतः अब इस वर्ग के विद्वानों के विचारों का उल्लेख आवश्यक है।

नये सम्वत् के आरम्भ के संदर्भ में भी समय-समय पर अभिलेखीय व मुद्रा सम्बन्धी व साहित्यिक खोजों के आधार पर अनेक तिथियां निर्धारित की जाती रही है। एक ही विद्वान ने अनेक तिथियों की सम्भावना व्यक्त की है। सिल्वेन लेवी ने कुषाण तिथिक्रम की समस्या को चीनी इतिहासकारों द्वारा दिये गये वर्णन के आधार पर निरीक्षण किया है तथा कनिष्क के राज्य का आरम्भ ५ ई० पूर्व से माना है। त्रिवेद ने कल्हण की **राजतरंगणी** में दिये गये आंकड़ों के आधार पर गणना की है तथा इस घटना की तिथि १३५६ ई० पूर्व बतायी है। अनेक विद्वानों के निष्कर्षों के भिन्न-भिन्न आधार हैं। इस प्रकार १३५६ ई० पूर्व से २७८ ई० (डा० आर०जी० भण्डारकर) तक अनेक विरोधी तिथियां कनिष्क के शासन काल तथा उनके द्वारा तिथि निर्धारण के संदर्भ में दी गयी हैं। फर्गुसन, ओल्डेनबर्ग, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० पान लो हुइज़ेन, डी-ल्यू, वैशोफर आदि विद्वानों के अनुसार कनिष्क ने ७८ ई० में शक सम्वत् का आरम्भ किया। ए० कनिंघम लिखते हैं कि शक सम्वत् की गणना कलि सम्वत् के ३१७९ या ई० ७८ से की जाती है क्योंकि भारतीय पूर्ण वर्षों से ही गणना करते हैं (कितने वर्ष व्यतीत हो चुके)। अतः प्रथम वर्ष कलियुग के ३१८० या ई० ७९ से आरम्भ होता है। उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में इसका प्रयोग प्रायः

१. अल्बेरूनी, "अल्बेरूनी का भारत", अनुवादक रजनीकांत, इलाहाबाद, मार्च १९६७, पृ० २९६-९७।

२. हेमचन्द्र राय चौधरी, "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास", इलाहाबाद, १९८०, पृ० ३४६-४९।

चन्दसौर वर्ष से किया जाता है।[1] इसी संदर्भ में कनिंघम ने ५ अप्रैल ई० सन् १८८६ से २४ मार्च ई० सन् १८८७ की अवधि को शक सम्वत् १८०८ के साथ संगति रखते हुये सारणियां प्रस्तुत की हैं। अतः शक तिथि को ईसाई सम्वत् में बदलने के लिये शक की ज्ञात तिथि में ७८ वर्ष जोड़ने चाहियें तथा क्रिश्चयन तिथि को शक में बदलने के लिये क्रिश्चयन की ज्ञात तिथि में से ७८ वर्ष घटाने चाहियें। "७८ ई० की तिथि साधारणतः कुषाण शासक कनिष्क से सम्बन्धित है। इसके आरम्भकर्ता के रूप में दूसरे नाम भी सुझाये जाते हैं।"[2] पी०सी० सेन गुप्त ने विभिन्न खगोलशास्त्रीय तथ्यों व ग्रहणों के हिसाब के आधार पर कनिष्क की तिथि बतायी है : "इस प्रकार हम देखते हैं कि यह परिकल्पना कि राजा कनिष्क का सम्वत् २५ दिसम्बर ७६ ई० में आरम्भ हुआ था या वर्ष २ शक सम्वत् से आरम्भ हुआ था। डा० कोनोव के खरोष्ठी में दिये गये लेख से प्रारम्भ होने वाले समस्त तथ्यों की पुष्टि करता है। हमारी खोज यह दिखाती है कि शक राजा कनिष्क शक सम्वत् के आरम्भ में रहता था। यह विचार मुझे पूर्ण विश्वास है सभी सही दिमाग वाले इतिहासकारों द्वारा माना जायेगा।"[3]

शक सम्वत् के लिये नगरों, प्रान्तों अथवा किसी शासक के शासन क्षेत्र को आंकन की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रसार क्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष में हुआ और आज भी हो रहा है। अपने जन्म स्थल से कितने समय बाद यह पूरे देश में फैल गया यह बता पाना तो कठिन है, लेकिन शताब्दियों से यह सम्पूर्ण भारत के कोने-कोने में प्रयोग हो रहा है और अब भारत सरकार द्वारा इसे राष्ट्रीय सम्वत् मान लिये जाने पर उसके प्रसार को और भी बल मिला है। शक सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष १९११ है जो ईसाई सम्वत् १९८९-९०, विक्रम २०४६, हिज्री १४०९-१०, बुद्ध निर्वाण २५६२, महावीर निर्वाण २५१५-१६ के बराबर है।

---

१. एलेग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ५२।

२. एम० भट्टाचार्य, "ए डिक्शनरी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", कलकत्ता, १९६७, पृ० १७४।

३. पी०सी० सेन गुप्त, "ऐंशियंट इण्डियन क्रोनोलॉजी", कलकत्ता, १९४७, पृ० २२३।

आजकल पंचांग निर्माण के लिये कलि, विक्रम व शक सम्वतों की मिश्रित पद्धति का प्रयोग किया जाता है। अतः इन तीनों की गणना पद्धति के तत्वों को पृथक-पृथक रूप में इंगित कर पाना कठिन है। और इसका भी निश्चित पता नहीं लगता कि इन तीनों सम्वतों की पद्धति का यह मिश्रण अब से कितने वर्ष पहले हो गया था। आजकल हिन्दू पंचांगों में प्रयुक्त हो रही गणना पद्धति के अनुसार वर्ष की लम्बाई चन्द्रमान के अनुसार है। वर्ष को १२ महीनों में बांटा जाता है। एक माह को दो पखवाड़ों में तथा दोनों पक्षों को १३ से १५ तक तिथियों में बांटा जाता है। प्रति तीसरा वर्ष लौंद का वर्ष होता है जिसमें वर्ष की लम्बाई १३ माह होती है। महीनों का आरंभ पूर्णिमांत व अमांत दो तरीकों से किया जाता है। तथा देश के अलग-अलग स्थानों पर वर्ष का आरंभ अलग-अलग महीनों से किया जाता है। यही पद्धति सम्पूर्ण हिन्दू पंचांग में प्रयोग की जाती है। इसमें मात्र शक, विक्रम, व कलि सम्वतों के वर्तमान चालू वर्षों को लिख दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इन तीनों सम्बतों का कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता।

अभिलेखों में नये व पुराने दोनों ही शक सम्वतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। पुरालेख शास्त्र मानता है कि पश्चिम में सुराष्ट्रा के क्षत्रप, बादानी के चालुक्य, ताकक्रन्द के गांगेय, कांची के पल्लव, वनवासी के कदम्ब, मान्यकेता के राष्ट्र कूट तथा अन्य सभी बाद के छोटे-बड़े राजवंशों ने इस सम्वत् का प्रयोग अपने बहुत से शिलालेखों तथा दान सम्बन्धी ताम्रपत्रों में किया। शनैः-शनैः शक शब्द का प्रयोग युग के समानार्थ प्रयुक्त होने लगा। विभिन्न सम्वतों के साथ शक का प्रयोग हुआ। विक्रम शक हिज्री शक क्रिश्चयन शक आदि।

कुछ सिद्धान्तों के अनुसार कुषाण कालीन अभिलेख इस सम्वत् में अंकित हैं जिसमें सैकड़ों की संख्या छोड़ दी गयी है। आर०जी० भण्डारकर के अनुसार अभिलेख शक सम्वत् में दिये गये हैं, २०० हटा दिया गया है। वाऊचर का कथन है कि कनिष्क द्वारा प्रयोग किया गया सम्वत् वह था जोकि ३२२ ई० पूर्व में आरम्भ हुआ तथा जिसमें से सैंकड़े छोड़ने हैं। ल्यू-ई-ज डी-ल्यू का मत है कि कुषाण अभिलेख में शक सम्वत् का प्रयोग है लेकिन कुछ ब्रह्मी अभिलेखों में जैसे कि वर्ष १४, २० या २२ में एक सैंकड़े का अंक छोड़ दिया गया है। इन विचारकों के मतों का खण्डन करते हुये बलदेव कुमार ने यह कहा है कि—यदि हम ऊपर दिये गये सिद्धान्तों का आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो हम पाते हैं कि विभिन्न विद्वानों ने केवल गणतीय तरीके को ही खोजने का प्रयास किया है जिसमें कि कुछ सैंकड़े छोड़ दिये गये हैं। इससे वह कुषाण तिथिक्रम की पहले से ही निर्धारित तिथियों पर पहुंच जाता है। उनमें से किसी ने भी यह सिद्ध

नहीं किया है कि उस समय गणना के तरीके में सैंकड़े छोड़ दिये जाते थे। दूसरी ओर हमें ऐसे भी कई अभिलेख मिलते हैं जिनमें सैंकड़े के अंक दिये गये हैं। उदाहरणार्थ पंजतर पत्थर अभिलेख में वर्ष १२२ दिया है। तक्षशिला रजत पत्र में तिथि १३६ वर्ष लिखी है यह सिद्धांत ऐसी तिथियों की व्याख्या के लिये कोई हल नहीं देता।[1] अभिलेख के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि कनिष्क ने तिथि अंकन के लिये अपने राजकीय वर्षों का प्रयोग किया, जिसे उसके उत्तराधिकारियों ने जारी रखा। अधिकांश अभिलेखों में तिथि अंकन में शासनारूढ़ राजा का नाम, संवत्सर शब्द के बाद वर्ष की संख्या, ऋतु या मास का नाम, मास के दिन की संख्या आदि दी गयी है। कुछ अभिलेखों में नक्षत्रों के नाम भी हैं। कुछ अभिलेखों में उपाधियों के सहित राजा का नाम तिथि परक विवरण के बाद दिया गया है। तिथि अंकन की विधि आन्ध्र सातवाहनों तथा दक्षिणी-पश्चिमी भारत के शकों के अभिलेखों में अपनायी गयी विधि के समान ही है।

भारत के प्राचीन सम्वत् में शक सम्वत् ही ऐसा है जिसे खगोलशास्त्रियों व पंचांग निर्माताओं द्वारा साथ-साथ अपनाया गया। साहित्य में भी (मुख्य रूप से संस्कृत) इस सम्वत् को स्थान मिला।

भारत सरकार ने जिस शक संवत् को राष्ट्रीय संवत् के रूप में ग्रहण किया उसका स्वरूप ७८ ई० में आरम्भ होने वाले शक सम्वत् से भिन्न है। इसमें ग्रिगोरियन कलैण्डर की तिथियों के साथ स्थायी अनुरूपता स्थापित की गयी है। "ग्रिगोरियन कलैण्डर के साथ-साथ देश भर के लिये शक सम्वत् पर आधारित समान राष्ट्रीय पंचांग जिसका पहला महीना चैत्र है और सामान्य वर्ष ३६५ दिन का है, २२ मार्च १९५७ को इन सरकारी उद्देश्यों के लिये अपनाया गया: १. भारत का राजपत्र; २. आकाशवाणी के समाचार प्रसारण; ३. भारत सरकार द्वारा जारी किये गये कलैण्डर; और ४. भारत सरकार द्वारा नागरिकों को सम्बोधित पत्र। सुधरे राष्ट्रीय पंचांग और ग्रिगोरियन कलैण्डर की तिथियों में स्थाई अनुरूपता है।"[2] चैत्र सामान्य वर्ष में साधारणतया २२ मार्च को और लौंद के वर्ष में २१ मार्च को पड़ता है। शक सम्वत् के विकास के इस तीसरे चरण के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत विवरण पंचम अध्याय राष्ट्रीय पंचांग में दिया गया है।

---

१. बलदेव कुमार, "दि अर्ली कुषान्स", दिल्ली, १९७३, पृ० ६३।

२. वार्षिक संदर्भ ग्रंथ "भारत", भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, १९७९, पृ० २५।

उपरोक्त विवेचन से यह तथ्य सामने आते हैं कि १. प्रसिद्ध शक सम्वत् ७८ ई० से प्रारम्भ हुआ। २. यह उज्जयिनी से सम्बन्धित है। ३. यह कोई धर्म विशेष से सम्बन्धित धार्मिक संवत् नहीं है, बल्कि अधार्मिक सम्वत् है तथा अन्य अधार्मिक सम्वतों की भांति ही इसके आरंभ की संभावना भी राज्यारोहण विजय या किसी महत्वपूर्ण राजा के राज्यारम्भ की घटना से की जाती है। ४. इसका आरम्भकर्ता राजा शक प्रमुख या राजा था। ५. उसका नाम विक्रमादित्य नहीं था और कनिष्क तथा उत्तरी पश्चिमी भारत के कुषाण शासक या और कोई समकालीन सातवाहन राजा या और कोई भारतीय शासक का इस सम्वत् के प्रारम्भ से कोई सम्बन्ध नहीं था। इस सम्वत् का आरम्भ किसने किया? इस सम्बन्ध में जैन स्रोतों से मदद मिलती है।[1]

शक सम्वत् के सम्बन्ध में एक प्रमुख आपत्ति यह उठायी जा सकती है कि कनिष्क स्वयं कुषाण था। फिर उसके द्वारा चलाया गया सम्वत् शक सम्वत् क्यों कहलाया? इसका कारण सम्भवतः यही रहा होगा कि कनिष्क अधीन शक क्षत्रपों ने अनेक वर्षों तक इस सम्वत् का प्रयोग किया। अतः धीरे-धीरे शकों का नाम सम्वत् के साथ जुड़ गया। अपनी आरम्भिक शताब्दियों में शक नाम इस सम्वत् के साथ जुड़ा नहीं था। यह लगभग ५०० वर्ष बीतने के बाद जोड़ा गया। किन्तु यह भी अधिक विश्वनीय तथ्य नहीं लगता कि जो सम्वत् का आरम्भकर्ता था उसका नाम व जाति का नाम लुप्त हो गया। तथा उसके अधीनस्थ शासक जो मात्र सम्वत् का प्रयोग करने वाले थे उन्हीं के नाम से सम्वत् को जाना जाने लगा व नाम भी शक सम्वत् ही पड़ गया। जबकि इसकी समकालीन अन्य सम्वतों का प्रयोग विभिन्न जातियों व राजवंशों ने किया लेकिन वे आज तक भी अपने आरम्भकर्ताओं के नाम से ही जाने जाते हैं। इस प्रकार सम्वत् के नाम परिवर्तन के मूल में क्या विशेष कारण थे स्पष्ट पता नहीं चलता। इस संदर्भ में मात्र अनुमान ही लगाये जा सकते हैं।

शक सम्वत् भारतीय इतिहास का एकमात्र ऐसा सम्वत् है जिसका प्रयोग इतिहास लेखन, साहित्य, अभिलेखों के अंकन, सामाजिक व धार्मिक कृत्यों के निर्धारण, मुहूर्त निकालने, राजकीय कार्यों को पूरा करने तथा खगोलशास्त्रीय दायित्वों को पूरा करने के लिये एक साथ किया गया। राजकीय कार्यों के लिये कभी यह प्रयोग हुआ व कभी लुप्त हो गया। लेकिन धार्मिक, सामाजिक व खगोलशास्त्रीय कार्यों के लिये अपने आरम्भ से आज तक निरन्तर प्रयुक्त हो

---

१. ज्योति प्रसाद जैन, "द जैन सोर्सिज ऑफ द हिस्ट्री ऑफ एंशियेंट इंडिया", दिल्ली, १९६४, पृ० ७७।

रहा है। १९५५ में भारत सरकार द्वारा शक संवत् को राष्ट्रीय सम्वत् के रूप में ग्रहण कर लिये जाने के बाद इसका राजकीय कार्यों में प्रयोग पुनः बढ़ गया है। तथा आजकल इसका प्रयोग सम्पूर्ण भारत में राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, खगोलशास्त्रीय व पंचांग निर्माण के कार्यों के लिए किया जा रहा है। और यद्यपि कतिपय विद्वानों द्वारा शक सम्वत् पर विदेशी होने का आरोप लगाया जाता है परन्तु अब भारतवासियों द्वारा इसको इस प्रकार अंगीकार कर लिया गया है कि इसकी पद्धति के विषय में यह बता पाना कि इसमें से कौन तत्व भारत में पहले से विद्यमान थे और किन नये तत्वों व सुधारों को इसके आरम्भकर्ताओं ने दिया, सम्भव नहीं है।

कल्चुरी चेदी सम्वत्

भारत के प्राचीन इतिहास में कल्चुरी नरेशों का स्थान कई दृष्टि से वैशिष्ट्य पूर्ण है। लगभग ५५० वर्षों तक भारत के किसी न किसी प्रदेश पर उनका शासन रहा। अभिलेखों में कलत्सुरी अथवा कल्चुरी नामों से इस वंश का उल्लेख मिलता है। अतः इस वंश से संबन्धित सम्वत् का उल्लेख भी कल्चुरी सम्वत्, चेदी सम्वत् तथा त्रैकुटक सम्वत् आदि नामों से मिलता है। कल्चुरी सम्वत् के प्रचलन क्षेत्र के संबन्ध में श्री ओझा का कहना है कि—"यह सम्वत् दक्षिणी गुजरात कोंकण एवं मध्य प्रदेश के लेखादि में मिलता है। ये लेख गुजरात आदि के चालुक्य गुर्जर, सेन्द्रक, कल्चुरी और त्रैकुटक वंशियों के एवं चेदी देश पर राज्य करने वाले कल्चुरी (हैहय) वंशी राजाओं के हैं।"[1] अर्थात् इस सम्वत् का प्रचलन क्षेत्र भारत का मध्य तथा पश्चिमी भाग रहा।

कल्चुरी सम्वत् के आरम्भ के संदर्भ में दी गयी तिथियां २४८ ई० (मजूमदार), २६ अगस्त २४९ ई०, २४९ ई० = ० कल्चुरी सम्वत्, २५० ई० = १ कल्चुरी सम्वत् (कनिंघम), ५ सितम्बर सन् २४८ ई० (जायसवाल), ५ सितम्बर २४८ ई० (प्रो० कीलहोर्न) हैं। इन तिथियों में कुछ माह का ही अंतर है या ४८ अथवा ४९ ई० वर्ष है जो किसी भी सम्वत् के विषय में व्यतीत तथा चालू वर्ष लिखने के कारण दीखने लगता है वैसा ही अन्तर यह भी है। अतः २४८ ई० का वर्ष कल्चुरी सम्वत् के आरम्भ के लिये दिया गया जो उचित ही है।

कल्चुरी सम्वत का वर्तमान चालू वर्ष अज्ञात है क्योंकि यह प्रचलन में नहीं

---

१. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७३।

है और साथ ही गणना पद्धति का सही तरीका भी ज्ञात नहीं है जिससे वर्तमान प्रचलित वर्ष निकाल पाना सम्भव नहीं है।

इस सम्वत् का आरम्भकर्ता कौन था इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डा० भगवान लाल इन्द्रजी[1] ने महाक्षत्रप ईश्वरदत्त को और डा० के०ए० शास्त्री[2] ने अमीर ईश्वरदत्त को इस सम्वत् का प्रवर्तक माना है। रमेशचन्द्र मजूमदार[3] ने इसको कुशाण वंशी राजा कनिष्क का चलाया हुआ माना तथा कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव के लेखों में मिलने वाले वर्षों का कल्चुरी सम्वत् का होना अनुमान किया है। परन्तु ये सभी मत अनुमान मात्र हैं। इनके समर्थन के लिए प्रमाणिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किये जाते। भण्डारकर ने इस सम्वत् का आरम्भ तीसरी सदी ईस्वी बताया तथा कल्चुरियों को विदेशी माना। जबकि मजूमदार का विश्वास है कि कनिष्क ने २४८ ई० में त्रैकुटक-कल्चुरी-चेदी सम्वत् की स्थापना की थी। सी० मो० डफ[4] ने यह तिथि २४९ ई० प्रचलित, रविवार अगस्त २६, आश्विन सुदी प्रथम, कलि सम्वत् ३३५० दी है। कनिंघम ने कल्चुरी सम्वत् का आरम्भ (२४९ ई०=० तथा २५० ई०=१) २४९ ई० से तथा २५० ई० में प्रथम पूर्ण वर्ष माना है।[5] प्रो० कीलहोर्न ने इस सम्वत् से सम्बन्धित ७९३ से ९३४ तक के दस लेखों का परीक्षण किया तथा यह परिणाम पाया कि चेदी के प्रथम चालू वर्ष का पहला दिन आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, चैत्रादि विक्रम के ३०६ चालू वर्ष के बराबर था जोकि शक १७१ चालू तथा ५ सितम्बर, २४८ ई० के बराबर था। इस सम्वत् के माह पूर्णिमांत थे। तथा चेदी वर्ष का आरम्भ २४७-४८ ई० में हुआ।[6] पण्डित भगवद्दत्त इस सम्वत् के सम्बन्ध में एक नये

---

१. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७३।

२. वही।

३. वही।

४. सी० मोबल डफ, "द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", भाग-१ वाराणसी, १९७५ पृ० २६।

५. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ६०।

६. के०ए० नीलकंठ शास्त्री लिखते हैं : 'उस राजवंश के बारे में इससे अधिक कुछ भी नहीं मालूम कि उस वंश ने २४९-५० ई० में एक सम्वत् शुरू किया जिससे बाद में कलाचुरी (ऐसा ही) या चेदी कहा गया है', "दक्षिण भारत का इतिहास", अनु० वीरेन्द्र वर्मा, पटना, १९७२, पृ० ९८।

तथ्य का उद्घाटन करते हैं। उनके विचार से कल्चुरी व त्रैकुटक पृथक-पृथक दो सम्वत् हैं एक नहीं। "परलोकगत श्री ओझा और दूसरे लेखकों के अनुसार त्रैकुटक सम्वत् भी कल्चुरी सम्वत् है। त्रैकुटकों के सम्वत् का संवत्सर २४५ का एक लेख लिख चुका है। ध्यान रहे इस लेख का संवत्सर शब्द पाश्चात्य शकों के लेखों के अनुकरण पर लिखा गया है। हमारा विश्वास है कि कल्चुरी सम्वत् का आमीर राजाओं से कोई सम्बन्ध न था। वर्तमान लेखकों की यह कोरी कल्पना है।"[1]

उपरोक्त उद्धरणों में महाक्षत्रप ईश्वर दत्त व कुशाणवंशी राजा कनिष्क का नाम कल्चुरी सम्वत् के आरम्भकर्ता के रूप में आया है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी गुजरात तथा मध्य प्रदेश से प्राप्त लेखों के आधार पर श्री ओझा का अनुमान है: "ये लेख गुजरात आदि के चालुक्य, गुर्जर, सेंद्रक, कल्चुरी और त्रैकुटक वंशियों के एवं चेदी देश (मध्य प्रदेश के उत्तरी हिस्से)[2] पर राज्य करने वाले कल्चुरी (हैहय) वंशी राजाओं के हैं। इस सम्वत् वाले अधिकतर लेख कल्चुरियों के मिलते हैं और उन्हीं में इसका नाम कल्चुरी या चेदी सम्वत् लिखा मिलता है, जिससे यह भी सम्भव है कि यह उक्त वंश के किसी राजा ने चलाया है।"[3] इस संदर्भ में विभिन्न मतों व अभिलेखों के अध्ययन के बाद जायसवाल ने अपना मत इस प्रकार दिया है: "२४८-४९ वाले सम्वत् को, जिसका आरम्भ ५ सितम्बर सन् २४८ ई० को हुआ था, हम चेदी का वाकाटक सम्वत् कहेंगे।"[4]

विभिन्न विद्वानों के मतों के विश्लेषण के आधार पर यही उचित जान पड़ता है कि कल्चुरी वंशी किसी शासक द्वारा कल्चुरी सम्वत् का आरम्भ किया गया जैसाकि श्री ओझा का मत है। सम्वत् के नाम के साथ कल्चुरी शब्द का प्रयोग ही इस बात का साक्षी है कि यह कल्चुरी वंश से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त यदि कनिष्क को इस सम्वत् के आरम्भ के लिये उत्तरदायी मानें तब समस्या यह है कि कनिष्क के पास पहले से ही एक सम्वत् शक सम्वत् था जो गणना

---

१. रोबर्ट सीवैल द्वारा उद्धृत, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० १७९।
२. पण्डित भगवद् दत्त, "भारतवर्ष का वृहद इतिहास", दिल्ली, १९५०, पृ० १७९।
३. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १३७।
४. काशी प्रसाद जायसवाल, "भारतवर्ष का अंधकारयुगीन इतिहास", काशी, १९३२, पृ० २०५।

पद्धति में काफी उन्नत था तथा राष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार में भी आया, फिर इस नये सम्वत् का आरम्भ करने की कनिष्क को क्या आवश्यकता थी। एक शासक एक से अधिक संवतों को आरम्भ करें यह व्यावहारिक नहीं लगता और यदि कनिष्क ने किसी कारणवश ऐसा किया भी हो तब उसके नाम के साथ अपना नाम क्यों नहीं लिखा, यह बात भी समझ नहीं आती। अतः उचित यही है कि कल्चुरी वंश के किसी शासक द्वारा २४८-४६ में कल्चुरी सम्वत् की स्थापना की गयी।

कल्चुरी सम्वत् की गणना पद्धति पूर्व प्रचलित पद्धति के समान ही थी। "यह सम्वत् चन्द्रसौर पद्धति पर आधारित था, वर्ष का आरम्भ आश्विन शुदी प्रथम से होता था। इसके माह पूर्णिमंत थे।"[1]

प्रो० कीलहोर्न, ओझा व कनिंघम के लेखन से पता चलता है कि इस सम्वत् का प्रयोग अभिलेखों के अंकन के लिये हुआ, अभिलेखों में इस सम्वत् के प्रयोग के आधार पर ही इन विभिन्न विद्वानों ने कल्चुरी सम्वत् के विषय में अनेक अभिधारणाओं का प्रतिपादन किया। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि तत्कालीन पंचांगों में भी इसका प्रयोग हुआ हो। इतिहास लेखन के लिये यह सम्वत् कितना उपयोगी रहा, यह स्पष्ट नहीं। फिर भी इतना तो माना ही जा सकता है कि जिस वंश के द्वारा इस सम्वत् का आरम्भ किया गया उस वंश विशेष के इतिहास में यह महत्वपूर्ण रहा होगा और विभिन्न घटनाओं व अभिलेखों का अंकन इसमें किया गया, तभी बाद में इसके अस्तित्व को खोज पाना सम्भव हुआ।

अपने आरम्भ से लगभग सात शताब्दियों तक यह सम्वत् प्रचलन में रहा। "इस सम्वत् वाला सबसे पहला लेख कल्चुरी सम्वत् २४५ (ईस्वी सन् ४९४) का और अन्तिम ९५८ का मिला है, जिसके पीछे यह सम्वत् अस्त हो गया। इसके वर्ष बहुधा वर्तमान लिखे मिलते हैं।"[2] ७ शताब्दियों तक सम्वत् का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि व्यावहारिक रूप से यह सम्वत् उपयोगी था तथा एक बड़े भू-भाग पर जनमानस ने इसका प्रयोग किया। किन्तु इसके पश्चात् इसकी समाप्ति के क्या कारण रहे। इस सम्बन्ध में यह समझा जा सकता है कि सम्भवतः गणना पद्धति में कुछ त्रुटि आ गयी हो व उसको शोधित न किया गया

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

२ राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला, अजमेर", १९१८, पृ० १७४।

हो अथवा अन्य दूसरे सम्वतों का प्रभाव बढ़ गया हो, जैसाकि भारतीय इतिहास का यह नया मोड़ था जिसमें हिन्दू शासन की समाप्ति तथा इस्लाम धर्म के अनुयायियों का शासन आरम्भ हुआ। राजनैतिक प्रसार के साथ इस्लाम धर्म व रीति-रिवाजों का प्रभाव भी भारत में बढ़ा और यह तो निश्चित ही है कि इस्लाम के अनुयायियों ने यहां प्रचलित सम्वतों को छोड़कर राजकार्यों में अपने हिज्रा सम्वत् का प्रयोग आरम्भ किया। अतः यह सम्वत् व्यवहार से निकल गया।

गुप्त सम्वत्

गुप्त राजवंश के नाम पर इस सम्वत् का नाम गुप्त सम्वत् है। अभिलेखों में इसके लिये गुप्तकाल व गुप्त वर्ष नामों का प्रयोग हुआ है। वलभी नरेशों द्वारा भी इस सम्वत् का प्रयोग किया गया अतः यह वलभी सम्वत् भी कहलाया। किन्तु डा० फ्लीट जो इस सम्वत् को लिच्छिवीयों द्वारा आरम्भ किया गया मानते हैं, इसके गुप्त व वलभी नामों से सहमत नहीं हैं। "किसी भी प्राचीन अभिलेख में हमें कहीं भी इस बात का संकेत प्राप्त नहीं होता कि इस सम्वत् की स्थापना गुप्तों ने की थी, न ही इस बात की कोई पारिभाषिक अभिव्यक्ति मिलती है। उलझन से बचने के लिए इस सम्वत् को कुछ नाम देना आवश्यक है और इसीलिये सुविधा के लिए मैं पिछले ४० वर्षों की परम्परा के अनुसार इसे गुप्त सम्वत् कहकर पुकारूंगा और चूंकि परिवर्ती काल में काठियावाड़ में यह सम्वत् वलभी सम्वत् कहा जाने लगा अतः संदर्भ के अनुसार मैं इसे बिना भेद करते हुये कभी गुप्त संवत् कभी वलभी संवत् तथा कभी गुप्त वलभी संवत् कहूंगा।"[1]

उत्तरी भारत के काफी बड़े क्षेत्र में गुप्त संवत् प्रचलित रहा। स्वयं गुप्त नरेशों ने इसका प्रयोग किया तथा उनके सामंत राजवंशों ने भी इस संवत् का प्रयोग किया। "यह संवत् उत्तरी भारत में सौराष्ट्र से बंगाल तक ३१९ से ५५० ई० तक प्रचलित रहा, परन्तु उनके साम्राज्य के पतन के पश्चात् उनके प्रयोग वलभी के मैत्रकों तथा गुजरात व राजपूताना में किया गया यद्यपि बंगाल में इसका प्रयोग ५१० ई० में बन्द हो गया। उत्तर प्रदेश व प्राचीन मध्य प्रदेश में यह हर्ष संवत् तक चलता रहा। इसके बाद विक्रम संवत् ही उत्तरी भारत का प्रमुख संवत् बन गया।"[2] गुप्त संवत् का विस्तार क्षेत्र उत्तरी भारत था। दक्षिण भारत में यह संवत् प्रचलित नहीं हुआ।

---

१. जान फेदफुल फ्लीट, "भारतीय अभिलेख संग्रह", अनु० गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र, जयपुर, १९७४, पृ० २१।
२. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली १९५५, पृ० २५६।

गुप्त संवत् सदियों पहले प्रचलन से बाहर हो चुका है। अत अब इसके वर्तमान प्रचलित वर्ष को ठीक-ठीक बता पाना सम्भव नहीं। पी० सी० सेन गुप्त के कथन के आधार पर अनुमानित वर्तमान प्रचलित वर्ष ही निकाला जा सकता है। पी० सी० सेन गुप्त[1] ने ई० वर्ष १९४० तक गुप्त संवत् के १६२१ व्यतीत वर्ष मानें। अर्थात् ई० १९४०-३१९ गुप्त संवत् = १६२१ गुप्त संवत् के व्यतीत वर्ष। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि सेन गुप्त ने गुप्त संवत् के वर्ष की लम्बाई उतनी ही मानी है जो ईसाई संवत् के वर्ष की है। इस पद्धति के आधार पर अब तक गुप्त संवत् के १९८८—३१९ = १६६९ वर्ष व्यतीत होकर, ई० संवत् का १९८९ का यह वर्ष गुप्त संवत् का १६७०वां चालू वर्ष है। यह सम्भावित गणना ही है।

गुप्त संवत् के आरम्भिक समय व आरम्भकर्ता के सम्बन्ध में गहन विवाद है। इससे सम्बन्धित अनेक विपरीत धारणाएं प्रचलित हैं। इस संदर्भ में कुछ प्रमुख विचारकों के मत इस प्रकार हैं: अल्बेरुनी ने गुप्त वंश के विनाश के समय से गुप्त संवत् का आरंभ माना है। उनके विचार से गुप्त दुष्ट व अत्याचारी थे तथा उनके विनाश की खुशी में यह नया संवत् चलाया गया। अल्बेरुनी लिखते हैं: "गुप्त काल के विषय में लोग कहते हैं कि गुप्त दुष्ट और बलवान लोग थे। जब उनका अस्तित्व नष्ट हो गया तब यह तिथि एक संवत् के आरम्भ के रूप में प्रयुक्त हो गयी। जान पड़ता है कि बलभ (ऐसा ही) उनमें से अन्तिम था, क्योंकि, वलभ संवत् के सदृश, गुप्तों के संवत् का आरम्भ शक काल के २४१ वर्ष पश्चात् होता है।"[2] अल्बेरुनी के कथन का मुख्य तथ्य यह है कि गुप्त संवत् की स्थापना दुष्ट गुप्तों की समाप्ति के समय से हुई। यह भारतीय संवत् आरम्भ परम्परा के विपरीत है। भारत में नये संवतों का आरम्भ जन्म, सिंहासनारोहण अथवा विजय प्राप्ति के संदर्भ में किया जाता था जबकि अल्बेरुनी का कहना है कि गुप्त संवत् का आरम्भ गुप्तों के अन्तिम शासक बलभ की मृत्यु के बाद किया गया। यह भी उचित नहीं लगता कि जिन दुष्ट गुप्तों से छुटकारा पाने के उपरान्त नया संवत् चलाया गया उस संवत् का नाम अत्याचारी गुप्तों के नाम पर ही गुप्त संवत् क्यों रख दिया गया। इस प्रकार आरम्भ होने वाले संवत् का नाम विजेता के नाम पर रखा जाना चाहिये था न कि परास्त होने वाले के नाम पर। अल्बेरुनी की

---

१. पी० सी० सेन गुप्त, "एंशियेंट इण्डियन क्रोनोलोजी", बम्बई, १९६३, पृ० २७।

२. अल्बेरुनी, "अल्बेरुनी का भारत", अनु० रजनीकांत शर्मा, इलाहाबाद, १९६७, पृ० २९७।

भारतीय संवतों के संदर्भ में यह आम धारणा है कि अधिकांश भारतीय संवतों का आरम्भ उनके आरम्भकर्ता के अन्त समय से हुआ। शक व हर्ष संवतों का आरम्भ भी अल्बेरुनी इनके आरम्भकर्ताओं के अन्त समय से बताता है कि जबकि इन संवतों के विषय में हुये अनुसंधानों ने यह सिद्ध किया है कि इन संवतों का आरम्भ उन्हीं राजाओं ने किया जिनके नाम पर इनका नाम पड़ा है तथा उनके विनाश से संवत् आरम्भ नहीं किये गये हैं।

एलैग्जेण्डर कनिंघम ने गुप्त व वलभी दो अलग-अलग संवत् माने हैं। कनिंघम के विचार से १६७ ई० में गुप्त संवत् की स्थापना हुई तथा गुप्त वंश की समाप्ति पर ३१९ ई० से वलभी संवत् का आरम्भ हुआ। कनिंघम द्वारा गुप्त संवत् के आरम्भ के १६७ ई० की तिथि देने का आधार बृहस्पति का १२ वर्षीय चक्र है तथा गुप्त वंश की समाप्ति से वलभी संवत् के आरम्भ मानने का आधार अब्बु रिहा का वर्णन है।[1] डा० फ्लीट ने गुप्त संवत् को लिच्छिवीं संवत् माना है। इस विद्वान के अनुसार लिच्छिवी वंश ने संवत् की स्थापना की तथा बाद में इसे गुप्त वंश ने ग्रहण कर लिया। इस संबंध में फ्लीट का कथन इस प्रकार है :

> इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि प्रारम्भिक गुप्त शासक नेपाल में अपने लिच्छिवी सम्बन्धियों द्वारा प्रयुक्त होने वाले संवत् के स्वरूप तथा उद्भव से भली-भांति परिचित रहे होंगे। गुप्तों को ऐसे राजवंश के संवत् को अंगीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी जिसके साथ सम्बन्ध होने में वे विशेष गर्व का अनुभव करते थे। अतः मेरे विचार से सर्वाधिक सम्भावना इस बात की है कि तथाकथित गुप्त संवत् एक लिच्छिवी संवत् था जिसका प्रारम्भ या तो लिच्छिवियों के गणतंत्रात्मक अथवा गोत्रीय गणतन्त्र की समाप्ति के पश्चात् राजतंत्र के प्रतिष्ठापन के समय से हुआ अथवा जयदेव प्रथम के शासन काल के प्रारम्भ से हुआ, जिसने इस वंश की नेपाल में अवासीत एक शाखा में एक नये राजवंश की स्थापना की थी।[2]

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ५७।

२. जान फेदफुल फ्लीट, "भारतीय अभिलेख संग्रह", अनु० गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र, जयपुर, १९७४, पृ० १३४।

डा० डी० एस० त्रिवेद ने गुप्त संवत् के सम्बन्ध में नया ही सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उन्होंने गुप्त वंश का शासन काल ३२७ ई० से ८२ ई० पूर्व तक बताया है। तथा गुप्त संवत् के आरम्भ की तिथि ३०६ ई० पूर्व मानी है।[1] अपने मत की पुष्टि में डा० त्रिवेद द्वारा अनेक साक्ष्य दिये गये हैं। विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि निश्चय ही गुप्त वंश के ही किसी शक्ति सम्पन्न शासक द्वारा गुप्त संवत् की स्थापना की गयी थी। इस वर्ग के विद्वानों का यह विश्वास है कि वंश के शक्ति विनाश से नहीं, वरन् शक्ति सम्पन्नता व वंश उत्थान के समय से संवत् का आरम्भ किया गया। ये विद्वान ३१९ ई० को ही गुप्त संवत् का ० वर्ष मानते हैं तथा अधिकांश का विश्वास है कि गुप्त व वलभी दोनों नाम ३१९ ई० में आरम्भ होने वाले संवत् के ही हैं। इनमें पी० सी० सेन गुप्त, सी० मोबेल डफ, आर० सी० मजूमदार तथा डा० वासुदेव उपाध्याय प्रमुख हैं। परन्तु इस वर्ग के विचारकों की प्रमुख समस्या यह है कि गुप्त वंश की शक्ति किस शासक के समय में इतनी बड़ी थी कि वंश को अपने पृथक संवत् की आवश्यकता महसूस हुयी। इस संबंध में सर्वप्रथम मजूमदार के मत को देखा जा सकता है। जो यह मानते हैं कि गुप्त संवत् का आरम्भकर्ता गुप्त वंश का शक्तिशाली शासक समुद्र गुप्त था। "साधारणतः यह विचार किया जाता है कि गुप्त संवत् जो चन्द्रगुप्त द्वारा अपने राज्यारोहण को मनाने के लिये चलाया गया, का प्रारम्भ २६ फरवरी ३२० ई० में हुआ परन्तु इसकी सत्यता के कोई निश्चित प्रमाण नहीं हैं। साथ ही हम इस बात की सत्यता को भी नहीं नकार सकते कि गुप्त संवत् का आरम्भ समुद्रगुप्त के राज्योहरण से हुआ, जो इस वंश का संस्थापक तथा सर्वाधिक महान शासन था।"[2] डा० मजूमदार ने अपना यह मत गया व नालंदा अभिलेखों के आधार पर दिया परन्तु इन अभिलेखों की प्रमागिकता संदिग्ध है। अतः गोयल मजूमदार के मत से भी सहमत नहीं हैं :"···नालंदा व गया के ये दान पत्र विवादास्पद हैं, हमारा विश्वास है कि ये वास्तविक दान पत्र की प्रतिलिपियां हैं। यदि मजूमदार के विचारों को मान लिया जाय, तब समुद्र गुप्त का शासन ३२४ ई० के करीब था परन्तु इसकी पुष्टि नहीं होती।"[3] अपने मत के समर्थन में गोयल आगे लिखते हैं :

---

१. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० २७।

२. आर० सी० मजूमदार, "गुप्तएरा : द क्लासीकल एज", भारतीय विद्या भवन ग्रंथ माला, बम्बई, १९५३, पृ० ४।

३. एस आर० गोयल, "ए हिस्ट्री ऑफ दि इम्पीरियल गुप्ताज", इलाहाबाद, १९६७, पृ० १०५।

यह बात सिद्ध नहीं होती कि समुद्रगुप्त ३२४ ई० में शासन कर रहा था। यह बात प्राय: स्वीकार्य नहीं है कि जब यह दान दिया गया तो उस समय चन्द्रगुप्त इतनी आयु का रहा होगा कि शासन कार्यों में भाग लेता हो, क्योंकि उसमें उसका भी नाम है। यदि चन्द्रगुप्त को उस समय शासन कार्यों में हस्तक्षेप करने योग्य मान लिया जाय तो वह २० वर्ष से कम न रहा होगा जबकि चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७५ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ तथा ४१३ ई० में उसका स्वर्गवास हुआ तथा ३०४ ई० में जन्म हुआ। ये तिथियां असंगत सी लगती हैं। अतः यह स्वीकार करना होगा कि नालंदा दान पत्र की तिथियां समुद्रगुप्त के क्षेत्रीय वर्ष की तिथियां हैं न कि गुप्त संवत् की तिथियां। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त ने अपने शासन काल के आरम्भ में गुप्त संवत् का प्रयोग नहीं किया।[1]

आर० एस० गोयल ने ३१९ ई० को ही गुप्त संवत् के आरम्भ का वर्ष माना है।[2]

सर्वाधिक मान्य विचार चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा गुप्त संवत् की स्थापना का है। ऐसा माना जाता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम अपने वंश का प्रथम शासक था जिसने स्वतन्त्र गुप्त साम्राज्य की नींव डाली तथा महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। सम्भवत: इसी ने अपने राज्यारोहण के समय गुप्त संवत् की स्थापना की। इसकी पुष्टि में उदय नारायण राय[3] व बी० एन० लूनिया[4] द्वारा इस सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष इस प्रकार दिये गये हैं : (१) अल्बेरुनी के वर्णन के अनुसार गुप्त संवत् शक संवत् के २४१ वर्ष बाद अर्थात् ७८+२४१=३१९ ई० में आरम्भ हुआ। (२) खोह अभिलेख की तिथि १५६ गुप्त संवत् है। इसी अभिलेख के अनुसार उस वर्ष महावैशाख संवत्सर था। वाराह मिहिर की गणना के अनुसार शक संवत् ३९७ में महावैशाख संवत्सर पड़ता है। इस गणना के अनुसार शक संवत् ३९७ तथा गुप्त संवत् १५६ एक ही वर्ष में पड़े। अतः दोनों में ३९७—१५६=२४१ वर्षों का अन्तर है। इससे भी अल्बेरुनी के कथन

---

१. एस० आर० गोयल, "ए हिस्ट्री आफ दि इम्पीरियल गुप्ताज", इलाहाबाद, १९६७, पृ० १०६-०७।

२. वही, पृ० ४०३।

३. उदय नारायण राय, "गुप्त राजवंश तथा उसका युग", इलाहाबाद, १९७७, पृ० ६२८-३०।

४. बी० एन० लूनिया, "गुप्त साम्राज्य का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास", इन्दौर, १९७४, पृ० १२७-३०।

की पुष्टि होती है तथा गुप्त संवत् के आरम्भ की तिथि ३१९ ई० आती है। (३) मोरवी की ताम्रपत्र तिथि ५८५ गुप्त संवत् है। इसी वर्ष फाल्गुन सुदी पंचमी में सूर्य ग्रहण पड़ा था अतः संवत् की तिथि ९०५—५८५=३२० ई० सिद्ध होती है। (४) तेजपुर शिलालेख में कामरूप के शासक हज्जर वर्मन के शासक की तिथि गुप्त संवत् ५१० उत्कीर्ण है। कामरूप के शासकों का क्रम इस प्रकार हैं—भास्कर वर्मा, शालस्तम्भ, इसके बाद नवीं पीढ़ी में हज्जर वर्मन भास्कर वर्मा हर्ष का समकालीन था। इसकी मृत्यु लगभग ६५० ई० में हुई। भास्कर वर्मा और हज्जर वर्मा के बीच ९ पीढ़ियां आयीं। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिए लगभग २० वर्ष का काल मान लिया जाये तो ९ पीढ़ियों का काल १८० वर्ष हुआ। अतः हज्जर वर्मन का काल ६५०+१८०=८३० ई० हुआ। हज्जर वर्मन का लेख ५१० गुप्त संवत् का है। अतः गुप्त संवत् की स्थापना लगभग ८३०—५१०=३२० ई० में हुयी होगी। (५) जिनसेन नामक जैनाचार्य ने ७०५ शक संवत् में हरिवंश पुराण की रचना की। यह ७०५+७८=७८३ ई० में हुई। इस ग्रंथ में लिखा है कि भट्टवाण कुल के लोग २४० वर्ष तक राज्य करेंगे तथा उसके बाद २३१ वर्ष तक गुप्त वंश के लोग राज्य करेंगे। इस प्रकार गुप्त वंश के संवत् की स्थापना का काल ७८३—२३१—२४०=३१२ ई० बैठता है। परन्तु विद्वानों का अनुमान है कि गुप्त वंश ने २२४ वर्ष राज्य किया न कि २३१ वर्ष, जैसाकि हरिवंश पुराण में लिखा है। यदि हरिवंश पुराण की यह ७ वर्ष की भूल सुधार ली जाये तो फिर गुप्त संवत् की तिथि ३१९ ई० होगी। (६) जैनाचार्य वृषभ द्वारा लिखित, **तिलोम पण्णति** नामक ग्रंथ के अनुसार गुप्तों का उदय भट्ट बाणों के २४० या २४१ वर्ष पश्चात् हुआ। भट्टवाणों का समीकरण शकों से किया गया है। इस प्रकार गुप्तों का उदय २४१+७८=३१९ ई० में हुआ। यही गुप्त संवत् के आरम्भ की तिथि है। (७) मालव के मन्दसौर अभिलेख में मालव संवत् व विक्रम सम्वत् को एक ही माना गया है। इस प्रकार ये दो तिथियां ४९३—५७=४३६ ई० तथा ५२९—५७=४७२ ई० हुयी। मन्दसौर अभिलेख से यह भी विदित होता है कि कुमार गुप्त प्रथम के शासन काल में ११७ गुप्त संवत् में एक सूर्य मंदिर का निर्माण हुआ। उसी अभिलेख के दूसरे भाग में यह भी कहा गया है कि कुमार गुप्त द्वितीय के शासनकाल में ही १५३ गुप्त संवत् में उस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम मान लें कि गुप्त संवत् की स्थापना ३१९ ई० में हुयी तो मन्दसौर की कुमार गुप्त प्रथम की गुप्त संवत् की तिथि ११७+३१९=४३६ ई० हो जाती है। यह मन्दसौर अभिलेख में दी गयी मालव संवत् की तिथि ४९३—५७=४३६ ई० आती है जिसमें सूर्य मंदिर निर्माण की तिथि ११७ गुप्त संवत् घटाने पर ३१९ ई० तिथि आती है जो दूसरे साक्ष्यों से पुष्ट है। चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा

३१९ ई० में गुप्त संवत् की स्थापना की पुष्टि और भी बहुत से विद्वानों ने की है। उदाहरणार्थ: डफ के अनुसार "३१९ रविवार, ८ मार्च विक्रम संवत् ३७५ चैत्र शुदी प्रथम गुप्त अथवा वलभी संवत् का आरम्भ हुआ। इसकी तिथि चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण से आरम्भ होती है।"[1] डा० वासुदेव का मत है :

> गुप्तों के तीसरे राजा प्रथम चन्द्रगुप्त ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया तथा इसी ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। बहुत सम्भव है कि सिंहासनारूढ़ होने पर इसने यह पद्वी धारण की तथा उसी के उपलक्ष्य में अपने नाम के साथ गुप्त संवत् की स्थापना की।···यह निःसन्देह है कि गुप्त संवत् या गुप्त काल संवत्सर का प्रारम्भ ई० सन् ३१९-२० से हुआ। इसी में समस्त गुप्त लेखों तथा समकालीन प्रशस्तियों की तिथियां दी गयी हैं। यह संवत लगभग ६०० वर्ष तक प्रचलित रहा और गुप्त वंश के नष्ट हो जाने पर काठियावाड़ में वलभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2]

श्री गुप्त का पुत्र घटोत्कच गुप्त तथा उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने वीरतापूर्ण कृत्यों द्वारा गुप्त साम्राज्य का विस्तार किया तथा अपने राज्य के भावी उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। उसने लिच्छिवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया तथा ३२० ई० में अपने राज्यारोहण की तिथि से गुप्त संवत् प्रारम्भ किया। उसके राज्य के अन्तर्गत बिहार का एक बड़ा भाग और सम्भवतः उत्तर प्रदेश व बंगाल का कुछ हिस्सा शामिल था।[3]

पी० सी० सेन गुप्त ने खगोल शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न भारतीय संवतों का आरम्भ बिन्दु निर्धारित किया है। गुप्त संवत् के विषय में उनका विचार है कि इसका आरम्भ "शक संवत् २४१ तथा ३१९-२० ई० के समान हैं। हम यह मानते हैं कि गुप्त संवत् १ जनवरी ३१९ ई० से पहले की शीत संक्रान्ति को आरम्भ हुआ। १९४० ई० तक गुप्त संवत् के बीते हुये वर्ष

---

१. सी० मोबेल डफ, "क्रोनोलोजी ऑफ इण्डिया", भाग १, वाराणसी, १९७५, पृ० २७।

२. वासुदेव उपाध्याय, "गुप्त अभिलेख", पटना, १९७४, पृ० १०७।

३. राज कुमार शर्मा, "मध्य प्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रंथ", भोपाल, १९७४, पृ० २९-३०।

१६२१ हैं।"[1] इसके आगे सेन गुप्त ने सूर्य की देशान्तर रेखांश पूर्वगमिता, संक्रान्ति तथा ग्रहणों आदि तथ्यों का विश्लेषण कर गुप्त संवत् के संदर्भ में कुछ निष्कर्ष इस प्रकार दिये हैं:[2] (१) हमने १२ या ११ ठोस कथनों (जोकि अभिलेखों में मिलते हैं तथा जिनमें गुप्त या वलभी संवत् का प्रयोग किया गया है) के आधार पर पाया है कि गुप्त या वलभी संवत् एक ही संवत् के दो नाम हैं। (२) यह भी सम्भव है कि चर्चित संवत् का आरम्भ गुप्त राजाओं ने किया तथा गुप्तों के जागीरदार वलभी राजकुमारों ने इसे नया नाम दिया। (३) गुप्त संवत् २० दिसम्बर ३१८ ए० डी० से आरम्भ हुआ उसी वर्ष शीत संक्रान्ति से संवत् ० वर्ष आरम्भ हुआ। (४) गुप्त संवत् क्रिश्चयन संवत् से ३१६ ई० से लेकर ४६६ ई० तक मिलता है जो आर्य भट्ट प्रथम की तिथि है। इस तिथि तक वर्ष की गणना पौष के शुक्त पक्ष से प्रारम्भ होती है। (५) किसी वर्ष से जो ४६६ ई० के बाद विभिन्न इलाकों में भिन्न था वर्ष का आरम्भ पौष के शुक्ल पक्ष से आगे बढ़ा दी गयी थी या शीत संक्रान्ति के दिन को चैत्र के शुक्ल पक्ष तक बढ़ा दिया गया था। यह आर्यभट्ट प्रथम के नियमानुसार जिसके अनुसार वर्ष का आरम्भ वरनल इक्यूनोक्स दिन से होना चाहिये, के अनुसार था। निष्कर्ष के लिये गुप्त संवत् का ० वर्ष ३१६ ई० के समान ही था। ४६६ ई० के पश्चात् इस संवत् को कुछ स्थितियों में ३१६-२० ई० के समकक्ष मान लिया गया। गुप्त व वलभी संवत् एक ही हैं। ऐसी आशा की जाती है कि इस संवत् से सम्बन्धित आगे की भविष्यवाणियां या परिकल्पनाएं स्वीकार्य नहीं होंगी।

गुप्त संवत् की गणना पद्धति शक व विक्रम की मिश्रित पद्धति है। "गुप्त संवत् का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल १ से होता है और महीने पूर्णिमांत हैं। इस संवत् के वर्ष बहुधागत लिखे मिलते हैं और जहां वर्तमान लिखा रहता है वहां एक वर्ष अधिक लिखा रहता है।"[3] एक वर्ष में १२ माह होते थे तथा एक माह में दो पक्ष होते थे। गुप्त संवत् का प्रयोग गुप्त वंशी नरेशों द्वारा सिक्कों व अभिलेखों के अंकन के लिये प्रचुर मात्रा में किया गया। गुप्त नरेशों के इस संवत् में अंकित बड़ी मात्रा में अभिलेख उपलब्ध हुये हैं। जिनसे इस वंश के इतिहास को तथा

---

१. पी० सी० सेन गुप्त, "एंशियेंट इण्डियन क्रोनोलॉजी", कलकत्ता, १९४७, पृ० २४५।

२. वही, पृ० २६१-६२।

३. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १७५।

समकालीन वंशों व परिस्थितियों को समझने में सहायता मिली है। गुप्त संवत् के नियमित प्रयोग से भारतीय इतिहास के तिथिक्रम निर्धारण में भी महत्वपूर्ण सहायता मिली है।

गुप्त संवत् में अंकित नियमित अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल से प्राप्त होते हैं। इससे पूर्व के शासकों के अभिलेख उपलब्ध नहीं हैं। गुप्त संवतों से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण अभिलेख इस प्रकार हैं: (१) द्वितीय चन्द्रगुप्त का उदयगिरी गुहालेख—गुप्त संवत् ८२, ई० संवत् ४०१ (२) प्रथम कुमार गुप्त का दामोदर पुर ताम्र लेख—गुप्त संवत् १२४, ई० संवत् ४४४ (३) बुद्ध गुप्त का एरण स्तम्भ लेख—गुप्त संवत् १६५, ई० संवत् ४८४ (४) भानुगुप्तकालीन एरण का स्तम्भ अभिलेख—गुप्त संवत् १९१, ई० संवत ५१०। इनके अतिरिक्त और बहुत से अभिलेख हैं जिनकी तिथियां इसी प्रकार गुप्त संवत् में दी गयी हैं। बड़ी संख्या में प्राप्त ये गुप्त अभिलेख अपनी कुछ विशिष्टताएं रखते हैं: प्रथम, इन अभिलेखों में हूणों द्वारा अनुष्ठित अभिलेखों के अतिरिक्त अनवरत संवत् का प्रयोग किया गया है। प्रारम्भिक वर्षों में गुप्त संवत् नाम संवत् के साथ नहीं लगा है। दूसरे, कभी-कभी नियमित संवत् के साथ-साथ शासन करने वाले राजा का शासन वर्ष भी दिया गया है। तीसरे, तिथि अंकन के समय संवत्सर, ऋतु, पक्ष, तिथि तथा कभी-कभी नक्षत्र भी दिया गया है। चौथे, प्रशस्ति व समर्पण अभिलेखों में तिथि अंकन काव्यात्मक तथा सविस्तार है। किन्तु ताम्रपत्र लेखों में यह संक्षिप्त, सरल तथा गद्यमय है। पांचवें, भारतीय तिथि अंकन पद्धति के अन्य विवरणों के साथ हूण आक्रान्ता तोरमाण और मिहिरकुल अपने-अपने शासन संवत्सरों का प्रयोग किया करते थे। "स्कन्दगुप्त कालीन जूनागढ़ के शिलालेख से पता चलता है कि गुप्त नरेश तिथियों की गणना अपने वंश संवत् में ही करते थे। इस अभिलेख में गुप्त संवत् को गुप्त प्रकाल कहा गया है। इसके अन्तर इस संवत् के नाम का पुन: उल्लेख कुमार गुप्त द्वितीय कालीन सारनाथ के बौद्ध प्रतिमा लेख में हुआ है।"[१] गुप्त नरेशों के अपने अभिलेखों में अपने वंश के संवत् का ही प्रयोग किया इसका समर्थन डा० वासुदेव[२] ने भी किया है। तथा ऐसा ही साक्ष्य राखाल दास वंधोपाध्याय[3] भी देते हैं। अत: कहा जा सकता है

१. उदय नारायण राय, "गुप्त राजवंश तथा उसका युग", इलाहाबाद, १९७७, पृ० ६२८।

२. वासुदेव उपाध्याय, "प्राचीन भारतीय अभिलेख", पटना, १९७०, (द्वितीय संस्करण), पृ० ३०७।

३. राखलदास वंधोपाध्याय, "गुप्त युग", वाराणसी, १९७०, पृ० १९७।

कि इस प्रकार के पर्याप्त अभिलेखीय साक्ष्य हैं जो गुप्त संवत् का ३१९ ई० में चन्द्रगुप्त द्वारा आरम्भ किये जाने की पुष्टि करते हैं।

अल्बेरूनी ने[1] यद्यपि गुप्त व वलभी दो अलग-अलग संवतों का उल्लेख किया है। १८वीं सदी ई० के विद्वान कनिंघम[2] ने भी गुप्त व वलभी नाम के दो संवत् माने परन्तु इस संदर्भ में हुयी खोजों के आधार पर अब विद्वान गुप्त व वलभी संवत् को एक ही मानते हैं। ओझा का मत है :

> अल्बेरूनी ने वलभी संवत् को वलभीपुर के राजा वलभ का चलाया हुआ माना है और उक्त राजा को गुप्तवंश का अन्तिम राजा बतलाया है, परन्तु ये दोनों कथन ठीक नहीं हैं क्योंकि उक्त संवत् के साथ जुड़ा हुआ वलभी नाम उक्त नगर का सूचक है न कि वहां के राजा का, और न गुप्त वश का अन्तिम राजा बलभ था। सम्भव है कि गुप्त संवत् के प्रारम्भ से ७०० से अधिक वर्ष पीछे के लेखक अल्बेरूनी को वलभी संवत् कहलाने का ठीक-ठीक हाल मालूम न होने के कारण उसने ऐसा लिख दिया हो अथवा उसको लोगों ने ऐसा ही कहा हो।[3]

सी० मोबेल डफ[4] ने भी गुप्त व वलभी संवत् एक ही थे, इसी मत का समर्थन किया है।

गुप्त संवत् के संदर्भ में अभिलेखों व विभिन्न साक्ष्यों के विस्तृत विवेचन के बाद कुछ निष्कर्ष इस प्रकार दिये जा सकते हैं : (१) गुप्त संवत् के वर्ष का आरम्भ चैत्र से होता है। (२) गुप्त तथा वलभी संवत् एक ही हैं। (३) वलभी या गुप्त संवत् शक संवत् से २४१ वर्ष बाद आरम्भ होता है। (४) गुप्त संवत् का विस्तार क्षेत्र उत्तरी भारत ही रहा। दक्षिण में इसका प्रचलन नहीं हुआ। (५) गुप्त संवत् के प्रचलन का समय गुप्त नरेशों का शासन काल रहा। इसके कुछ समय पश्चात् यह लुप्त हो गया।

---

१. अल्बेरूनी, "अल्बेरूनी का भारत", अनु० रजनीकांत, इलाहाबाद, १९६७, पृ० २९७।
२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ५७।
३. राय बहादुर पण्डित गौर शंकरी हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १७५।
४. सी० मोबेल डफ, "क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", भाग-१, वाराणसी, १९७५, पृ० २७।

अमली संवत्

इस संवत् को अमली संवत् अथवा कटकी संवत् नामों से जाना जाता है। इस संवत् का नाम अमली किस कारण पड़ा, स्पष्ट नहीं है। इसका प्रचलन उड़ीसा में रहा।[1] कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट में इस संवत् के आरम्भ के लिये निश्चित रूप से मान्य ५९२ ई० वर्ष दिया गया है।[2] अमली संवत् का १९५४ ई० में १३६२ प्रचलित वर्ष था।[3] अर्थात् १९५४—१३६२=५९२ ई०। अतः ई० ५९२ से आरम्भ होकर ई० १९५४ तक अमली संवत् के उतने ही वर्ष व्यतीत हुये, जितने ईसाई संवत् के। इससे स्पष्ट है कि अमली संवत् के वर्ष की लम्बाई ईसाई संवत् के वर्ष के बराबर है। अत १९५४ से अब १९८९ तक अमली संवत् के भी ३५ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अतः अमली संवत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष १३६२+३५=१३९७ है।

उड़ीसा के राजा इन्द्रद्युम्न को अमली सम्वत् का आरम्भकर्ता समझा जाता है। "इस संवत् के संदर्भ में माना जाता है कि इसका आरम्भ उड़ीसा के राजा इन्द्रद्युम्न के जन्म पर भाद्रपद शुक्ल १२ से हुआ तथा प्रत्येक माह का आरम्भ सूर्य की नयी संक्रान्ति में प्रवेश के साथ होता है। अमली संवत् का प्रयोग उड़ीसा में व्यावसायिक कार्यों को पूरा करने के लिये तथा न्यायालयों में कानून सम्बन्धी कार्यों के लिये होता था।"[4]

अमली संवत् के माह, वर्ष और गणना पर ही आधारित है। संक्रान्ति से संक्रान्ति तक माह की गणना की व्यवस्था रही तथा वर्ष भी पूर्ण सौर वर्ष के बराबर है जिससे इसका वर्ष ईसाई संवत् के समान है। रोबर्ट सी० वैल के कथन से विदित है कि अमली संवत् का प्रयोग व्यावसायिक व न्यायिक कार्यों के लिये होता था। सम्भव है बाद में यह प्रयोग मात्र धार्मिक कार्यों तक ही सीमित रह गया हो।

विलायती सम्वत्

विलायती नाम सुनने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह संवत् विदेशी है जिसे भारतीयों ने ग्रहण कर लिया। परन्तु, कलैण्डर रिफोर्म कमेटी ने इसे भारतीय

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।
२. वही।
३. वही।
४. रोबर्ट सीवैल, "दि इण्डिलन कलैण्डर", लन्दन, १८९२, पृ० ४३।

संवतों की श्रेणी में ही रखा है। अतः स्पष्ट नहीं है कि इस संवत् का आरम्भ भारत में ही किया गया अथवा बाहर से इसे लाया गया। यदि भारत में ही इसे आरम्भ किया गया तब इसका नाम विलायती क्यों रखा गया ?

अमली संवत् के समान ही १९५४ ई० में इसका भी प्रचलित वर्ष १३६२ था। अतः १९५४—१३६२=५९२ ई० का वर्ष इसका प्रथम वर्ष माना जा सकता है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से बंगाल और उड़ीसा में हुआ। इसके महीनों के नाम चन्द्रीय महीनों के नाम के समान हैं तथा इसका आरम्भ बंगाल सन् के करीब ही है। लेकिन दो बातों में यह बंगाली सन् से भिन्न है : प्रथम, "इसके वर्ष का आरम्भ सौर माह कन्या से होता है जोकि बंगाल सन् के आश्विन के समान है। दूसरा, इसके माह का आरम्भ दूसरे और तीसरे दिन के बजाय संक्रान्ति से होता है।"[1]

स्पष्ट है कि विलायती संवत् अमली संवत् का समकालीन था। दोनों की गणना पद्धतियां भी परस्पर मेल खाती हैं। दोनों ही के० वर्ष का आरम्भ ५९२ ई० संवत् से होता है तथा उड़ीसा व बंगाल इनके प्रचलन के मुख्य क्षेत्र थे। ये चन्द्रसौर पद्धति पर आधारित थे। इसका कोई पता नहीं चलता कि इस प्रकार समान गणना पद्धतियों वाले एक ही समय में एक ही क्षेत्र में दो संवतों को प्रचलित करने का क्या कारण था ? अथवा इनकी उपयोगिता में क्या कोई भिन्नता थी जो इन्हें आरम्भ किया गया ? विलायती संवत् की गणना बंगाल के फसली सन् से भी काफी मेल खाती है। विलायती संवत् के मास सौर हैं और महीनों के नाम चैत्रादि नामों से हैं। इसका प्रारम्भ सौर अश्विन अर्थात् कन्या संक्रान्ति से होता है और जिस दिन संक्रान्ति का प्रवेश होता है उसी को मास का पहला दिन मानते हैं। इस सन् में ५९२-९३ जोड़ने से ई० सन् और ६४९-५० जोड़ने से विक्रम संवत् बनता है।

फसली सम्वत्

फसल सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने के उद्देश्य से इस संवत् का आरम्भ हुआ और इसी कारण इसका नाम भी फसली संवत् रखा गया। सौर फसली व लूनीसोलर फसली तथा दक्षिणी फसली व मद्रास फसली दो प्रकार से फसली संवत् का वर्गीकरण किया जाता है। क्षेत्रीय प्रसार के दृष्टिकोण से शक व विक्रम संवतों के बाद फसली संवत् का नाम लिया जा सकता है। इसका प्रचलन उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम में लगभग सम्पूर्ण भारत में हुआ। परन्तु ऐसा

---

१. रोबर्ट सीवैल, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४३।

समझा जाता है कि देश के एक बड़े भू-खण्ड पर फसली संवत् का प्रचलन होने पर इसका प्रसार प्रशासनिक ही रहा, यह जनमानस का संवत् नहीं बन पाया। फसली सन् सम्पूर्ण भारत में एक साथ नहीं अपनाया गया वरन् इसका प्रसार शनैः शनैः हुआ। "पहले इस सन् का प्रचार पंजाब और संयुक्त प्रदेश में हुआ और पीछे से जब बंगाल आदि क्षेत्र अकबर के राज्य में मिले तब से वहां भी इसका प्रचार हुआ। दक्षिण में इसका प्रचार शाहजहां बादशाह के समय में हुआ। ओझा के समय (१९१८ तक) यह सन् कुछ-कुछ प्रचलित था। परन्तु भिन्न-भिन्न हिस्सों में इसकी गणना में अंतर रहा। पंजाब, संयुक्त प्रदेश, तथा बंगाल में इसका प्रारम्भ आश्विन कृष्ण एक (पूर्णिमांत) से माना जाता है जिससे इसमें ५९२-९३ मिलाने से ई० सन् और ६४९-५० मिलाने से विक्रम संवत ही बनता है।"[1] विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग समय में फसली पंचांग में सुधार किये जाते रहे। "मद्रास इहाते में इस सन् का पहिले तो आडि (कर्क) संक्रान्ति से वर्ष आरम्भ होता रहा परन्तु ई० सन् १८०० के आसपास के तारीख १३ जौलाई से माना जाने लगा और ई० स० १८५५ से तारीख एक जौलाई प्रारम्भ स्थिर किया गया है। दक्षिण के फसली सन् में ५९०-९१ जोड़ने से ई० सन् और ६४७-४८ जोड़ने से विक्रम संवत् बनता है।"[2] जेम्स प्रिसेप ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित फसली पंचांगों को प्रकाशित किया था। दक्षिण फसली संवत् का आरम्भ शाहजहां द्वारा १६३६ ई० में किया गया। "फसली संवत् एक प्रकार का मिश्रित संवत् है जिसके ९६३ वर्ष हिज्री के चन्द्रीय में (चन्द्रमान में) पड़ते हैं तथा इसके बाद के वर्ष सूर्यमान में पड़ते हैं।"[3] इस प्रकार फसली संवत् के विभिन्न आरम्भ तथा इसके वर्ष के भी विभिन्न आरम्भ बिन्दुओं का उल्लेख मिलता है। इस संदर्भ में डा० त्रिवेद का कथन उचित ही जान पड़ता है : "निश्चय ही इस संवत् के आरम्भ की तिथि ५९२-९३ ई० के आसपास रही होगी तथा विभिन्न समयों पर अलग-अलग अवसरों पर इसकी पद्धति में अंतर आते रहे होंगे अथवा विभिन्न क्षेत्रों में पृथक रूप में इसे ग्रहण करते समय कुछ परिवर्तन के साथ संवत् का आरम्भ ० वर्ष से किया गया होगा।"[4]

---

१. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १९२।

२. वही।

३. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ८२।

४. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ४३।

फसली संवत् को ग्रहण करने का मुख्य कारण इस्लाम पंचांग का पूर्ण रूप से चन्द्रीय होना माना जा सकता है। भारत में मुस्लिम शासन के समय हिज्री सन् राजकीय सन् था, परन्तु उसका वर्ष पूर्ण चन्द्रीय होने के कारण सौर वर्ष से वह लगभग ११ दिन छोटा था। इससे फसलों व वर्षों के तालमेल में कठिनाई आती थी। लगान का माह निश्चित नहीं हो पाता था। अतः दोनों फसलों (रबी और खरीफ़) का लगान नियत महीने में लेने के उद्देश्य से बादशाह अकबर ने हिज्री सन् ९७७ (ई० संवत १५६३) से फसली सन् आरम्भ किया। इसी से इसका नाम फसली सन् पड़ा। अतः किसानों की सुविधा के लिये व लगान निश्चित क्रम में वसूली के लिये इस संवत् का आरम्भ हुआ।

डा० डी० एस० त्रिवेद ने फसली सन् का आरम्भ हर्ष के जन्म से माना है। "फसली संवत् का आरम्भ हर्षवर्धन के जन्म के समय हुआ। इसकी तिथि ५९३ ई० अथवा ५१५ शक संवत् है। भारत के विभिन्न स्थानों पर इसे अपनाये जाने के विभिन्न कारण हैं।"[1] कलैण्डर सुधार समिति के अनुसार—"१९५४ ई० में बंगाल में प्रचलित फसली संवत का १३६२वां वर्ष चालू था जोकि १३ सितम्बर भाद्र कन्यादि प्रथम से आरम्भ हुआ तथा यह पूर्णिमांत है। दक्षिण फसली का १३६४वां वर्ष था जो एक जौलाई से आरम्भ हुआ। बम्बई में प्रचलित फसली संवत का १३६४वां वर्ष चालू था जो ८ जून से सूर्य के माघ नक्षत्र में प्रवेश के साथ आरम्भ हुआ।"[2] कनिंघम ने फसली संवत् का आरम्भ मुगल बादशाह अकबर के समय से माना है: "फसली संवत् का आरम्भ अकबर की नई धारणाओं को स्थापित करने की प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। इसका आरम्भ अकबर के राज्यारोहण की तिथि से माना जाना चाहिये अथवा हिज्री वर्ष ९६३ में द्वितीय रबी-उस-सनी से लगाना चाहिये या १४ फरवरी १५५६ ई० से।"[3]

१५५६ ई० में अकबर द्वारा ग्रहण किये गये फसली संवत् की यह विशिष्टिता थी कि इसको पूर्ण रूप से सौर पंचांग के रूप में परिवर्तित कर दिया गया जबकि

---

१. (अ) डी० एस० त्रिवेद, 'फसली एरा', "जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", वोल्यूम १९, कलकत्ता, पृ० २९२-३०१।
   (ब) डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३४।
२. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।
३. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ८२।

इससे पूर्व यह संवत् चन्द्रीय पद्धति पर आधारित था। संवत् का उद्देश्य पूर्ववत् ही रहा, फसल सम्बन्धी कार्यों को पूरा करना।

निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि फसली संवत् का आरम्भ ५९२ ई० के आसपास हुआ जैसाकि कलैण्डर रिफोर्म कमेटी का निर्णय तथा डा० डी० एस० त्रिवेद का मत है। विभिन्न अवसरों पर इसकी पद्धति में अन्तर आते रहे तथा विभिन्न क्षेत्रों में पृथक रूप से इसे ग्रहण करते समय कुछ परिवर्तन के साथ संवत् का आरम्भ ० वर्ष से किया गया और बाद में जिन-जिन शासकों ने इसको अपनाया व प्रयोग किया उनका नाम भी इसके साथ जुड़ता चला गया। इस प्रकार नाम के जुड़ जाने का कारण इन शासकों द्वारा इस संवत् में किये गये कुछ सुधारों का किया जाना भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त एक वजह यह भी हो सकती है कि संवत् का अपना कोई विशिष्ट नाम नहीं था। अतः फसल से सम्बन्धित कार्यों को पूरा करने के लिये जिस भी शासक ने इसको किसानों अथवा लेखा-जोखा रखने के कार्य में प्रयोग किया उसका नाम ही संवत् के सम्बोधन के लिये लिखा जाने लगा।

फसली संवत् की गणना पद्धति एक शहस्त्राब्दी के करीब चन्द्रीय रही। उसके बाद इसके लिये सौर पद्धति का ग्रहण कर लिया गया। इसका नाम इस्लाम के स्रोतों से लिया गया था परन्तु इसका वर्ष हिन्दू पद्धति पर आधारित था। देश के विभिन्न स्थानों पर इसके वर्ष का आरम्भ अलग-अलग समय पर किया जाता रहा। बंगाल सन् हिन्दुओं के वैशाख की पहली तिथि को आरम्भ होता है, उत्तरी भारत का फसली सन् चान्द्रिक आश्विन की पहली तिथि को आरम्भ होता है। इस प्रकार फसली संवत् के विभिन्न आरम्भ वर्षों व उसके वर्षारम्भ के विभिन्न महीनों का उल्लेख मिलता है जैसाकि शक संवत् के वर्ष के सम्बन्ध में पाया जाता है।

रोबर्ट सीवैल ने फसली संवत् की गणना पद्धति की विशिष्टिता बताते हुए लिखा है: "इसकी विशिष्टिता यह है कि इसके महीनों को शुक्ल पक्ष व कृष्ण पक्ष में नहीं बांटा गया है। इसका सम्पूर्ण ढांचा बग़ैर पक्ष के बंटवारे के ही चलता है। तिथियां बढ़ाई नहीं जातीं। विलायती वर्ष के समान ही इसका आरम्भ है। यह पूर्ण चन्द्र से आरम्भ होता है।"[1]

बंगाल में प्रचलित तथा दक्षिण भारत में प्रचलित फसली पंचांगों में दो वर्ष का अन्तर रहता है। दूसरे सभी चन्द्रसौर संवतों की भांति फसली सन् भी

---

१. रोबर्ट सीवैल, "इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४४।

अगले सौर सन् के नम्बर लेता है। इस तरह से १६०० ए०डी० जैसाकि हमने देखा है वह प्रचलित बंगाल सेन में १३०७ है। लेकिन चन्द्रसौर फसली आश्विन कृष्ण प्रतिपदा जो १६०० ए०डी० से आरम्भ होता है वह बंगाल सन् का अगला नंबर लेता है जो वर्तमान में १३०८ है। इस तरह बंगाल फसली संवत् प्राप्त करने का नियम यह है : "वर्तमान ई० वर्ष में से ५६२ घटाने पर फसली वर्ष प्राप्त होगा।"[1] दक्षिणी फसली सन् १५५६ तक एक हिज्रा वर्ष के अनुसार था। इसके पश्चात् इसे सौर वर्ष मान लिया गया। सूर्य के मार्गशीर्ष नक्षत्र में प्रवेश के साथ वर्ष आरम्भ होता है। अर्थात् बम्बई में ७ या ८ जून से वर्ष आरम्भ होता है। महीने, उनके आरम्भ का समय व दिन भी वही हैं जैसे कि इस्लामिक पंचांग में होते हैं। "मद्रासी फसली वर्ष एक कृषि सम्बन्धी सौर वर्ष है तथा सायन वर्ष है। यह पहली जौलाई से आरम्भ होता है। इसके वर्ष और माह का कोई विभाजन नहीं होता। इसका चालू वर्ष प्राप्त करने का नियम यह है : वर्तमान फसली=ई० वर्ष ५६०। कृषि सम्बन्धी या लगान सम्बन्धी वर्ष १ जौलाई १६१० से ३० जून १६११ तक प्रकट करना चाहिये। मद्रास में फसली वर्ष का अन्धानुकरण है। यह उन लोगों को भ्रमित करता है जो गांव में नहीं रहते। शनैःशनैः यह प्रयोग से बाहर होता जा रहा है। यह अनियमित तिथिक्रम है।"[2]

बंगाली सन्

बंगाल प्रान्त के नाम पर इस संवत् का नाम बंगाली सन् पड़ा है। इसको बंगाली सेन अथवा बंगाब्द[3] नामों से भी जाना जाता है। "इस संवत् का प्रचलन बंगाल प्रान्त में था।"[4] बंगाली सन् का वर्तमान प्रचलित वर्ष ज्ञात करने की पद्धति कलैण्डर सुधार समिति रिपोर्ट में इस प्रकार दी गयी है : "बंगाली सन् के वर्तनान चालू वर्ष को जानने के लिए १५५६ के हिज्रा वर्ष ६६३ को लें और उसमें सौर्य वर्ष की संख्या जोड़ दें।"[5] इस प्रकार १६८६ ई० सन् बंगाली सन्

---

१. एल० डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १६११, पृ० ४५।
२. वही।
३. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १६१८, पृ० १६३।
४. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १६५५, पृ० २५८।
५. वही, पृ० २५७।

का ९६३+१९८९—१५५६=१३९६वां वर्तमान चालू वर्ष है। कलैण्डर रिफोर्म कमेटी की रिपोर्ट में यह कहीं नहीं दिया गया है कि बंगाली सन् का आरंभिक वर्ष क्या था ? १५५६ तक हिज्री ९६३ वर्ष बीत चुके थे इनको कुल व्यतीत ई० संवत् के वर्षों के साथ जोड़कर उसमें से १५५६ घटा दिया गया है व वर्तमान चालू वर्ष निकालने का तरीका बताया गया है। इसका कोई उल्लेख नहीं है कि १६५६ ई० तक ९६३ व्यतीत वर्ष तत्कालीन पंचांगों के आधार पर दिये गये हैं या इसका कोई आरम्भिक वर्ष निश्चित किया गया है।

इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी भूल है कि चन्द्रीय वर्षों को सौर वर्षों के साथ जोड़ दिया गया है जो कि अनुचित है। वर्षों की कुल संख्या बताने के लिए उनका एक ही पद्धति का होना आवश्यक है या चन्द्रीय वर्षों को सौर वर्षों में बदला जाये या सौर वर्षों को चन्द्रीय वर्षों में। तब उनके कुल योग को बताया जाना चाहिए था। इस सिद्धान्त में ऐसा नहीं किया गया है। ऐसा न किये जाने से समस्या यह आती है कि अब १९८९ ई० तक बंगाली संवत् के व्यतीत वर्षों को जो कि १३९६ है न तो चन्द्रीय गणना का कह सकते हैं और न ही सौर गणना का। अर्थात् बंगाली सन् के कुल व्यतीत वर्षों को किस पद्धति का मानें कि बंगाली सन् की कोरम्भिक तिथि ज्ञात हो सके, यह समस्या सामने आती है।

राष्ट्रीय पंचांग में बंगाली सन् का वर्तमान प्रचलित वर्ष १३९६ (१४ अप्रैल सन् १९८९ ई. से आरम्भ) दिया गया है[1]। इसमें बंगाली सन् की गणना उसी पद्धति से की गयी है जो ऊपर कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट के अनुसार दी गयी है। अतः भले ही पंचांग इस संवत् के प्रचलित वर्ष का अंकन करे, लेकिन जब तक संवत् के आरम्भ की तिथि व वर्ष निश्चित नहीं कर लिए जाते तब तक यह संख्या विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती।

बंगाली सन् के आरम्भकर्ता के रूप में किसी व्यक्ति विशेष के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। इससे यही तात्पर्य लगाना चाहिए कि अपने आरंभिक वर्षों में यह गणना पद्धति के रूप में प्रचलित हुआ। शनैःशनैः इसमें सुधार होते रहे। तदुपरान्त इसको एक संवत् के रूप में पंचांगों में ग्रहण कर लिया गया। किसी विशिष्ट घटना व किसी व्यक्ति विशेष ने इसका आरम्भ नहीं किया।

---

१. "राष्ट्रीय पंचांग", भारत सरकार, द कन्ट्रोलर ऑफ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८९-९०, भूमिका, ९।

बंगाली सन् की गणना पद्धति का उल्लेख करते समय दो तथ्यों को समझना आवश्यक है। प्रथम, इसके विषय में धारणा है कि यह "मिश्रित पद्धति"[1] वाला संवत् है। दूसरा, यह फसली सन् का प्रकारांतर मात्र है। इन दोनों बातों का तात्पर्य एक ही है क्योंकि फसली संवत् भी मिश्रित पद्धति वाला है और यह फसली संवत् के ही समान है। इससे संदर्भ में ओझा का निम्न मत है : "यह एक प्रकार से बंगाल के फसली सन् का प्रकारान्तर मात्र है। बंगाली सन् व फसली सन् में अन्तर इतना ही है कि इसका आरंभ आश्विन कृष्ण एक से किंतु उससे सात महीने बाद मेष संक्रान्ति (सौर वैशाख) से होता है और महीने सौर हैं जिससे उनमें पक्ष व तिथि की गणना नहीं है। जिस दिन संक्रान्ति का प्रवेश होता है उसके दूसरे दिन को पहला दिन मानते हैं।"[2]

पंचांग निर्माण के लिए इस संवत् का प्रयोग किया गया। वर्तमान समय में भी राष्ट्रीय पंचांग में इसका वर्ष अंकित रहता है। बंगाल प्रान्त में धार्मिक दृष्टिकोण से भी यह महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय पंचांग में इस संवत् का अंकन इस बात का द्योतक है कि यह वर्तमान समय में भी प्रचलित है तथा इसका महत्व बढ़ रहा है।

श्री हर्ष संवत्

इस संवत् का नाम इसके आरम्भ करने वाले राजा हर्ष के नाम पर हर्ष संवत् पड़ा है। हर्ष संवत् का विस्तार मथुरा व कन्नौज में हुआ।[3] हर्ष द्वारा इस नये संवत् का आरम्भ भारत में संवत् आरम्भ के संदर्भ में पूर्व प्रचलित परम्परा का अंश था। यह पहले संवत् के समान ही हर्ष के चक्रवर्ती सम्राट होने के उपलक्ष्य में चलाया गया था, ठीक उसी प्रकार जैसे कि विक्रम, शक व गुप्त आदि संवतों की स्थापना की गयी थी। "वास्तव में एक नये संवत् का आरम्भ उस समय अपने साम्राज्य का विशेष चिन्ह समझा जाता था और हर्ष ने उसी प्रथा के प्रति उत्तर में अपना संवत् ६१२ ई० में आरम्भ किया, जबकि

---

१. फसली संवत् के सम्बन्ध में मिश्रित पद्धति का अर्थ चन्द्र सौर की मिश्रित पद्धति नहीं है वरन् इसका अर्थ है कि यह संवत् कुछ समय केवल चन्द्र पद्धति व कुछ समय केवल सौर पद्धति का रहा।

२. रायबहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १९२-९३।

३. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

उसने अपनी दिग्विजय पूरी कर ली थी, जो ६०६ ई० में उसके राज्यारोहण से आरम्भ हुयी थी।"[1]

हर्ष संवत् के वर्तमान प्रचलित वर्ष का अब अनुमान कठिन है क्योंकि इसकी गणना पद्धति, वर्ष की लम्बाई, महीनों की संख्या तथा लौंद के वर्ष आदि का उल्लेख नहीं मिलता। इन सबके अभाव में अब इतना समय बीत जाने पर इसके वर्तमान प्रचलित वर्ष को बता पाना संभव नहीं है। इस संवत् के आरम्भ का समय ५२६ चालू शक अथवा ६०६-०७ ई० है। हर्ष वर्धन अपने वंश का एक शक्तिशाली शासक था। अपने राज्यारोहण के समय हर्ष ने इस नए संवत् की स्थापना की। संवत् का वास्तविक आरम्भ ६१२ ई० में हुआ तथा इसके आरम्भ की तिथि ६०६-०७ ई० से मानी गयी। जैसा कि गुप्त संवत् के संदर्भ में भी समझा जाता है। अधिकांश विद्वान् इस विचार से सहमत हैं कि हर्ष के राज्यारोहण के समय से हर्ष संवत् का आरम्भ हुआ तथा अभिलेखों, साहित्य व तत्कालीन लोक प्रचलन में इस संवत् को पर्याप्त स्थान मिला। लेकिन डा० आर०सी० मजूमदार ने अपने कुछ लेखों में इस मत का खण्डन किया है। वे मानते हैं कि इस सम्बन्ध में न ही कोई अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध है और न ही ऐतिहासिक तथ्यों से इसकी पुष्टि होती है कि हर्ष ने किसी संवत् का आरम्भ किया। मजूमदार का विश्वास है कि हर्ष संवत् की मानी जाने वाली समस्त तिथियां या तो भट्टिका संवत् की हैं जो इसके लगभग साथ ही आरम्भ हुआ अथवा वे किन्हीं क्षेत्रीय संवतों से सम्बन्धित हैं। "किसी स्मारक, लेख, अभिलेख अथवा चिन्ह में हर्ष के नाम का इस संवत् से सम्बन्ध नहीं दर्शाया गया है। यहां तक कि बाण अथवा ह्वेन्सांग जिन्होंने इस महान् सम्राट के विषय में इतनी बातें कहीं हैं, कहीं भी संवत् का लेशमात्र भी संदर्भ नहीं दिया है।"[2] मजूमदार ने हर्ष संवत् की स्थापना की सम्भावना को अस्वीकारते हुये इस सम्बन्ध में एक आपत्ति यह भी उठाई है कि हर्ष के पश्चात् शीघ्र ही अराजकता फैल गयी तथा स्वयं भी उसने लम्बे समय तक शासन नहीं किया। इस प्रकार दोनों ही परिस्थितियां जो किसी संवत् का मुख्य सहारा हो सकती हैं हर्ष संवत् के सम्बन्ध में उपलब्ध

---

१. सी०पी० वैद्य, 'हर्षा एण्ड हिज टाइम्स', "द जर्नल ऑफ द बोम्बे ब्रांच ऑफ द रायल एशियाटिक सोसाइटी", वोल्यूम २४, १९१७, पृ० २३५-७६।

२. आर०सी० मजूमदार, 'द हर्ष एरा', "इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली", वोल्यूम २७, सितम्बर, १९५१, कलकत्ता, पृ० १८३।

न रहीं। इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली में दिये गये अपने लेख में मजूमदार ने अल्बेरूनी के विवरण का सचाऊ द्वारा किये गये अनुवाद के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि "इस संवत् का सम्बन्ध विक्रम के ४०० वर्ष पूर्व अर्थात् ४५७ ई० पूर्व में आरम्भ होने वाले संवत् से है जो मथुरा व कन्नौज में प्रचलित था। यह सम्भवतः नंदों का संवत् हो सकता है न कि हर्ष का, क्योंकि हर्ष उस काल में था ही नहीं।"[१] अन्त में मजूमदार पूर्ण विश्वास के साथ लिखते हैं: "हम अल्बेरूनी तथा जैसलमेर के दो साक्ष्यों से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सिंध अथवा पश्चिमी भारत में एक अथवा एक से अधिक संवत् प्रचलित रहे होंगे, जिनकी तिथियां हर्ष संवत् से मेल खाती होंगी। इस प्रकार हर्ष संवत् की जो तिथियां दी गयी हैं वे इनमे से ही किसी संवत् की रही होंगी न कि हर्ष के राज्यारोहण के सम्बन्ध में आरम्भ होने वाले संवत् की।"[२] मजूमदार हर्ष संवत् में अंकित माने जाने वाले अधिकांश लेखों को नेपाली संवत् का मानते हैं।

डा० देवहूती व डी०सी० सरकार ने मजूमदार द्वारा हर्ष संवत् के सम्बन्ध में उठायी गयी शंकाओं का खण्डन अपने लेखों में किया है। तथा अधिकांश रूप से मान्य मत ६०६-०७ ई० में हर्ष संवत् का आरम्भ का समर्थन किया है। मजूमदार द्वारा लगाये गये आरोप कि हर्ष संवत् का उल्लेख न बाण ने किया है और न ह्वेन्सांग ने, का खण्डन करते हुये डी०सी सरकार ने लिखा है: अगर हर्ष ने ढिढोंरा पीट कर सवत् की स्थापना नहीं की और वह केवल क्षेत्रीय गणना ही करता रहा, तब उसके उत्तराधिकारियों ने इसे अवश्य ही संवत् में परिवर्तित कर दिया होगा। तथा बाण व ह्वेन्सांग जो हर्ष के समकालीन ही थे, उनके द्वारा संवत् का उल्लेख न किया जाना विशेष महत्त्व नहीं रखता।"[३] मजूमदार का दूसरा तर्क यह है कि हर्ष ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया व उसके अधीनस्थ शासक स्वतन्त्र हो गये, तब इन स्वतन्त्र राजाओं ने भी उसके कानूनी तिथि क्रम को जारी रखा तथा संवत् का स्वरूप दिया, यह अभिलेखों से स्पष्ट है।[४] अधिकांश विद्वानों का मत है कि नेपाली संवत् भी हर्ष संवत् ही था क्योंकि

---

१. आर० सी० मजूमदार, 'द हर्ष एरा', "इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली", वोल्यूम २७, सितम्बर १९५१, कलकत्ता, पृ० १८५।

२. वही, पृ० १८७।

३. डी०सी० सरकार, 'हर्षाज एक्सेंशन एण्ड द हर्ष एरा', "आई०एच०क्यू०", वोल्यूम २७, १९५१, कलकत्ता, पृ० ३२२।

४. वही, पृ० ३२३।

उसकी अधिकांश तिथियां हर्ष संवत् से ही मेल खाती हैं।[1] अन्त में डी०सी सरकार लिखते हैं : "इस प्रकार भारतीय परम्पराओं में हर्ष ने विक्रमादित्य के समान ही संवत् का प्रचलन किया। मैं कोई कथनीय तथ्य नहीं पाता जिससे प्रचलित धारणा कि ६०६ ई० में हर्ष थानेश्वर की गद्दी बैठा, तथा ६१२ ई० में कन्नोज में राजधानी बनायी तथा संवत् का आरम्भ किया, की आलोचना की जा सके। अतः ६०६ ई० में ही हर्ष सिंहासनारूढ़ हुआ व संवत् की स्थापना की।"[2]

अपने दूसरे लेख में भी सरकार[3] ने मजूमदार[4] द्वारा हर्ष संवत् के सन्दर्भ में उठाये गये आक्षेपों का खण्डन किया है। इस संदर्भ में सरकार ने लिखा है—"मजूमदार हर्ष संवत् के सम्बन्ध में बौद्धिक तथा उचित तर्कों को सुनने के लिये भी तैयार नहीं हैं, जो अल्बेरूनी के है।"[5] इस प्रकार डी०सी० सरकार ने मजूमदार की समस्त शंकाओं का समाधान करते हुये पूर्ण विश्वास के साथ हर्ष के राज्यारोहण ६०६ ई० के साथ संवत् स्थापना का मत स्वीकार किया है। सरकार के मत के समर्थन में और भी बहुत से साक्ष्य दिये जा सकते हैं। सी० मोबेल डफ ने हर्ष संवत् के आरम्भ के सम्बन्ध में निम्न तिथि दी है—६०६ ई० अक्टूबर २२, इस दिन थानेश्वर के राजा हर्ष वर्धन ने अपना संवत् आरम्भ किया। शक संवत् में इसकी गणना करने पर, जो चैत्र शुदी से आरंभ होता है यह तिथि, शुक्रवार दिनांक ३ मार्च ६०७ ई० आती है।[6] कन्नौज के राजा भोज का एक लेख मिला है, जो इसी संवत् का समझा जाता है और वर्ष २७६ का है जिसे ६०६+२७६ =८८२ ई० का कहा जा सकता है।[7] दूसरे विद्वानों द्वारा अल्बेरूनी के विवरण

---

१. डी०सी० सरकार, 'हर्षाज एक्सेंशन एण्ड द हर्ष एरा', "आई०एच०क्यू०", वोल्यूम २६, १९५१ कलकत्ता, पृ० ३२४।
२. वही, पृ० ३२५।
३. वही, १९५३, पृ० ७२-७९।
४. आर०सी मजूमदार, 'हर्ष एरा', "आई०एच०क्यू०", वोल्यूम २८, १९५२, कलकत्ता, पृ० २८।
५. डी०सी० सरकार, 'हर्षाज एक्सेंशन एण्ड एरा', "आई०एच०क्यू", वोल्यूम २९, १९५३, कलकत्ता, पृ० ७९।
६. सी० मोबेल डफ, "द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", भाग १, वाराणसी, १९७५, पृ०।
७. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ६४।

से प्राप्त किये गये निष्कर्षों से भी इसी तिथि की पुष्टि होती है। अल्बेरूनी लिखता है—"श्री हर्ष के विषय में हिन्दू मानते हैं कि पृथ्वी के पेट में छिपे कोषों की प्राप्ति के लिये सातवीं पृथ्वी तक नीचे की ओर भूमि की परीक्षा किया करते थे, वास्तव में उन्हें ऐसे कोष मिले भी थे, और इसके परिणाम से, उन्हें कर आदि से प्रजा को दबाने की आवश्यकता नहीं रही थी। उनके संवत् का व्यवहार मथुरा कन्नौज के देश में किया जाता है। उस प्रदेश के कुछ आदि-वासियो से मुझे ज्ञात हुआ है कि श्री हर्ष और विक्रमादित्य के बीच ४०० वर्ष का अन्तर है (सचाऊ ने इसका पाठ विक्रमादित्य से ४०० वर्ष पूर्व किया है तथा इसी आधार पर डा० मजूमदार के तर्क हैं, जिनका खण्डन डी०सी सरकार ने किया। परन्तु काश्मीर पचांग में मैंने पढ़ा कि श्री हर्ष विक्रमादित्य से ६६४ वर्ष पीछे हुये थे।"[1] इस विवरण से स्पष्ट है कि विक्रमादित्य के ६६४ वर्ष पश्चात् अर्थात् ६६४—५८=६०६ ई० में हर्ष संवत् की स्थापना हुई। डा० देवहूति ने आर०सी मजूमदार व डी०सी० सरकार के विवाद को विशेष महत्व नहीं दिया है तथा हर्ष संवत् के आरम्भ के संदर्भ में अपना स्वतंत्र व निश्चित मत व्यक्त किया है :

> हर्ष ने ६०६ ई० में एक संवत् आरम्भ किया लेकिन आर०सी मजूमदार ने एक वि ाद उत्पन्न कर दिया। जबकि उन्होंने कहा कि यह विवाद बहुत कमजोर नींव पर खड़ा हुआ है जबकि डी०सी० सरकार ने प्रत्युत्तर में कहा कि आमतौर पर स्वीकार्य विचार के विपक्ष मे मुश्किल से ही कोई साक्ष्य जाता है। हम दोनों विद्वानों द्वारा दिये गये विभिन्न मतों को ध्यान में रखकर अपना ही मत स्पष्ट करेंगे कि हर्ष ने अपना संवत् ६०६ ई० में ही आरम्भ किया।···हर्ष जिसने कि राज्य ६०६ ई० तक काफी पा लिया था तथा जिसने राजा की उपाधि थानेश्वर के परमभट्टारक महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की तथा जिसने अपनी दिग्विजय का झंडा उसी वर्ष उठा लिया ऐसे हर्ष ने अपने राज्य की शुरूआत ६०६ ई० ही मानी जो कि उसके लिये एक नया संवत् आरम्भ करने के लिये एक सही घटना थी।[2]

---

१. अल्बेरूनी, "अल्बेरूनी का भारत", अनु० रजनीकांत, इलाहाबाद, १९६७, पृ०।

२. देवहूति, "हर्षा", लन्दन, १९७०, पृ० २३५-३७।

हर्ष संवत् के विषय में यही अधिक मान्य मत है कि हर्ष का शासन ६०६ ई० से आरम्भ हुआ लेकिन आरम्भिक कुछ वर्षों में वह मात्र संरक्षक के रूप में राज्य कर रहा था व स्वयं स्वतंत्र शासक नहीं था। ६१२ ई० में उसने स्वयं को राजा घोषित किया तथा उसके राज्यारोहण के साथ ही हर्ष संवत् का आरंभ हुआ, लेकिन इसकी गणना ६०६ ई० से ही की गयी। "हर्ष ने साहसपूर्वक स्वयं को ६१२ ई० तक जब तक कि वह ५, १/२ अथवा ६ वर्ष तक गद्दी पर रह चुका अपने को पूर्ण स्वतंत्र सम्राट घोषित नहीं किया। यद्यपि जो संवत् उसके नाम से चला उसका प्रारम्भ अक्टूबर ६०६ ई० से है। अर्थात् इसका नियमित सिंहासनारोहण ६१२ ई० में हुआ तथा प्रथम बार सिंहासनारोण व संवत् आरंभ ६०६ ई० में हुआ।"[1]

भारतीय कलैण्डर सुधार समिति ने भी ६०६ ई० की तिथि हर्ष संवत् के आरम्भ की स्वीकार की है।[2] अर्थात् ५२८ शक संवत् तथा ६०६ ई० संवत् हर्ष संवत् के आरम्भ की तिथि निश्चित की जाती है। एलैग्जेण्डर कनिघम ने यह तिथि ६०७ ई० दी है।[3] जो सम्भवतः भारतीय संवतों में सामान्य रूप से पायी जाने वाली आरम्भिक वर्ष की तिथि तथा पूर्ण वर्ष की तिथि के कारण है। अर्थात् ६०६ ई० में संवत् का आरम्भ हुआ तथा उसका प्रथम वर्ष ६०७ ई० में हुआ। जो शक संवत् ५२९ है। रोबर्ट सीवैल[4], एल०डी० स्वामी पिल्लैयी[5] आदि ने भी इसी तिथि का समर्थ किया है।

हर्ष संवत् का अभिलेखों में पर्याप्त प्रयोग हुआ है। स्वयं हर्ष ने तथा उसके समकालिक राजाओं ने हर्ष संवत् में अभिलेखों का अंकन किया। कीलहोर्न ने ऐसे २० लेखों जो उत्तरी भारत में पाये गये, हर्ष संवत् में अंकित बताया है।

---

१. वी०ए० स्मिथ, 'दि अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया", ऑक्सफोर्ड, १९६७ १९२४, पृ०।

२. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफार्म कमेटी", सारिणी २७, दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

३. एलैग्जेण्डर कनिघम, "ए बुक ऑफ इण्डिन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ६४।

४. रोबर्ट सीवैल, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४५।

५. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४५।

नेपाल से भी इस संवत् से सम्बन्धित अभिलेख मिले हैं। हर्ष संवत् में अंकित अभिलेखों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है: (१) स्वयं हर्ष द्वारा अंकित कराये गये दो अभिलेख (५२८-२९) (२), नेपाल से प्राप्त ११ अभिलेख, (३) एक अभिलेख मगध के आदित्य सेन का, (४) दो प्रतिहार अभिलेख (सं० ५४२, ५४४), (५) चार अन्य अभिलेख।

इस प्रकार कुल २० अभिलेख हैं जिन पर अंकित तिथि को विद्वान् हर्ष संवत् की तिथि मानते हैं। "हर्ष के अपने अभिलेखों को छोड़कर केवल पांच अभिलेख हर्ष संवत् से सम्बन्धित माने जाते हैं। इनमें से हर्ष संवत् के सम्बन्ध में कोई भी अधिक नहीं बताता। इन पांच में से तीन हर्ष के शासन क्षेत्र में आते हैं। एक निश्चित है (पंजाब में कहीं से) पांचवां बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती क्षेत्र का है।"[1]

अभिलेखों में हर्ष संवत् के प्रयोग का प्रमाण तो इस संवत् में अंकित अभिलेखों से मिल जाता है किन्तु साहित्य अथवा इतिहास लेखन के लिये भी इस संवत् को अपनाया गया इस सम्बन्ध में साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। इससे यही समझना चाहिये कि साहित्य लेखन में इसको ग्रहण नहीं किया गया। यह मात्र प्रशासनिक गणना ही रहा और राजकीय कार्यों तथा राजनैतिक घटनाओं के अंकन के लिये ही संवत् का प्रयोग हुआ जो कि अभिलेखों के रूप में अंकित की गयी।

हर्ष संवत् के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि कुछ शताब्दियों बाद ही इसका प्रयोग समाप्त हो गया। हर्ष संवत् से सम्बन्धित कन्नौज नरेशों के ताम्रपत्र हैं। "इन राजाओं का शासन काल ७५० ई० से १००० ई० तक था। इनमें पहला पत्र भोज देव के पुत्र महेन्द्रपाल देव का है। इस ताम्रपत्र की तिथि ३१५ जैसी लगती है जो हर्ष संवत् की ९२१ ई० बैठती है। दूसरा ताम्रपत्र महेन्द्रपाल के पोते विनायकपाल देव का है। इसकी तिथि ३८६ जैसी लगती है। इसके आधार पर तिथि ९९२ ई० बैठती है। इसके बाद कन्नौज को राठौरों ने जीत लिया और उन्होंने विक्रमादित्य संवत् वहां भी चला दिया।"[2] कनिंघम

---

१. आर०सी० मजूमदार, 'हर्ष वर्धन ए क्रिटिकल स्टडी', "द जर्नल ऑफ द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी", वोल्यूम ९, १९२३, पृ० ३१०-२५।

२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ६४।

के इस कथन से स्पष्ट है कि हर्ष संवत् ९९२ ई० अर्थात् अपने आरम्भ से ३८५ वर्षों तक प्रचलन में रहा। धीरे-धीरे विलुप्त होता हुआ संवत् कुछ वर्ष और लोगों की स्मृति में रहा होगा। यह स्वाभाविक है। अतः हर्ष संवत् की प्रचलन अवधि चार शताब्दी मानी जा सकती है। हर्ष संवत् के प्रयोग से बाहर हो जाने के मुख्य कारण आरम्भकर्ता की शक्ति क्षीणता व विक्रमादित्य संवत् का प्रसार माने जा सकते हैं।

भट्टिका संवत्

भट्टिक नामक वंश अथवा शासक के नाम पर इस संवत् का नाम भट्टिक पड़ा है। इस वंश का शासन राजपुताने में था अतः वहीं आसपास भट्टिक संवत् का प्रचलन हुआ। भट्टिक संवत् के आरम्भ का समय हर्ष संवत् के एकदम करीब है। वी०वी० मिराशी[1] ने राजपुताना में मेवाड़ के धुलेवग्राम से प्राप्त हुए लेख के आधार पर भट्टिक संवत् के आरम्भ की तिथि ६२३ ई० दी है। डा० डी०एस० त्रिवेद ने भी इसी का समर्थन किया है—भट्टिक संवत् के आरम्भ की तिथि ६२३ ई० है[2]। हर्ष संवत् के आरम्भ का समय ६२२ ई० माना जाता है तथा भट्टिक संवत् के आरम्भ का समय ६२३ ई० माना जाना है इस प्रकार दोनों संवत् का आरम्भ एकदम निकट है।

भट्टिक संवत् के सम्बन्ध में दो प्रमुख विचारधारायें हैं। प्रथम तो डा० मजूमदार की धारणा है कि इस नाम का कोई संवत् कभी प्रचलित नहीं हुआ। भट्टिक संवत् से सम्बन्धित माने जाने वाले अभिलेख हर्ष अथवा हिज्रा संवत् के हैं। इस सन्दर्भ में डा० मजूमदार ने जैसलमेर से प्राप्त दो लेखों का उल्लेख किया है[3]। इसमें प्रथम, विक्रम संवत् १४९४, भट्टिक संवत् ८१३ माघ शुदी, शुक्रवार, आश्विन नक्षत्र है। इसको नियमित करने पर शुक्रवार ३१ जनवरी १४३८ ई० आता है। दूसरा, अभिलेख शिव मन्दिर से प्राप्त हुआ है, जिसमें विक्रम संवत् १६७३, शक संवत् १५३८ तथा भट्टिक संवत् ९९३ उत्तरायण मंगसिरा दिया है जो २८ दिसम्बर १६१६ ई० आता है। इसमें

---

१. वी०वी० मिराशी, 'द हर्ष एण्ड भट्टिका एरा', "आई०एच०क्यू०", वोल्यूम २९, १९५३, पृ० १२४।

२. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३४।

३. आर०सी० मजूमदार, वी०वी० मिराशी द्वारा उद्धृत, 'द हर्ष एण्ड भट्टिका एरा', "आई०एच०क्यू०", वोल्यूम २९, १९५३, पृ० १९२।

प्रथम लेख भट्टिक संवत् के आरम्भ की तिथि ६२४-२५ ई० तथा दूसरे लेख से आरम्भ की तिथि ६२३-२४ ई० आती है। इन दोनों लेखों से प्राप्त तिथियों में एक वर्ष का अन्तर है। जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यह पूर्ण वर्ष व चालू वर्ष का अन्तर है जैसा कि बहुत से भारतीय संवतों के सन्दर्भ मे मिलता है। "इन लेखों का परिचय देते हुए तथा तिथि निश्चित करते हुए मजूमदार ने इसे हिज्रा सम्वत् बताया है, लेकिन यह असम्भव है, यह वास्तव में भट्टिक सम्वत् ही है।"[1] मजूमदार अपने मत के समर्थन में अपने एक लेख में कहते हैं : "भट्टिक सम्वत् का आरम्भ निश्चित ज्ञात नहीं है। परन्तु यह हिज्री के लगभग निकट है तथा जैसलमेर जहां से इसके लेख मिले हैं वह उस स्थान के बहुत पास है जहां आठवीं सदी ई० में मुसलमानों ने अधिकार कर लिया था और सम्भव है यह हिज्रा सम्वत् ही विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हुआ हो तथा सौर वर्ष में परिवर्तित कर दिया गया हो।"[2] हिज्रा वर्ष पूर्ण रूप से चन्द्रीय है। अतः उसकी किसी भी सौर गणना वाले सम्वत् से समानता व्यर्थ है तथा इसी आधार पर मजूमदार के मत का खण्डन किया जाता है जबकि वे यह कहते हैं कि हिज्रा सम्वत् को सौर वर्ष में परिवर्तित कर लिया गया होगा। वी०वी० मिराशी ने मजूमदार द्वारा भट्टिक सम्वत् को हिज्रा सम्वत् मानने के सन्दर्भ में दी गयी समस्त सम्भावनाओं का खण्डन करते हुए यही कहा कि यह भट्टिक सम्वत् है और यही उचित भी जान पड़ता है क्योंकि वी०वी० मिराशी ऐसे स्थानों पर भी इसके प्रचलन का उल्लेख करते हैं जहां मुस्लिम शासन नहीं था और जिन स्थानों पर हिज्री सम्वत् के प्रयोग की सम्भावना नहीं की जा सकती। साथ ही सम्वत् का पृथक नाम इसके पृथक आरम्भ व अस्तित्व का प्रतीक है। हिज्रा सम्वत् आज तक हिज्रा नाम से ही जाना जाता है। हर्ष सम्वत् भी बाद तक हर्ष सम्वत् नाम से ही चला। फिर इन दोनों में से किसी के लिए अन्य किसी नाम का प्रयोग हुआ हो, यह उचित नहीं लगता। अतः भट्टिक सम्वत् के सन्दर्भ में यही धारणा अधिक उचित जान पड़ती है कि भट्टिक वंश अथवा स्वयं भट्टिक नामधारी किसी शासक ने इसका आरम्भ किया, जिसका शासन क्षेत्र राजपूताना में था। श्री ओझा ने भी जैसलमेर से

---

१. वी०वी मिराशी, 'द हर्ष एण्ड भट्टिक एरा', "आई०एच०क्यू०", वो० २६, १९५३, पृ० १९३।

२. आर०सी० मजूमदार, 'द हर्ष एरा', "आई०एच०क्यू०", वो० २७, १९५१, पृ० १८७।

राजा वैरम सिंह के समय के उपलब्ध लेखों का उल्लेख किया है तथा निष्कर्ष दिया है कि "इन दोनों लेखों से पाया जाता है कि भट्टिक सम्वत् में ६८०-८१ मिलाने से विक्रम सम्वत् और ६२३ २४ मिलाने से ईस्वी सम्वत् आता है। अभी तक जैसलमेर राज्य के प्राचीन लेखों की खोज बिल्कुल नहीं हुई, जिससे यह पाया नहीं जाता कि कब से कब तक इस सम्वत् का प्रचार रहा।"[1]

जैसलमेर ताम्रपत्र से इतना तो निश्चित है कि भट्टिक सम्वत् का प्रयोग अभिलेख अंकन के लिए हुआ। इसके अतिरिक्त और कुछ लेखों की भट्टिक सम्वत् का ही होने की सम्भावना मिराशी ने व्यक्त की है: 'इससे सम्बन्धित लेख राजपूताना के निकटवर्ती प्रदेश में पाये गये हैं—कोट अभिलेख ४० वर्ष, ताशाई लेख, अलवर राज्य वर्ष १८४, उदयपुर संग्रहालय अभिलेख वर्ष १८४ आदि लेखों को ओझा तथा भण्डारकर ने हर्ष सम्वत् का स्वीकार किया है परन्तु यह सम्भव है कि ये भी भट्टिक सम्वत् में ही रहे हों।"[2] इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि कम अथवा अधिक मात्रा में इस सम्वत् का प्रयोग अभिलेखों की तिथि अंकन के लिए तो अवश्य हुआ, परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य, इतिहास लेखन, पंचांग निर्माण, साहित्य, धार्मिक, सामाजिक कृत्यों की पूर्ति आदि के लिए भी इसका प्रयोग हुआ अथवा नहीं यह पता नहीं चलता। फिर भी यह तो माना ही जा सकता है कि इसके आरम्भकर्ता द्वारा कुछ समय तक इसका प्रयोग राजकार्यों में किया गया होगा।

भट्टिक सम्वत् का प्रयोग कब से कब तक रहा इस सन्दर्भ में निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। "भट्टिक सम्वत् के लेख १५वीं व १७वीं सदी में भी मिलते हैं, परन्तु इसका कोई साक्ष्य नहीं कि यह सम्वत् प्रारम्भिक काल में भी प्रचलित रहा होगा।"[3]

---

१. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १६१८, पृ० १७८।

२. वी०वी० मिराशी, 'द हर्ष एण्ड भट्टिक एरा', "आई०एच०क्यू०", वो० २६, १६५३, पृ० १६५।

३. वही।

मागी सम्वत्

मागी सम्वत् के विषय में यह अभिधारणा है कि इसका मग जाति के नाम पर पड़ा, किसी व्यक्ति विशेष के नाम से यह सम्बन्धित नहीं है। इस सम्वत् के विषय में भी ओझा का विचार है कि "चिटागांग वालों ने बंगाल में फसली सन् का प्रचार होने से ४५ वर्ष बाद उसको अपनाया हो। इस सन् के मागी कहलाने का ठीक कारण तो ज्ञात नहीं हुआ परन्तु ऐसा माना जाता है कि आराकान के राजा ने ई० सम्वत् की ९वीं शताब्दी में चिटागांग जिला विजय किया था और ईस्वी सम्वत् १६६६ में मुगलों के राज्य में वह मिलाया गया। तब तक वहां पर अराकानियों अर्थात् मगों का अधिकार किसी प्रकार बना रहा था। सम्भव है कि मगों के नाम से यह मगी सन् कहलाया हो।"[१] रौबर्ट सीवैल ने मागी सम्वत् को ईसाई सम्वत् के ही समान माना है।[२] डा० त्रिवेद ने ५३८ ई० अथवा ५६० शक सम्वत् मागी सम्वत् के आरम्भ की तिथि दी है।[3] मागी सम्वत् का प्रचलन अराकान व चिटगांग में रहा।[४]

इस प्रकार ६३८ ई० सन्, ४५ बंगाली सन्, ५६० शक सम्वत् मागी सम्वत् के आरम्भ का वर्ष माना गया है। ६३८ ई० सन् से आरम्भ होकर कब तक यह प्रचलन में रहा, इसके निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होते। ओझा के कथन से जिसमें वे कहते : "इसका प्रचार बंगाल के चिटागांग जिले में है।"[५] ऐसा प्रतीत होता है कि ओझा के पुस्तक-लेखन के समय (१९१८ ई० तक) यह प्रचलन में था।

मागी सम्वत् में अन्य भारतीय सम्वतों से यह एक पृथक विशेषता है कि इसके आरम्भकर्ता के रूप में किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं लिया गया है, बल्कि यह एक जाति विशेष से ही सम्बन्धित है अर्थात् एक समाज से दूसरे ने इसे ग्रहण किया और इस क्रिया में मात्र सम्वत् का नाम ही बदला है शेष कुछ

---

१. राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१९, पृ० १९३।

२. रौबर्ट सीवैल, "इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४५।

३. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३५।

४. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

५. हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९३।

नहीं और यह सम्वत् ग्रहण का कार्य किसी विशेष अवसर पर हुआ अथवा सहज रूप में ही अपना लिया गया इस सम्बन्ध में भी कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

ओझा, रौबर्ट सीवैल तथा कलैण्डर रिफोर्म कमेटी की रिपोर्ट में मागी सम्वत् को बंगाली सन् के समान बताया गया है जिसका अर्थ यही लगाना चाहिए कि यह गणना पद्धति व वर्ष आरम्भ के सन्दर्भ में बंगाली सन् का ही प्रतिरूप है।

गंगा सम्वत्

गंगा वंश के द्वारा चलाये जाने के कारण यह गंगा सम्वत् के नाम से जाना जाता है। कहीं-कहीं इसका उल्लेख गांगेय सम्वत् के नाम से भी हुआ है। गंगा सम्वत् का प्रचलन भारत के दक्षिण के पूर्वी भाग में रहा।[1]

अन्य दूसरे सम्वतों के समान ही गगा सम्वत् के आरम्भ के लिए अनेक तिथियां दी जाती हैं। इसके आरम्भ व अस्तित्व का अनुमान कुछ दानपत्रों के आधार पर लगाया जाता है। डा० त्रिवेद ने गंगा सम्वत् का आरम्भ ४९७ ई० या ४१९ शक सम्वत् से माना है।[2] इस सम्बन्ध में शोभा राल ने ३४९ व ४९४ ई०, घोषा ने ४९६ ई०, मिराशी ने ४९८ ई०, सोमेश्वर शर्मा ने ५०४ ई० तथा ७४१-७७२, ८७७ ई० आदि तिथियां दी हैं। डा० वी०वी० मिराशी ने इन्द्रा पुरा से प्राप्त विक्रम वर्धन तथा गोविन्द वर्मन के दो ताम्रपत्रों (जो दान पत्र हैं) के आधार पर गंगा सम्वत् की तिथि निश्चित की है। आन्ध्र प्रदेश के नलगोडा जिले के तुमाला गांव में दो दान पत्र प्राप्त हुये। वी०एन० शास्त्री ने उन्हें सर्व प्रथम प्रकाशित किया। इन लेखों से विष्णु कुन्डिन के विषय में नवीन जानकारियां प्राप्त हुयीं। वी०वी० मिराशी ने एक लेख में इन्हें विक्रम वर्धन का इन्द्रपुरा दान पत्र तथा गोविन्द वर्मन का इन्द्रपुरा दान पत्र नामों से सम्बोधित किया तथा इसके आधार पर गंगा सम्वत् की तिथि निश्चित करने का प्रयास किया। विष्णु कुण्डिन की अन्य तिथियों में इन्द्रपुरा की तिथियां विष्णु कुण्डिन के शासन काल से ५० वर्ष पुरानी है। जैन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि ये तिथियां जाली हैं। सम्भवतः वे शक सम्वत् की

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

२. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३३।

कोई अन्य प्राचीन तिथि हैं।[1] विष्णु कुण्डिन के गोदावरी तथा जिरजिंगी ताम्रपत्रों से महाराजा विष्णु कुण्डिन का शासन काल स्पष्ट होता है। परन्तु ५२८ गंगा सम्वत् बैठता है जबकि डा० रामाराव, बी०एन० शास्त्री, अजय मित्र शास्त्री आदि ने गंगा सम्वत् का आरम्भ ४८६ ई० दिया है।[2] लेख के अन्त में मिराशी इन सभी मतों का खण्डन करते हुए लिखते हैं : "यद्यपि गंगा सम्वत् के आरम्भ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु ताम्रपत्र की साक्षी से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि गंगा सम्वत् का आरम्भ ४८६ ई० में हुआ। दोनों ही विष्णु कुण्डिन दानपत्रों से भी इसकी तिथि मेल खाती है।"[3]

पण्डित ओझा ५७० ई० से आरम्भ होने वाले गांगेय सम्वत् का उल्लेख अपनी **लिपिमाला** में करते हैं। जिसको वे गंगा वंश के किसी राजा का चलाया हुआ मानते हैं। इस सम्वत् के अस्तित्व का आधार मद्रास के गोदावरी जिले से मिले हुए महाराजा प्रभाकर वर्धन के पुत्र राजा पृथ्वी मूल के राज्य वर्ष २५वें का दानपत्र है। इस सम्बन्ध में ओझा का विचार है : "यदि उक्त दानपत्र का इन्द्र भट्टारक उक्त नाम का वेंगी देश का पूर्वी चालुक्य राजा हो, जैसा कि डा० फ्लीट ने अनुमान किया है तो उस घटना का समय ई० सम्वत् ६६३ होना चाहिए, क्योंकि उक्त सन् में वेंगी देश के चालुक्य राजा जय सिंह का देहान्त होने पर उसका छोटा भाई इन्द्र भट्टारक उसका उत्तराधिकारी हुआ था और केवल ७ दिन राज्य करने पाया था। ऐसे ही यदि इन्द्राधिराज को वेंगी देश के पड़ोस के कलिंग नगर का गंगावंशी राजा इन्द्रवर्मन (राज सिंह) जिसके दानपत्र (गांगेय) सम्वत् ८७ और ६१ के मिले हैं, अनुमान करें तो गांगेय सम्वत् ८७ ईस्वी सम्वत् ६६३ के लगभग होना चाहिए।"[4] ओझा इस विचार से भी सहमत नहीं है। वे आगे लिखते हैं : "परन्तु इन्द्र भट्टारक के साथ के युद्ध के समय तक इन्द्राधिराज ने राज्य पाया हो ऐसा पाया नहीं जाता। इसलिए उपर्युक्त ईस्वी सम्वत् ६६३ की घटना गांगेय सम्वत् ८७

---

१. वी०वी० मिराशी, 'फ्रेश लाइट आन टू न्यू ग्रान्ट ऑफ द विष्णु कुण्डिन', "जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", वोल्यूम ५०, १९७२, पृ० २।

२. वही, पृ० २।

३. वही, पृ० ८।

४. गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७६।

से कुछ वर्ष पूर्व की होनी चाहिए। यदि ऊपर के दोनों अनुमान ठीक हों तो गांगेय सम्वत् का आरम्भ ईस्वी सन् ६६३-८७=५७६ से कुछ पूर्व अर्थात् ईस्वी सम्वत् ५७० के आसपास होना चाहिए।"[1]

इस सम्वत् की आरम्भ तिथि के सम्बन्ध में दी गयी तिथियों में शताब्दियों का अन्तराल है। जहां डा० त्रिवेद ४९७ ई० की तिथि गंगा सम्वत् के आरम्भ के लिए देते हैं वही सोमेश्वर शर्मा द्वारा ५०४ ईस्वी तथा ७४१, ७७२, ८७७ ईस्वी की तिथियां भी दी गयी हैं। इस अन्तराल को देखते हुए निश्चित रूप से यह बता पाना कि इतने से इतने समय में गंगा सम्वत् प्रचलन में था, कठिन कार्य है।

इस सम्वत् का प्रयोग अभिलेखों के अंकन के लिए किया गया यह विक्रमवर्धन का इन्द्रपुरा दानपत्र तथा गोविन्द वर्मन के इन्द्रापुरा दान पत्रों से स्पष्ट है।

गंगा सम्वत् के विषय में अनुमान किया जाता है कि "यह सम्वत् ३५० वर्ष से कुछ समय तक प्रचलित रहकर अस्त हो गया।"[2] गंगा सम्वत् के शीघ्र समाप्त हो जाने के लिए भी उन्हीं सामान्य कारणों को उत्तरदायी माना जा सकता है जो अन्य दूसरे क्षेत्रीय सम्वत् की समाप्ति के लिए उत्तरदायी रहे। गंगा सम्वत् में किसी नवीन गणना पद्धति के ग्रहण किये जाने व इसका राष्ट्रीय प्रसार होने के सम्बन्ध में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। अतः अपने आरम्भकर्ता के प्रभाव के अन्त के साथ ही सम्वत् भी लुप्त हो गया। यह सम्भव है कि गंगावंश के निजी इतिहास लेखन अथवा वंश से सम्बन्धित घटनाओं को अंकित करने के लिए इस सम्वत् का प्रयोग हुआ हो, परन्तु अन्य समकालिक राजवंशों अथवा राष्ट्रीय स्तर के लेखकों ने गंगा सम्वत् का प्रयोग किया, इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। अत: यही माना जा सकता है कि इतिहास लेखन के लिए गंगा सम्वत् की उपयोगिता नगण्य ही थी।

यह कह पाना कठिन है कि गांगेय सम्वत् व गंगा सम्वत् एक ही थे अथवा पृथक-पृथक। क्योंकि गांगेय सम्वत् का उल्लेख श्री ओझा करते हैं लेकिन वे स्वयं ही इसके विषय में कोई निश्चित मत अथवा तिथि प्रस्तुत नहीं करते। वे लिखते हैं : "यह सम्वत् गंगावंश के किसी राजा ने चलाया होगा, परन्तु

---

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७६।

२. वही, पृ० १७६।

इसके चलाने वाले का कुछ भी पता नहीं चलता। गंगावंशियों के दानपत्रों में केवल सम्वत्, मास, पक्ष और तिथि या सौर दिन दिये हुए होने के तथा वार किसी में न होने से इस सम्वत् के प्रारंभ का ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सकता।"[1] आगे ओझा लिखते हैं: "जब तक अन्य प्रमाणों से इस सम्वत् के प्रारम्भ का ठीक-ठीक निर्णय न हो तब तक हमारा अनुमान किया हुआ इस सम्वत् के प्रारंभ का यह सन् (५७० ई०) भी अनिश्चित ही समझना चाहिए।"[2]

यह संभव है गंगा व गांगेय सम्वत् एक ही सम्वत् के दो नाम पड़ गये हों तथा देश के विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग तिथियों में सम्वत् ग्रहण किया गया हो तथा फसली सम्वत् के समान विभिन्न आरंभ-तिथियां ग्रहण की गयी हों। कलैण्डर सुधार समिति ने गंगा सम्वत् का आरंभ ६३८ ईस्वी के बाद ही रखा है। इस रिपोर्ट में भी गंगा सम्वत् की न तो कोई आरंभ तिथि दी गयी है और न ही १९५४ ईस्वी में इसका चालू वर्ष क्या था? यह दिया गया है। अतः इस सम्वत् के सम्बन्ध में इतना ही स्पष्ट है कि यह गंगावंश के किसी शासक द्वारा चलाया गया तथा इसका प्रचलन दक्षिण भारत के पूर्वी प्रदेश में था और अनुमानतः "यह सम्वत् ३५० वर्ष से कुछ अधिक समय तक प्रचलित रहकर अस्त हो गया।"[3]

बर्मी कोमन सम्वत्

इस सम्वत् का नाम बर्मी कोमन संभवतः इसीलिए पड़ा कि इसका प्रयोग बर्मा में हुआ। बर्मी कोमन सम्वत् का शाब्दिक अर्थ भी यही निकलता है—बर्मा में सामान्य रूप से प्रचलित सम्वत्।

भारत में बुद्ध गया व इसके बाद बर्मा में इस सम्वत् का प्रसार हुआ। "भारत में महाबोधि मन्दिर बुद्धगया से प्राप्त अभिलेखों से बर्मी कोमन सम्वत् की तिथियां प्राप्त होती हैं। सर्वाधिक प्राचीन लेख एक पत्थर पर है, जिसमें मन्दिर के निर्माण तथा जीर्णोद्धार की तिथियां दी गयी है।"[4]

---

१. गौरी शंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७६।
२. वही, पृ० १७७।
३. वही।
४. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ७२।

बर्मी कोमन सम्वत् का आरम्भकर्ता कौन था, किस घटना के सम्बन्ध में सम्वत् आरंभ किया गया तथा इसके आरम्भ के क्या उद्देश्य थे, इस सम्बन्ध में पता नहीं चलता। इस सम्वत् की आरम्भ तिथि के सम्बन्ध में कनिंघम ने मात्र इतना ही कहा है : "इस सम्वत् की आरंभ तिथि शनिवार २१ मार्च, ६३८ ईस्वी है। जो जूलियन गणना के अनुसार २१ मार्च, ६३८ ई० तथा ग्रिगेरियन के अनुसार २४ मार्च, ६३८ ईस्वी है।"[1]

इस सम्वत् की गणना पद्धति भारतीय गणना पद्धति के समान है। "इसमें वर्ष की लम्बाई सूर्य सिद्धान्त के आधार पर ३६५.८७५६४८ दिन है। सूर्य वर्ष की गणना हिन्दुओं के समान ही की जाती है। १ वर्ष में १२ चन्द्रमास क्रमशः २९ व ३० दिन के होते हैं। १९ वर्षीय चक्र में ७ वर्ष निश्चित रूप से लौंद के होते हैं।"[2] कनिंघम ने इस संवत् के वर्ष का लौंद का वर्ष ज्ञात करने की पद्धति भी बतायी है। "कोई वर्ष लौंद का होगा अथवा नहीं यह जानने के लिए तब तक व्यतीत वर्षों की कुल संख्या को १९ से भाग देने पर यदि शेष २, ५, ७, १०, १३, १८ हों तब वह वर्ष लौंद का होगा।"[3] कनिंघम के वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि उस संवत् का प्रयोग अभिलेख अंकन के लिए हुआ। जैसा कि पीछे दिये गये एक उद्धरण में महाबोधि मन्दिर से प्राप्त लेख का वर्णन है तथा इसी के आधार पर कनिंघम ने बर्मी कोमन संवत् के भारत में प्रचलन की संभावना प्रकट की है।

बर्मी कोमन संवत् के संदर्भ में एक मात्र वर्णन कनिंघम का ही मिलता है। भारतीय संवत् से सम्बन्धित अन्यत्र किसी पुस्तक, लेख अथवा विद्वान् का मत प्राप्त नहीं हुआ।

बर्मी कोमन संवत् का नाम इस बात का द्योतक है कि यह मुख्य रूप से बर्मा से संबन्धित है। या तो संवत् का आरंभ भारत में हुआ व शीघ्र ही इसका प्रचलन भारत से खत्म होकर बर्मा में अधिक समय तक रहा अथवा इसका आरंभ ही बर्मा में हुआ तथा किसी राजनैतिक संधि के परिणामस्वरूप किसी समय भारत में इसका अभिलेखों पर अंकन किया गया। जैसा कि सैल्यूसीडियन संवत् के सम्बन्ध में समझा जाता हैं।

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी १९७६, पृ० ७१।

२. वही, पृ० ७१।

३. वही, पृ० ७२।

भौमाकर सम्वत्

इस संवत् का नाम भौमाकर वंश के नाम पर भौमाकर संवत् पड़ा है। यह वंश उड़ीसा में शासन करता था। इस वंश की वंशावलियों के आधार पर यह कहा जाता है कि इस वंश में स्त्री-पुरुष दोनों शासक होते थे। इस वंश के करीब १८ राजाओं ने २०० वर्षों तक शासन किया। इन शासकों ने एक संवत् का आरम्भ किया। यही संवत् भौमाकर संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस संवत् के प्रचलन क्षेत्र के सम्बन्ध में डी०सी० सरकार का अनुमान है: "यह संवत् सम्भवतः क्षेत्रीय ही था। शनैः-शनैः वंश की शक्ति बढ़ने पर संवत् भी अधिक क्षेत्र में प्रचलित होता गया।"[1]

इस सम्वत् से सम्बन्धित अभिलेखों पर मात्र भौमाकर सम्वत् का ही प्रयोग हुआ है। इसके साथ दूसरे किसी सम्वत् की तिथि व वर्ष नहीं दिया गया है जिससे इस सम्वत् का दूसरे सम्वत् के साथ सामंजस्य कर इसके आरम्भ की सही तिथि ज्ञात करने में कठिनाई है। गंग राजाओं के अभिलेखों के आधार पर भण्डारकर व डी०सी० सरकार ने भौमाकर सम्वत् के आरम्भ के संदर्भ में अनुमान किये हैं। गंग राजाओं के इतिहास से यह पता चला कि १०७८ ईस्वी में उन्होंने भौमराजाओं को परास्त किया। इसी आधार पर तथा चीनी व अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर भण्डारकर ने भौमाकर सम्वत् के सम्बन्ध में यह कहा: "भौम राजाओं ने ७५०-९५० या ७७५-९१५ ई० तक शासन किया। वह भौमाकर सम्वत् को हर्ष सम्वत् से पुष्टि करने का सुझाव देते हैं।"[2] परन्तु डी०सी० सरकार इससे सहमत नहीं हैं, उन्होंने विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर इस सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार दिया: "भौमाकर सम्वत् का आरम्भ ८२० ई० की किसी तिथि के पास अथवा ९वीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध के मध्य में हुआ होगा।"[3]

भौमाकर सम्वत् के संदर्भ में डा० डी०सी० सरकार का मत ही माननीय है तथा इस सम्वत् के आरम्भ की तिथि ८२० ई० उचित है। अन्य दूसरे लेखों

---

१. डी०सी० सरकार, 'द एरा ऑफ द भौमाकरस ऑफ उड़ीसा', "आई०एच० क्यू०", १९५३, पृ० १४३।
२. आर०जी० भण्डारकर, डी०सी० सरकार द्वारा "आई०एच०क्यू" में उद्धृत, १९५३, पृ० १४३।
३. डी०सी० सरकार, 'द एरा ऑफ द भौमाकरस ऑफ उड़ीसा', "आई०एच० क्यू०", १९५३, पृ० १५५।

अथवा भारतीय सम्वतों से सम्बन्धित पुस्तकों में इस सम्वत् के सम्बन्ध में वर्णन नहीं है।

भौमाकर सम्वत् का प्रयोग अभिलेखों के अंकन के लिये किया गया इसकी पुष्टि डी०सी० सरकार ने की है तथा स्वयं अभिलेख के आधार पर उन्होने भौमाकर वंश तथा उसके द्वारा चलाये गये सम्वत् के अस्तित्व का अनुमान किया व इसी के आधार पर ९वीं सदी ई० के प्रथम अर्द्ध के मध्य को इस सम्वत् का आरम्भ समय बताया है।

भौमाकर सम्वत् के सम्बन्ध में अधिक अभिलेखों व साक्ष्यों का उपलब्ध न होना यही सिद्ध करता है कि अपने आरम्भ के कुछ समय बाद ही यह प्रचलन से बाहर हो गया अर्थात् अन्य दूसरे क्षेत्रीय सम्वतों के समान ही इसका प्रचलन भी अपने आरम्भकर्ताओं के सत्ता में रहने तक ही रहा। आरम्भकर्ताओं की शासन समाप्ति के साथ ही सम्वत् भी प्रचलन से बाहर हो गया।

कोल्लम सम्वत्

इस सम्वत् को संस्कृत लेखों में "कोलब सम्वत्" (वर्ष) और तमिल में "कोल्लम आंडु" (कोल्लम=पश्चिमी ओर, आंडु=वर्ष) अर्थात् पश्चिमी भारत का सम्वत् आदि नामों से जाना जाता है। कोल्लम सम्वत् के सम्बन्ध में एक रोचक कथा है कि कोल्लम (किलोन) जो कि एक प्राचीन नगर व बन्दरगाह है तथा दक्षिणी भारत के पश्चिमी तट पर स्थित है कि स्थापना के समय से इस सम्वत् का प्रचलन हुआ। ईस्वी सम्वत् की ७वीं शताब्दी के नेस्टोरिअन् पादरी जेसुजबस ने क्किलोन का उल्लेख किया है। ईस्वी सम्वत् ८५१ के अरब लेखक ने "कोल्लम मल्ल" नाम से इसका उल्लेख किया है। बर्नेल का विचार है कि इस सम्वत् का प्रारम्भ ईस्वी सम्वत् ८२४ के सितम्बर से हुआ। ऐसा माना जाता है कि यह कोल्लम की स्थापना की यादगार में चला है। बर्नेल के इस विचार की आलोचना करते हुए श्री ओझा ने लिखा है: "कोल्लम शहर ई० सम्वत् ८२४ से बहुत पुराना है और ईस्वी सम्वत् की ७वीं शताब्दी का लेखक उसका उल्लेख करता है। इसलिए ई० सम्वत् ८२४ में उसका बसाया जाना और उसकी यादगार में इस सम्वत् का चलाया जाना माना नहीं जा सकता।"[1] कोल्लम सम्वत् के आरम्भ के सम्बन्ध में श्री ओझा का कथन है: "तुहफतुलमजाहिद्दीन"

---

१. हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७९।

नामक पुस्तक का कर्त्ता उसका हिज्री सन् २०० में मुसलमान होना बतलाता है। अरब के किनारे के जफ़्हार नामक स्थान में एक कब्र है जिसको मालाबार के अब्दुर्रहमान सामिरी की कब्र बतलाते हैं और ऐसा भी कहते हैं कि उस पर के लेख में चेरूमान का हिज्री सन् २०२ में वहां पहुंचना और २१६ में मरना लिखा है। परन्तु मालाबार गजेटियर का कर्ता इन्नेस लिखता है कि उक्त लेख का होना कभी प्रमाणित नहीं हुआ। मालाबार में तो यह प्रसिद्ध है कि चेरूमान् बौद्ध हो गया था। इसलिए चेरूमान के मुसलमान हो जाने की बात पर विश्वास नहीं होता और यदि ऐसा हुआ हो तो भी इस घटना से इस सम्वत् का चलना माना नहीं जा सकता क्योंकि कोई हिन्दू राजा मुसलमान हो जावे तो उसकी प्रजा और उसके कुटुम्बी उसे बहुत ही घृणा की दृष्टि से देखेंगे और उसकी यादगार स्थिर करने की कभी चेष्टा न करेंगे।"[1] कोल्लम सम्वत् के आरम्भ की घटना के सम्बन्ध में एक धारणा यह भी है कि शंकराचार्य के स्वर्गवास से यह सम्वत् चला। यदि शंकराचार्य का जन्म ईस्वी सम्वत् ७८८ (विक्रम सम्वत् ८४५=कलियुग सम्वत् ३८८९) में और देहांत ३८ वर्ष की अवस्था में माना जावे तब उनका देहान्त ईस्वी सम्वत् (७८८+३८)=८२६ ईस्वी में होना स्थिर होता है। यह समय कोल्लम सम्वत् के आरम्भ के करीब ही है। इस धारणा का मुख्य स्रोत मालाबार से प्रचलित जनश्रुति है।

इस सम्वत् का प्रचलन भारत के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश में था। मालाबार, कोचीन तथा ट्रावन्कोर मुख्य रूप से प्रचलन क्षेत्र हैं। मालाबार के लोग इसको परशुराम का सम्वत् भी कहते हैं। कोल्लम सम्वत् के आरम्भ के लिए ८२५ ई० की तिथि ही स्वीकृत है। इसकी पुष्टि स्वामी पिल्लैयी[2], रौबर्ट सीवैल[3] आदि ने की है। कलैण्डर रिफोर्म कमेटी ने भी इसी तिथि को माना है।[4] कोल्लम सम्वत् के दो प्रकार के वर्षों का प्रचलन है। उत्तरी मालाबार में १७ सितम्बर (सौर कन्यादि माह) से वर्ष आरम्भ होता है तथा दक्षिणी मालाबार में वर्ष का आरम्भ १७ अगस्त (सिंहादि माह) से वर्ष का आरम्भ होता है। इसके

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १७९।

२. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४३।

३. रोबर्ट सीवैल, "द इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४५।

४. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

वर्ष सदैव सौर व चालू वर्ष ही लिखे जाते हैं। "मालाबार में महीनों के नाम संक्रान्तियों के नाम पर ही हैं, परन्तु तिन्नेवेल्लि जिले में उनके नाम चैत्रादि महीनों के लौकिक रूप से हैं। चैत्र को 'शित्तिरै' या 'चित्तिरै' कहते हैं। वहां का सौर चैत्र मालाबार वालों का 'मेष' है। इस सम्वत् के वर्ष बहुधा वर्तमान ही लिखे जाते हैं। इस सम्वत् वाला सबसे पुराना लेख कोल्लम सम्वत् १४९ का मिला है।"[1]

यह सम्वत् परशुराम चक्र अर्थात् १००० वर्षों वाले चक्र पर आधारित है। "१००० वर्ष पूरे होने पर वर्ष फिर एक से प्रारम्भ होना मानते हैं और वर्तमान चक्र को चौथा चक्र बतलाते हैं, परन्तु ईस्वी सम्वत् १८२५ में इस सम्वत् या चक्र के १००० वर्ष पूरे हो जाने पर फिर उन्होंने एक से वर्ष लिखना शुरू नहीं किया किन्तु १००० से आगे लिखते चले आ रहे हैं, जिससे इस सम्वत् को १००० वर्ष का चक्र नहीं मान सकते।"[2]

कोल्लम सम्वत् के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किस घटना के संदर्भ में इसका आरम्भ हुआ। लेकिन इतना निश्चित है कि इसका प्रयोग कई शताब्दियों तक भारत के कुछ प्रदेशों में हुआ तथा अन्य सम्वतों के समान ही इसका पंचांग भी जन साधारण में पर्याप्त रूप में प्रयोग होता है तथा इसका प्रयोग अभिलेखों के तिथि अंकन के लिए भी किया गया। कोल्लम सम्वत् के संदर्भ में यह विशिष्टता है कि उत्तरी मालाबार में १७ सितम्बर से वर्ष आरम्भ होता है तथा दक्षिणी मालाबार में वर्ष का आरम्भ १७ अगस्त से होता है। "१९५४ ई० में कोल्लम सम्वत् का ११३० प्रचलित वर्ष था।"[3]

कोल्लम सम्वत् के आरम्भ के सम्बन्ध में यदि शंकराचार्य की मृत्यु की घटना को आधार माना जाये, जिसका कि समर्थन श्री ओझा ने भी किया है, तब यह तथ्य सामने आता है कि यह अन्य भारतीय संवत्-आरंभ परम्परा से हटकर है, क्योंकि ऐसे बहुत कम संवत् हैं जो मरण-स्मृति के रूप में स्थापित किये गये। अधिकांश संवतों का आरंभ राजनैतिक शक्ति-संपन्नता के अवसर पर ही किया गया।

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८०।

२. वही।

३. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५०।

नेवार (नेपाल) सम्वत्

"नेवार" शब्द "नेपाल" का क्षेत्रीय अपभ्रंश रूप है। अभिलेखों में जहां इस सम्वत् को सामान्य रूपेण प्रयुक्त शब्द सम्वत् से अभिहित नहीं किया गया वहां इसके लिए "नेपाल वर्ष", "नेपाल सम्वत्" तथा "नेपाल अब्द" शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस सम्वत् का प्रचलन नेपाल में हुआ। इस क्षेत्र के राजाओं ने सिक्कों पर भी इस सम्वत् का अंकन किया।

इस सम्वत् के संदर्भ में नेपाली वंशावलियों तथा शासकों की सूची से जानकारी मिलती है। डा० भगवान लाल इन्द्रजी को नेपाल से जो वंशावली मिली, उससे पाया जाता है कि दूसरे ठाकुरी वंश के राजा अभयमल्ल के पुत्र जयदेव मल्ल ने नेवार सम्वत् चलाया। उसने कांतिपुर और ललितपट्टन पर राज्य किया और उसके छोटे भाई अनंद मल्ल ने भक्तपुर बसाया और वह वहीं रहा।

शिलालेखों और पुस्तकों में इस सम्वत् के साथ दिए हुए मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र आदि की गणितीय जांच के आधार पर ईस्वी सम्वत् ८७९ तारीख २० अक्टूबर अर्थात चैत्रादि विक्रम सम्बत् ९३६ कार्तिक शुक्ल एक से इस सम्वत् का आरम्भ होना निश्चय किया है। इससे गत नेपाल सम्वत् में ८७८-७९ जोड़ने से ईस्वी सम्वत् और ९३५-३६ जोड़ने से विक्रम सम्वत् होता है। इसके महीने अमांत हैं और वर्ष बहुधा गत (व्यतीत) लिखे मिलते हैं। यह सम्वत् नेपाल में प्रचलित था।[1] नेवार सम्वत् के आरम्भ के लिए उपरोक्त तिथि को अनेक विद्वानों ने माना है जैसे—रोबर्ट सीवैल,[2] एल०डी० स्वामी पिल्लैयी,[3] डा० डी०एस० त्रिवेद[4] आदि। डा० भगवान लाल इन्द्र जी को प्राप्त हुई नेपाल वंशावली में जयदेव मल्ल द्वारा नेपाल सम्वत् का चलाना लिखा है। जिस समय जयदेव मल्ल और आनंद मल्ल का नेपाल पर संयुक्त शासन था उसी समय कर्नाटक वंश को स्थापित करने वाले नान्यदेव ने दक्षिण से आकर नेपाल सम्वत्

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८१।
२. रौबर्ट सीवैल, "द इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४५-४६।
३. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४५।
४. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३८।

९ या शक सम्वत् ८११ श्रावण शुदि सप्तमी को नेपाल विजय कर जयदेव मल्ल और अनंद मल्ल को तिरहुत की तरफ निकाल दिया। इस कथन के अनुसार शक सम्वत् और नेवार सम्वत् के बीच का अन्तर ८११=९=८०२ तथा विक्रम सम्वत् व नेवार सम्वत् के बीच का अन्तर ९४६=९=९३७ वर्ष आता है।

नेपाल सम्वत् ९ में सम्पूर्ण नेपाल को जीतने तथा आनंद मल्ल व जयदेव मल्ल को हराने वाले न्यायदेव को फ्लीट ने दक्षिण का नहीं माना है। फ्लीट ने यह सम्भावना व्यक्त की है: "सत्य सम्भवत: यह है कि नान्यदेव जयदेव मल्ल का मन्त्री था, जिसने समय का लाभ उठाकर राजसत्ता हड़प ली, जो वंशावली के अनुसार उसकी पांच पीढ़ियों बाद तक उसके वंशजों के हाथों में रही। यह बता पाना कठिन है कि नान्यदेव वस्तुत: दक्षिणात्य था अथवा नहीं। हो सकता है कि यह अभिकथन एवं राजवंश का नाम मनगढ़न्त हो और उसकी कल्पना केवल नये सम्वत् से संबद्ध वर्ष के रूप से संगति बिठाने के लिए की गयी हो, सम्वत् की स्थापना वस्तुत: उसके द्वारा हुई थी, जयदेव मल्ल द्वारा नहीं।"[1]

नेपाल में नये सम्वत् की स्थापना के साथ ही पंचांग में भी परिवर्तन किया गया। यह परिवर्तन था "नेपाल में अब तक प्रयुक्त वर्ष के स्थान पर अन्य प्रादेशीय कर्नाटक वर्ष की संस्थापना हुई।"[2] कलैण्डर सुधार समिति ने भी नेवार सम्वत् के आरम्भ की तिथि ८७८ ई० दी है।[3] कनिंघम ने राजा राघवदेव को नेपाल सम्वत् का आरम्भकर्ता माना है जिसने ८८० ई० में नेपाल में इस सम्वत् का आरम्भ किया।[4] परन्तु भगवान लाल इन्द्र जी को प्राप्त वंशावालियों से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती।

चालुक्य विक्रम सम्वत्

अभिलेखों में इस सम्वत् को "चालुक्य विक्रम काल" या "चालुक्य विक्रम वर्ष" के नाम से अंकित किया गया है। कभी-कभी इसके लिए "वीर विक्रम

---

१. जॉन फेथफुल फ्लीट, "भारतीय अभिलेख संग्रह", (हिन्दी अनु० गिरजाशंकर मिश्र), जयपुर, १९७४, पृ० ७४।
२. वही, पृ० ७४।
३. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।
४. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ७४।

काल", "विक्रम काल" और "विक्रम वर्ष" नामों का प्रयोग किया गया है। यह सम्वत् सोलंकी राजा विक्रमादित्य के राज्याभिषेक के वर्ष से चला हुआ माना जाता है।

इस सम्वत् के आरम्भ के लिए १०७६ ई० की तिथि मान्य है। एलेग्जेण्डर कनिंघम का इस संबंध में विचार है: "उसके सम्वत् का आरम्भ उसके सिंहासनारोहण शक संवत् ९९८ अर्थात् १०७६ ई० से होता है।"[1] इस प्रकार १४ फरवरी, १०७६ ई० अथवा फाल्गुन शुदि पंचमी ९९८ शक सम्वत् चालुक्य विक्रम सम्वत् के आरम्भ की निश्चित तिथि ज्ञात है। अनेक विद्वानों ने इसी तिथि का समर्थन किया है। सी० मोबल डफ०[2], डा० डी०एस० त्रिवेद[3], रौबर्ट सीवैल[4] तथा स्वामी पिल्लैयी[5] ने १०७६ ई० की तिथि को ही माना है।

चालुक्य विक्रम सम्वत् के आरम्भ का मुख्य कारण सोलंकी राजा विक्रमादित्य छठे की अपने नाम से एक नया सम्वत् चलाने तथा पूर्व प्रचलित शक सम्वत् को मिटाने की इच्छा मानी जा सकती है। अतः पूर्व प्रचलित विक्रम सम्वत् से इसको भिन्न दिखाने के लिए इसके नाम के साथ चालुक्य जोड़ दिया गया।

चालुक्य वंश के अभिलेखों में इस सम्वत् का प्रयोग हुआ है। ओझा ने इस सम्बन्ध में दो अभिलेखों कुर्त कोटि से प्राप्त अभिलेख व येवूर गांव से प्राप्त अभिलेख का वर्णन किया है। प्रथम—कुर्त कोटि से प्राप्त लेख में चालुक्य विक्रम वर्ष सप्तमी दुंदुभि संवत्सर पौष शुक्ल ३ रविवार उत्तरायण संक्रान्ति और व्यतिपात लिखा है। दक्षिण ब्रहस्पत्य गणना के अनुसार दुंदुभि संवत्सर शक सम्वत् १००४ था। दूसरा येवूर गांव से प्राप्त अभिलेख है।[6]

---

१. एलेग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक आफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ७५।
२. सी० मोबल डफ, "द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डिया", भाग-१, वाराणसी, १९७५, पृ० १२९-३०।
३. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३८।
४. रौबर्ट सीवैल, "द इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४६।
५. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४५।
६. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८१-८2।

इन अभिलेखों के आधार पर श्री ओझा ने शक सम्वत् व चालुक्य विक्रम सम्वत् के बीच ९९७ वर्ष का अन्तर, विक्रम सम्वत् व चालुक्य विक्रम सम्वत् के बीच ११३२ वर्षों का अन्तर तथा ईस्वी सम्वत् और चालुक्य विक्रम सम्वत् के बीच १०७५-७६ वर्षों का अन्तर बताया है।[1] अर्थात् चालुक्य विक्रम सम्वत् में १०७५ जोड़ने से वर्तमान ई० सम्वत् बनता है और वर्तमान ई० सम्वत् में १०७५ घटाने से चालुक्य विक्रम सम्वत् का वर्तमान चालू वर्ष बनता है।

दक्षिणी पश्चिमी भारत में चालुक्य विक्रम सम्वत् प्रचलित रहा।[2]

अन्य दूसरे क्षेत्रीय सम्वत् की भांति यह सम्वत् भी लगभग एक सदी बाद लुप्त हो गया। "यह सम्वत् अनुमानत: १०० वर्ष चलकर अस्त हो गया। इसका सबसे पिछला लेख चालुक्य विक्रम सम्वत् ९४ का मिला है।"[3] चालुक्यों के पतन के साथ ही उनके सम्वत् की समाप्ति से यही समझा जा सकता है कि इस सम्वत् का प्रचलन किसी ठोस गणना पद्धति पर आधारित नहीं था। पूर्व प्रचलित पंचांगों को ही नया नाम देने का प्रयास किया गया था अत: वंश की समाप्ति व सम्वत् के राजकीय संरक्षण के अन्त के साथ ही जन-साधारण ने इसे त्याग दिया तथा पूर्व प्रचलित शक व विक्रम सम्वतों को ही ग्रहण कर लिया।

चालुक्य राजा विक्रमादित्य इस सम्वत् का आरम्भकर्ता था। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। "अपने राज्याभिषेक की स्मृति में उसने चालुक्य विक्रम सम्वत् नामक एक नया सम्वत् चलाया।"[4]

चालुक्य वंश का इतिहास जानने में इस सम्वत् की काफी उपयोगिता है क्योंकि इस वंश के अभिलेखों पर चालुक्य बिक्रम सम्वत् व दक्षिण में प्रचलित ब्रहस्पति गणना के वर्ष अंकित हैं जिससे ब्रहस्पति गणना के वर्षों के साथ एक विक्रम व ईसाई सम्वत् के वर्षों की गणना कर चालुक्य वंश से संबंधित घटनाओं की तिथियां निश्चित की जा सकती हैं।

---

१. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९८१, पृ० १८२।
२. "रिपोर्ट ऑफ द कलैन्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।
३. हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८२।
४. के०ए० नीलकंठ शास्त्री, "दक्षिण भारत का इतिहास", (अनुवादक वीरेन्द्र वर्मा), पटना, १९७२, पृ० १८९।

यह सम्वत् एक राजा द्वारा चलाया गया था और उसको राजकीय संरक्षण प्राप्त था अतः इसका राजनीतिक प्रयोग तो विदित ही है, परन्तु एक शताब्दी की अल्प अवधि में धार्मिक कार्यों में भी लोगों ने इसको ग्रहण कर लिया होगा यह सम्भव नहीं लगता, क्योंकि धार्मिक नीतियों में इतना शीघ्र परिवर्तन हो पाना सम्भव नहीं।

लक्ष्मण सेन सम्वत्

सेन वंशी राजा लक्ष्मण सेन द्वारा चलाया गया यह सम्वत् 'लक्ष्मण सेन सम्वत्" के नाम से जाना जाता है। इस सम्वत् का नाम इसके आरम्भकर्ता के नाम पर ही रखा गया है।

लक्ष्मण सेन सम्वत् का आरम्भ भी विवाद का विषय है। विद्वानों ने क्रमशः लक्ष्मण सेन के जन्म (मिनहाज उस सिराज), राज्यारोहण (अब्बुल फजल), व मृत्यु (ए० कनिंघम) की घटनाओं से सम्वत् के आरम्भ को सम्बद्ध किया है।

लक्ष्मण सेन के जन्म से ही सम्वत् का आरम्भ हुआ तथा इसी समय उसका राज्याभिषेक भी कर दिया गया—इस मत को मिनहाजउस सिराज ने "तबकाते-नासिरी" में दिया है : "राय लखमणिया (लक्ष्मणसेन) गर्भ में था उस समय उसका पिता मर गया था। उनकी माता का देहान्त प्रसव वेदना से हुआ और लखमणिया जन्मते ही गद्दी पर बिठाया गया। उसने ८० वर्ष राज्य किया। लक्ष्मण सेन सम्वत् का आरम्भ ई० सम्वत् १११९ में हुआ जैसा कि आगे लिखा गया है। इसलिए बख्तियार खिलजी की लक्ष्मण सेन पर नादिया की चढ़ाई लक्ष्मण सेन सम्वत् (११९९-१११९) ८० में हुई जबकि लक्ष्मणसेन की उम्र ८० वर्ष की थी और उतने ही वर्ष उसको राज्य करते हुए थे।"[1]

लक्ष्मण सेन सम्वत् का आरम्भ राजा लक्ष्मण सेन के राज्याभिषेक की घटना से हुआ था इस मत को अब्बुल फजल ने दिया है। "अकबरनामा" में अब्बुल फजल ने लिखा है कि "बंग (बंगाल) में लक्ष्मण सेन के राज्य के प्रारम्भ से सम्वत् गिना जाता है। उस समय से अब तक ४६५ वर्ष हुए हैं। गुजरात और दक्षिण में शालीवाहन का सम्वत् है जिसके इस समय १५०६ और मालवा तथा

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा अपनी पुस्तक "भारतीय प्राचीन लिपि-माला, अजमेर, १९१८, पृ० १८४ में उद्धृत।

देहली आदि में विक्रम का सम्वत् चलता है जिसके १६४१ वर्ष व्यतीत हुए हैं। इससे शक संवत् और लक्ष्मण सेन संवत् के बीच का अन्तर (१५०६=४६५) १०४१ वर्ष आता है।"[१]

लक्ष्मण सेन के राज्याभिषेक के समय इस संवत् का आरम्भ हुआ इसका समर्थन स्वयं ओझा ने भी किया है। "यह संवत् बंगाल के सेन वंशी राजा बल्लाल सेन के पुत्र लक्ष्मण सेन के राज्याभिषेक से चला हुआ माना जाता है।"[२]

इस प्रकार अब्बुल फजल व ओझा राज्याभिषेक की घटना को संवत्-आरंभ का समय मानते हैं जबकि मिनहाज उस सिराज ने लक्ष्मण सेन के जन्म व राज्यारोहण की घटना का समय एक ही बताया है। अतः तीनों विद्वानों ने एक ही तिथि को जिसमें कि लक्ष्मण सेन का राज्याभिषेक किया गया, लक्ष्मण सेन संवत् के आरम्भ का दिन माना है। इनमें अब्बुल फजल व ओझा द्वारा मात्र राज्यारोहण की घटना का उल्लेख हुआ है। इसका कारण संभवतः यही रहा होगा कि इन विचारकों के जन्म व राज्यारोहण की घटना एक ही होने के संबंध में पर्याप्त विवरण न पाया हो तथा मिनहाज उससिराज को इस संबंध में विवरण प्राप्त हुआ तथा उसने दोनों घटनाओं का नाम साथ-साथ दिया। अतः ये तीनों विचारक इस संबंध में एक मत हैं कि संवत् आरंभ की घटना व राज्यारोहण की घटना एक ही थी।

यह भी विवादास्पद बात है कि जन्म के समय ही लक्ष्मण सेन का राज्याभिषेक कर दिया गया था क्योंकि मनराल व मित्तल लक्ष्मण सेन का वास्तविक शासन आरंभ लक्ष्मण सेन संवत् के आरंभ व उसके जन्म की घटना से बहुत बाद में मानते हैं। तथा वे यह भी मानते हैं कि बल्लाल सेन ने स्वयं अपने पुत्र लक्ष्मण सेन को राज्याधिकार सौंपा था और लक्ष्मण सेन के राजा बनने के बाद भी बल्लाल सेन जीवित था। "बल्लाल सेन ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में राजगद्दी का त्याग कर अपने पुत्र लक्ष्मण सेन को राज्याधिकार सौंप दिया। संभवतः ११७९ ई० में लक्ष्मण सेन राजा हुआ।"[3] इस कथन से स्पष्ट है कि ११७९ ई० तक स्वयं बल्लाल सेन शासन कर रहा था जबकि मिनहाज बल्लाल

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८४।
२. वही।
३. मनराल, मित्तल "राजपूतकालीन उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास", आगरा, १९७८, पृ० ७८।

सेन की मृत्यु लक्ष्मण सेन के जन्म के समय ही बताता है तथा मिनहाज के अनुसार लक्ष्मण सेन ११९ ई० में जन्म के तुरन्त बाद राजा बन गया था। इन दो विरोधी तत्वों का समाधान गौरी शंकर ओझा के कथन से हो जाता है जिसके लिए वे "लघु भारत" नामक संस्कृत ग्रंथ का उद्धरण देते हैं। ओझा का कहना है कि इस ग्रंथ से हमें यह पता चलता है कि बल्लाल सेन के मिथिला की चढ़ाई में मर जाने की अफवाह ही फैली थी और इसी समय लक्ष्मण सेन का जन्म हुआ। अतः संभव है कि बल्लाल सेन की मृत्यु की अफवाह से ही लक्ष्मण सेन का राज्याभिषेक कर दिया गया हो और अपने पुत्र के जन्म की खबर पाकर मिथिला में बल्लाल सेन ने पुत्र-जन्म की खुशी में यह नया संवत् चलाया हो।[1]

इन विरोधी तथ्यों को देखकर यही कहा जा सकता है कि लक्ष्मण सेन का राज्याभिषेक बल्लाल सेन की मृत्यु की खबर फैलने के कारण जन्म के साथ ही कर दिया गया और बल्लाल सेन ने इसी समय नया संवत् भी आरंभ कर दिया किन्तु बल्लालसेन जीवित था अतः राजा वही रहा। परन्तु इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लक्ष्मणसेन का जन्म १११९ में हुआ और उसको राजा ११७९ मे वनाया गया जबकि उसकी उम्र ६० वर्ष हो चुकी होगी। तब क्या इतने वर्षों तक वह मात्र राज्य-प्रत्याशी ही बना रहा जबकि उसका राजतिलक हो चुका था ?

वास्तविक शासन अधिकार प्राप्ति की तिथि चाहे जो भी हो संवत् आरम्भ के सन्दर्भ के दृष्टिकोण से लक्ष्मण सेन के जन्म की तिथि ही महत्वपूर्ण है क्योंकि संवत् आरंभ का संबंध जन्म की घटना से है। अतः १११९ ई० को ही लक्ष्मण सेन संवत् के आरम्भ के लिए उचित मानना चाहिये।

लक्ष्मण सेन संवत् का आरम्भ लक्ष्मण सेन की मृत्यु के समय हुआ—इस मत का प्रतिपादन ए० कनिंघम ने किया है : "इस संवत् की स्थापना लक्ष्मण सेन की मृत्यु पर हुई जो बंगाल के राजा बल्लाल सेन का पुत्र था।"[2] कनिंघम के वर्णन का आधार संभवतः अल्बेरूनी का भारतीय संवतों के सन्दर्भ में अपनाया गया रुख है। अल्बेरूनी गुप्त संवत् का आरम्भ गुप्त वंश की समाप्ति से बताता है

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८४।
२. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ७६।

और उसी का अनुसरण कर कनिंघम ने भी गुप्त वंश के विनाश से गुप्त संवत् का आरम्भ माना तथा इसी धारणा को लेकर शायद कनिंघम ने लक्ष्मण सेन संवत् का आरम्भ भी उसके आरम्भकर्ता की मृत्यु से मान लिया। जबकि किसी भी दुःखद घटना से संवत् आरम्भ की परम्परा भारत में नहीं थी। नये संवत् का आरम्भ उसी घटना से किया जाता था जिसको लोग स्मरण रखने में खुशी महसूस करें तथा जो हर्ष व आनन्द से सम्बन्धित हो। अतः भारतीय परम्पराओं के अनुसार राज्यारोहण की घटना ही संवत् आरम्भ के लिए उचित लगती है। अल्बेरुनी द्वारा वर्णित अनेक संवतों के सन्दर्भ में इस प्रकार की गलत विचारधाराओं का खण्डन उनके सम्बन्ध में उपलब्ध अनेक प्रमाणित स्रोतों के आधार पर किया जा चुका है। अल्बेरुनी बहुत कम समय ही भारत में रहा अतः यहां प्रचलित संवतों व परम्पराओं के विषय में उसको गहराई से जानकारी प्राप्त हो सकी होगी इस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। अतः लक्ष्मण सेन संवत् का आरम्भ भी लक्ष्मण सेन के राज्यारोहण के समय से हुआ होगा न कि मृत्यु के समय से।

इस संवत् का प्रचलन तिरहुत व मिथिला प्रान्तों में रहा। शक व विक्रम संवतों के साथ ही लक्ष्मण सेन संवत् का प्रयोग भी होता रहा है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त व १९वीं के आरम्भ के समय के लेखकों ने लक्ष्मण सेन संवत् के प्रचलन क्षेत्र के संबंध में लगभग समान विचार व्यक्त किये हैं। ओझाजी का विचार है—"यह संवत् पहले बंगाल, बिहार और मिथिला में प्रचलित था। और अब मिथिला में उसका कुछ-कुछ प्रचार है जहाँ इसका आरम्भ माघ शुक्ल १ से माना जाता है।"[1] सीवैल का विचार है: "यह संवत् तिरहुत व मिथिला में प्रचलित है और सदैव शक व विक्रम संवत् के साथ उसका प्रयोग होता है।"[2] कनिंघम[3] व शंकर बालकृष्ण दीक्षित[4] ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं।

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला" अजमेर, १९१८. पृ० १८६।
२. रोबर्ट सीवैल, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४६।
३. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ७६।
४. श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित, "भारतीय ज्योतिष", (हिन्दी अनुवादक—शिवनाथ झारखण्डी), लखनऊ, १९६३, पृ० ४९६।

मिथिला में इस संवत् का आरम्भ किया गया तथा अपने आरम्भ के दिनों में यह बंगाल, बिहार और मिथिला में प्रचलित था। इसके पश्चात् सम्भवतः संवत् का प्रचलन-क्षेत्र सीमित हो गया और यह मिथिला व तिरहुत में प्रचलित रहा। उपरोक्त कथनों से यही बात स्पष्ट होती है तथा कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट में इसका प्रचलन-क्षेत्र मात्र मिथिला ही बताया गया है[1] अर्थात् संवत् का प्रयोग-क्षेत्र निरन्तर घटता रहा है। इसके साथ ही यह कहीं भी मुख्य संवत् के रूप में प्रयोग नहीं हुआ है वरन् शक व विक्रम के साथ क्षेत्रीय संवत् के रूप में ग्रहण किया गया है।

यह संवत् अब प्रचलन में नहीं है, न ही इसकी गणना पद्धति के विषय में स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध हैं। अतः इसके कुल व्यतीत वर्षों अथवा वर्तमान प्रचलित वर्ष बता पाना संभव नहीं।

इस संवत् का प्रयोग राजनीतिक व ऐतिहासिक महत्व के साहित्य के लिए किया गया जैसा कि मिनहाज उससिराज व अब्बुल फजल की पुस्तकों के उपरोक्त आये उद्धरणों से विदित है।

शिव सिंह संवत्

यह संवत् "शिव सिंह संवत्" अथवा मात्र "सिंह संवत्" नामों से जाना जाता है इस संवत् के विषय में जानकारी का मुख्य स्रोत कर्नल जेम्स टॉड द्वारा रचित "ट्रैविल्ज इन वेस्टर्न इंडिया" है। कर्नल टॉड ने काठियावाड़ के दक्षिण में गोहिलों को इस संवत् का प्रवर्तक माना है। भगवान लाल इन्द्रजी का कथन है: "संभवतः ई० संवत् १११३-१११४ (विक्रम संवत् ११६९-७०) में (चालुक्य) जय सिंह (सिद्धराज) ने सोरठ (दक्षिणी काठियावाड़) के (राजा) खेंगार को विजय कर अपने विजय की यादगार में यह संवत् चलाया।"[2] परन्तु इस कथन पर श्री ओझा द्वारा अनेक आपत्तियां लगाई गयी हैं।[3] प्रथम—ई० संवत् १११३-१११४ में ही जय सिंह के खेंगार को विजय करने का कोई प्रमाण नहीं है। दूसरी आपत्ति यह है कि यदि जय सिंह ने यह संवत् चलाया होता तो इसका नाम "जय सिंह संवत्" होना चाहिये थे न कि "सिंह संवत्"

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", नई दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।
२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा अपनी पुस्तक, "भारतीय प्राचीन लिपि-माला", अजमेर, १९१८, पृ० १८२ में उद्धृत।
३. वही, पृ० १८२-८३।

क्योंकि संवतों के साथ उनके प्रवर्तकों के पूरे नाम ही जुड़े रहते हैं। तीसरी बात यह है कि यदि यह संवत् जयसिंह ने चलाया होता तो इसकी प्रवृत्ति के पीछे उसके एवं उसके वंशजों के शिलालेखों तथा दानपत्रों में मुख्य संवत् यही होना चाहिए था। परन्तु ऐसा न होना यही बतलाता है कि यह संवत् जयसिंह का चलाया हुआ नहीं है। काठियावाड़ से बाहर इस संवत् का कहीं प्रचार न होना भी साबित करता है कि यह संवत् काठियावाड़ के सिंह नाम के किसी राजा ने चलाया होगा, जिसका नाम उसके साथ जुड़ा हुआ है। कनिंघम गुजरात के प्रायद्वीप के जैन राजाओं की निष्कासन की तिथि से इस संवत् का आरम्भ मानते हैं।[1] सी० मोबल डफ १९ मार्च, १११३ ई० अथवा ११६९ विक्रम संवत् गुजरात के शिव सिंह संवत् के आरम्भ की तिथि मानते हैं।[2]

मांगरोल की सोढ़डी वाव (बावड़ी) के लेख में विक्रम संवत् १२०२ और सिंह संवत् ३२ आश्विन बदि १३ सोमवार लिखा है जिससे विक्रम संवत् और सिंह संवत् के बीच का अन्तर १२०२—३२ = ११७० आता है।

चौलुक्य राजा भीमदेव के दान पत्र में विक्रम संवत् १२६६ और सिंह संवत् ९६ मार्गशिर शुदि १४ गुरुवार लिखा है। इससे विक्रम संवत् और सिंह संवत् के बीच का अन्तर १२६६—९६ = ११७० आता है।

चौलुक्य अर्जुनदेव के समय के वेरावल के ४ संवत् वाले शिलालेख में विक्रम संवत् १३२० और सिंह संवत् १५१ आषाढ़ कृष्ण १३ लिखा है। उक्त लेख का विक्रम संवत् १३२० कार्तिकादि है इसलिए चैत्रादि और आषाढ़ादि १३२१ होगा जिससे विक्रम संवत् और सिंह संवत् के बीच का अंतर (१३२१—१५१) ११७० ही आता है।

इस संवत् के अधिकांश लेख काठियावाड़ से मिले हैं। इस संवत् का प्रारंभ आषाढ़ शुक्ल १ (अमांत) से है और इसका सबसे पिछला लेख सिंह संवत् १५१ का है। कलेण्डर सुधार समिति द्वारा सिंह संवत् के आरम्भ की तिथि १११३ ई० दी गयी है जो कि पूर्णतया चन्द्रसौर्य पद्धति पर आधारित है। माह अमान्त है। इसका आरम्भ जय सिंह सिद्धराज ने किया।[3] डा० त्रिवेद ने भी

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियम एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ८१।

२. सी० मोबेल डफ, "द क्रोनोलॉजी ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७५, पृ० १३९।

३. "रिपोर्ट ऑफ दी कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

इसे केवल सिंह संवत् के नाम से लिखा है तथा आरम्भ होने का बर्ष भी १११३ ई० अथवा १०३५ शक संवत् दिया है ।[1]

विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर शिव सिंह संवत् के संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि ई० सन् १११३ के करीब इसका आरंभ हुआ । आरंभकर्ता कौन था अथवा किस घटना के संबंध में इस संवत् को चलाया गया इस पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

शिव सिंह संवत् की ऐतिहासिक उपयोगिता इस बात से विदित है कि इसका प्रयोग लेखों के लिए किया गया जो इसके आरम्भकर्ता और आरंभ तिथि के विषय में अनुमान लगाने में विद्वानों की मदद करता है । क्योंकि यह संवत् मात्र क्षेत्रीय ही रहा और एक वंश विशेष से संबंधित था । अतः वंश समाप्ति के साथ ही संवत् भी लुप्त हो गया ।

शाहूर सन्

"शाहूर सन्" को "सूर सन्" और "अरबी सन्" भी कहते हैं । इस सन् का आरंभकर्ता कौन था निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । यह संभावना की जाती है कि देहली का सुल्तान मौहम्मद तुगलक इस संवत् का आरंभकर्ता रहा होगा । इस संवत् को चलाने का कारण शायद नियत महीनों में रबी व खरीफ की फसलों का कर वसूलना था । अर्थात् यह भी फसली संवत् के समान फसल के पकने के सन्दर्भ में ही चलाया गया था । अरबी भाषा में महीने को "शहर" कहा जाता है अतः अनुमान किया जाता है कि "शहर" का बहुवचन "शहूर" है और उसी से "शाहूर" शब्द की उत्पत्ति हुई है । हिजरी सन् के चान्द्र मास इसमें सौर माने यये हैं जिसके सन् का वर्ष सौर के बराबर होता है । और इसमें "मौसम और महीनों" का संबंध बना रहता है । इस सन् में ५९९-६०० मिलाने से ई० संवत् और ६५६-५७ मिलाने से विक्रम संवत् बनता है । इससे पता चलता है कि तारीख १ मुहर्रम हिजरी सन् ७४५ (ई० संवत् १३४४ तारीख १५ मई= वि० संवत् १४०१ ज्येष्ठ शुक्रवार) से (जबकि सूर्य मृगशिर नक्षत्र पर आया था), उसका प्रारंभ हुआ है ।"[2] इसके वर्ष को "मृग साल" भी कहा जाता है क्योंकि इसका नया वर्ष सूर्य के मृगशिर नक्षत्र पर आने के दिन से बैठता है । इसमें

---

१. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ४३ ।

२. हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९१ ।

बहुत से अरबी शब्दों को भी ग्रहण किया गया है। "इस सन् के वर्ष अंकों में नहीं किन्तु अंक सूचक अरबी शब्दों में ही लिखे जाते हैं। मरहठों के राज्य में इस सन् का प्रचार रहा। परन्तु अब तो इसका नाम मात्र रह गया है और मराठी पंचांगों में भी इसका उल्लेख मिलता है।"[1] ज्योतिष परिषद् के नियमानुसार रामचन्द्र पाण्डुरंग शास्त्री मोघे वसईकर के तैयार किए हुए शक संवत् १८४० (चैत्रादि विक्रमी संवत् १६७५) के मराठी पंचांग में वैशाख कृष्ण १३ (अमांत=पूर्णिमांत ज्येष्ठ कृष्ण १३) शुक्रवार को मृगार्क लिखा है और साथ में फसली सन् १३२८, अरबी सन् १३१६, सूर सन् "तिला अशर सल्लासे मया व अल्लफ" लिखा है। (तिला=६, अशर=१०, सल्लासे मया=३००, व= और, अल्लफ=१०००) (ये सब अंक मिलाने से १३१६ होते हैं)।[2]

कलैण्डर रिफोर्म कमेटी जो कि १९५० ई० में भारत सरकार द्वारा भारतीय पंचांगों का अध्ययन करने तथा विभिन्न संवतों के स्थान पर एक राष्ट्रीय पंचांग निर्माण करने के लिए बनाई गई थी कि रिपोर्ट में शाहूर सन् का उल्लेख नहीं है। इसका वर्णन १९१८ ई० में गौरी शंकर ओझा ने लिया है। संभव है ओझा के समय तक इसका प्रचलन महाराष्ट्र में था क्योंकि ओझा ने मराठी पंचांगों से इसके संबंध में उद्धरण दिए हैं तथा अब प्रचलन बन्द हो गया है। इसी से कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट में इसका उल्लेख नहीं है। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका प्रचलन क्षेत्रीय ही रहा होगा।

मौहम्मद तुगलक को नये सुधार करने व नवीन कार्य प्रणालियों को अपनाने वाला माना जाता है। अतः इस सन् का आरंभ भी उसने किया होगा। इसमें अविश्वसनीय जैसी कोई बात नहीं जान पड़ती। चन्द्रीय वर्ष में दो वर्ष १२-१२ माह व तीसरे वर्ष १३ माह होते हैं अतः वर्ष में दो बार भूमि-कर वसूलने के कार्य में असुविधा को देखते हुए इस प्रकार की सौर वर्ष को ग्रहण करना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। इसी समस्या को लेकर और भी बहुत से फसली पंचांगों का प्रचलन बाद में किया गया। अतः यह उचित ही जान पड़ता है कि मौहम्मद तुगलक ने प्रचलित हिजरी चन्द्रीय पंचांग को अरबी सौर पंचांग के साथ ताल मेल विठाकर इस नये पंचांग का आरंभ किया होगा और इस संबंध में श्री ओझा द्वारा उल्लिखित उपरोक्त विवेचन विश्वसनीय जान पड़ता है।

---

१. वही पृ० १६१ (ओझा के पुस्तक लेखन के समय तक यह मराठी पंचांगों में प्रयुक्त होता था)।

२. वही।

पुड़वैप्पु संवत्

इस संवत् का उल्लेख श्री ओझा ने किया है। कोचीन राज्य व डच ईस्ट इण्डिया कंपनी के बीच जो संधि हुई वह तांबे के पांच पत्रों पर खुदी मिली है जिसमें पुड़वैप्पु संवत् ३२२, १४ मीनम् (मीन संक्रान्ति का १४वां दिन=ई० संवत् १६६३ तारीख २२ मार्च) लिखा है। इसी के आधार पर इस सवत् का आरंभिक दिन निकाला जाता है। १६६३—३२२=१३४१ ई० से पुड़वैप्पु संवत् का आरंभ हुआ। श्री ओझा के शब्दों में: "ई० संवत् १३४१ में कोचोन के उत्तर में एक टापू (१३ मील लंबा और १ मील चौड़ा) समुद्र में से निकल आया, जिसे "बीपीन" कहते हैं। उसकी यादगार में वहां पर एक नया संवत् चला जिसको पुण्डुवैप्पु (पुंडु=नई, वेप=आबादी; मलयालम भाषा में) कहते हैं।"[1]

मात्र ओझा ने ही इस संवत् का उल्लेख किया है। इस संबंध में अन्य किसी साक्ष्य से कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है। अतः यही संभावना है कि इसका प्रचलन बीपीन टापू (जिसका उल्लेख श्री ओझा ने किया है) तक ही सीमित रहा होगा। देश के अन्य हिस्सों में प्रचलित नहीं हो पाया। तथा दूसरे अनेक संवतों के समान ही कम समय में ही इसका प्रचलन बन्द हो गया।

तारीख इलाही सवत्

तारीख-ए-इलाही का अर्थ है खुदा का संवत्। क्योंकि इलाही धर्म के साथ ही यह नया संवत् भी आरंभ किया गया था। अतः इसका नाम भी इसी धर्म के नाम पर इलाही संवत् पड़ा। "नौरोज के त्यौहार १५८४ में अकबर ने अपने शक्तिशाली संवत् या ईश्वरीय संवत् का प्रारंभ किया इससे संबंधित सभी चीजें ईश्वरीय थीं।"[2] इस संवत् को महान् अथवा ईश्वरीय संवत् भी कहा जाता है।

अकबर तथा जहांगीर के समय की लिखावटों, सिक्कों तथा ऐतिहासिक ग्रंथों पर इस सन् का अंकन पाया जाता है। लगभग ७२ वर्ष तक यह प्रचलन में रहा। ऐसा समझा जाता है कि शाहजहां ने गद्दी पर बैठते ही इसको समाप्त कर दिया। इलाही संवत् के प्रचलन का क्षेत्र अकबर का शासन क्षेत्र ही था।

---

१. गौरीशंकर ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८६।

२. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४५।

कनिघम ने कुछ साक्ष्यों के आधार पर यह कहा कि ६६२ जबकि हिज्रा के सहस्त्र वर्ष अपने अन्त पर आने लगे तब अकबर ने इलाही संवत् का सूत्रपात किया। उसके एक दरबारी ने स्पष्ट लिखा है कि बड़े से बड़े राजाओं का संवत् भी १००० वर्ष से अधिक नहीं चलता, इसके लिए उसने कुछ संवतों का उदाहरण दिया जो अपने आरंभ के १००० वर्ष बाद समाप्त हो गए।[१]

इलाही संवत् का आरंभ १५८४ ई० से किया गया। परन्तु पूर्व व्यतीत वर्षों की गणना कर इसके आरंभ की तिथि १५५६ में ही निश्चित की गयी जो अकबर के राज्यारोहण की तिथि थी। "बादशाह अकबर ने हिजरी सन् को मिटाकर तारीख-ए-इलाही नाम का नया सन् चलाया जिसका पहला वर्ष बादशाह की गद्दीनशीनी का वर्ष था। वास्तव में यह सन् बादशाह अकबर के राज्य वर्ष २६वें अर्थात् हिजरी सन् ६६२ में आरंभ हुआ अथवा ई० संवत् १५८४ से चला परंतु पूर्व के वर्षों का हिसाब लगाकर इसका प्रारम्भ अकबर के गद्दीनशीनी के वर्ष से मान लिया गया। अकबर की गद्दीनशीनी तारीख २ रबी उस्सानी हिजरी संवत् ६६३ (ई० संवत् १५५६ तारीख ११ मार्च = विक्रम संवत् १६१२ चैत्र कृष्ण अमावस्या) से, जिस दिन कि ईरानियों के वर्ष का पहला महीना फरवरदीन लगा, माना गया है।"[२]

"राज्याभिषेक के २८ दिन बाद अर्थात् बुधवार २८ रबी-उस-सानी ६६३ हिजरी को नौरोजा था। पिछले तथा बुद्धिमान लोग इस बात पर सहमत हैं कि यदि किसी शुभ घटना से नया संवत् आरंभ किया जावे तो उसका आरंभ लगभग नौरोजा से होना चाहिये। यह घटना कुछ आगे या पीछे हुई हो, इसका विचार न किया जाये। अकबर का राज्याभिषेक नौरोजा से २५ दिन पूर्व हुआ था। यद्यपि नये संवत् का आरंभ नौरोजा से ही मान लिया गया। अतः इलाही संवत् का आरम्भ नौरोजा से ही होता है।"[3]

कनिघम, ओझा तथा अब्बुल फजल के उपरोक्त उल्लिखित कथनों का तात्पर्य यही है कि इलाही संवत् का प्रचलन १५८४ में किया गया, लेकिन

---

१. एलैग्जेण्डर कनिघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १६७६, पृ० ८४।

२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १६१८, पृ० १६३।

३. अब्बुल फजल, "अकबरनामा" (हिन्दी अनुवादक मथुरा लाल शर्मा), ग्वालियर, पृ० १५२।

इसकी गणना तिथि १५५६ ई० है जो कि अकबर के सिंहासनारोहण की तिथि भी मानी गयी।

यह बात अनेक संवतों में सामान्य रूप से पायी जाती है। अनेक भारतीय संवत् कलि, युधिष्ठिर, मौर्य, गुप्त आदि तथा ईसाई संवत् का आरंभ भी उस तिथि से काफी बाद में किया गया जब से कि उनकी गणना की तिथि मानी जाती है। ईसाई संवत् में तो यह समयान्तर १००० वर्षों का समझा जाता है। डा० त्रिवेद[1] का मत है कि ईसाई संवत् की १००० वर्ष बीतने पर उस संवत् की गणना आरंभ की गयी।

इलाही संवत् अब प्रचलन में नहीं है। न ही पंचांगों में इसका उल्लेख मिलता है। अतः इसके वर्तमान प्रचलित वर्ष को निश्चित रूप से बाता पाना संभव नहीं। हम केवल इस आधार पर कि यह सौर पद्धति पर आधारित संवत् था इसके वर्तमान प्रचलित वर्ष के संबंध में अनुमान लगा सकते हैं। सौर गणना में वर्ष में दिनों की संख्या ३६५ रहती है तथा प्रत्येक चौथा वर्ष ३६६ दिन का होता है। यदि इलाही संवत् को पूर्ण रूप से इसी पद्धति पर आधारित मान लिया जाये तब ११ मार्च १५५६ से आरंभ होकर अब तक इस संवत् के ४३३ वर्ष बीत चुके हैं क्योंकि ईसाई संवत् के वर्तमान प्रचलित वर्ष १९८९—१५५६=४३३ आता है।

इलाही संवत् का आरंभकर्ता मुगल बादशाह अकबर था। यह निर्विवाद है। अकबर के समय में लिखित साहित्य व इतिहास से इसके विषय में पर्याप्त उल्लेख मिलता है तथा इस संवत् के आरम्भ की तिथि भी १५५६ ई० विद्वानों द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकार की गयी है। राहुल सांकृत्यायन[2], आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[3], कनिंघम[4], डी०एस० त्रिवेद[5] ने ११ मार्च १५५६ ई० की तिथि

---

१. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ३१।

२. राहुल सांकृत्यायन, "अकबर", इलाहाबाद, १९५७, पृ० ३२०।

३ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, "अकबर महान्", (अनुवादक भगवानदास गुप्ता), आगरा, १९६७, पृ० ३१८।

४. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ८४।

५. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० ५५।

इलाही संवत् आरंभ की तिथि दी है। लेकिन एल०डी० स्वामी पिल्लैयी[1] व रोबर्ट सीवैल[2] ने १४ फरवरी १५५६ की तिथि यानी है।

इलाही संवत् का आरंभ अनेक महत्वपूर्ण उद्देश्यों को लेकर किया गया था। सर्वप्रथम अकबर को हिज्रा (पलायन) शब्द पसन्द नहीं था। अतः हिज्रा के स्थान पर इलाही शब्द ग्रहण किया गया। परन्तु प्रारंभ में अकबर उन धर्मान्ध लोगों को, जो इस संवत् (हिज्रा) तथा इस्लाम धर्म की अभिन्नता में विश्वास करते थे, नाराज नहीं करना चाहता था। इस संवत् को अपनाने के संबध में कुछ कारण ये भी माने जा सकते हैं—प्रथम, हिज्री संवत् का त्रुटिपूर्ण होना, दूसरा सभी धर्मों, सम्प्रदायों व संपूर्ण राज्य में अकबर की एकरूपता लाने की इच्छा, अकबर द्वारा अपनी व अपने साम्राज्य की विशिष्टता प्रदर्शित करने की भावना, चौथे अकबर द्वारा स्थापित नवनिर्मित धर्म इलाही धर्म को अधिक लोकप्रिय बनाना भी संभवतः इस नये संवत् की स्थापना का उद्देश्य था।

नया संवत् ग्रहण करना इसीलिए महत्वपूर्ण था "क्योंकि अभी तक जो हिजरी वर्ष का राज पंचांग प्रचलित था, उससे जनसाधारण और सरकार को बड़ी असुविधा होती थी। हिजरी वर्ष चन्द्र वर्ष है और सौर वर्ष से १०-११ दिन छोटा होता है। यह फसलों के समय से भी मेल नहीं खाता। इससे वर्ष में १०-११ दिन कम रह जाने से २९ सौर वर्षों के चक्र में ३० हिजरी वर्ष होते हैं। फलस्वरूप किसानों को २९ वर्ष के बजाय ३० वर्ष की मालगुजारी देनी पड़ती थी।"[3] अतः इस व्यवस्था को समाप्त कर अकबर किसानों को इस अनीति से बचाना चाहता था। इसके अतिरिक्त उस समय भारत में अनेक संवत् हिजरी, पारसी, विक्रमी, शक, फसली आदि प्रचलित थे जो गणना में असुविधा उत्पन्न करते थे। अतः अकबर ने सब राजकीय कार्यों के लिए सौर गणना पर आधारित पारसी वर्ष को ग्रहण किया।

अपने समय के अन्य प्रचलित संवतों के मुकाबले इलाही संवत् का महत्व इस कारण अधिक है क्योंकि यह जिन उद्देश्यों को लेकर आरंभ किया गया उनमें इसने काफी सफलता पायी। संभवतः यह पहला भारतीय संवत् था जो

---

१. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४५।
२. रोबर्ट सीवैल, "इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४६।
३. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, "अकबर महान्", (अनुवादक भगवान दास गुप्ता), भाग-१, आगरा, १९६७, पृ० ३१८।

राजनीतिक व धार्मिक उद्देश्यों के लिए साथ-साथ व्यवहार में लाया गया और अपने आरंभ से ही इसने इन दोनों उद्देश्यों को पूरा किया।

जिस भाँति इलाही धर्म के सहयोगी के रूप में इलाही संवत् का सूत्रपात किया गया था उसी भाँति इलाही धर्म के साथ ही यह संवत् भी लुप्त हो गया। संभवतः इसका कारण बाद के शासकों का इलाही धर्म में अविश्वास ही था। अतः उन्होंने इस धर्म से संबंधित संवत् को भी कोई महत्व नहीं दिया। इलाही धर्म व इलाही संवत् दोनों ही अकबर के जीवनकाल तक ही प्रभावपूर्ण रहे, बाद में समाप्त हो गए।

पूर्व प्रचलित चन्द्रीय कलैण्डर में इस संवत् के अन्तर्गत काफी परिवर्तन किया गया। तिथियों की भिन्नता को मिटाने व नवीन तालिकायें बनाने का कार्य इसमें हुआ। चन्द्रीय पंचांग को हटाकर सौर पंचांग अपनाया गया, ईरानी महीनों के नाम ग्रहण किये गये तथा लौंद के माह को हटाकर महीनों में दिनों की संख्या बढ़ा दी गयी। "इलाही सन् के १२ महीनों के नाम इस प्रकार है—फरवरदीन, उर्दिबहिश्त, खुर्दाद, तीर, अमरदाद, शहरेवर, मेहर, आवांआजर, दे, बहमन्, अस्फंदिआरमद। ये ईरानियों के यज्दजर्द सन् से लिए गए हैं।[1] इलाही संवत् में दिनों, तारीखों अथवा तिथियों को अंकों में न लिखकर प्रत्येक के लिए अलग-अलग नाम दिये गये हैं तथा उनके नाम ही लिखे जाते थे। इलाही सन् के महीने कुछ २९ दिन के, कुछ ३०, कुछ ३१ तथा एक ३२ दिन का भी माना जाता था तथा वर्ष ३६५ दिन का होता था एवं चौथे वर्ष एक दिन और जोड़ दिया जाता था। "एक से ३२ तक दिनों के नाम इस प्रकार थे—(१) अहूर्वज्द, (२) बहमन, (३) उर्दिबहिश्त, (४) शहरेवर, (५) स्पंदारमद, (६) खुर्दाद, (७) मुरदाद, (८) देपादर, (९) आजद (आदर), (१०) आवा, (११) खुरशेद, (१२) माह, (१३) तीर, (१४) गोश, (१५) देपमेहर, (१६) मेहर, (१७) सरोश, (१८) रश्नह, (१९) फरवरदीन, (२०) वेहराम, (२१) राम, (२२) गोवाद, (२३) देपदीन, (२४) दीन, (२५) अर्द, (२६) आस्ताद, (२७), आस्मान्, (२८) जमिआद, (२९) मेहरेस्पंद, (३०) अनेश, (३१) रोज, (३२) शब। इनमें से ३० तक के नाम तो ईरानियों के दिनों के ही हैं और अंतिम दो नये रखे गये हैं।"[2]

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १९३।

२. राहुल सांकृत्यायन, "अकबर", इलाहाबाद, १९५७, पृ० ३२०।

इलाही संवत् भारतीय संवतों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि इसकी समाप्ति शीघ्र ही हो गयी फिर भी उस समय की आवश्यकतानुसार इसके अन्तर्गत पंचांग का जो सौर पद्धति पर आधारित स्वरूप निर्धारित किया गया वह महत्वपूर्ण था जो कि पूर्व प्रचलित चन्द्रीय गणना से अधिक सुविधाजनक था।

जुलूसी सम्वत्

इस संवत् का प्रचलन भी मुगल बादशाह अकबर द्वारा किया गया। संवत् का नाम जुलूसी क्यों पड़ा, यह अज्ञात है। संभवत: अन्य दूसरे संवतों के समान ही इसका नाम भी इसके आरम्भकर्ता जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर के नाम से संबंधित हो। अकबर ने इलाही सम्वत्, फसली व जुलूसी तीन सम्वतों का आरंभ किया। इसमें इलाही तो दीन इलाही धर्म के नाम पर इलाही संवत् कहलाया, दूसरा फसल का लगान वसूलने तथा कृषि संबंधी कार्यों से संबंधित था अत: फसली कहलाया। इन दोनों ही के साथ अकबर के नाम का कोई संबंध नहीं था। इस परिस्थिति में हो सकता है अपने नाम से संबंधित एक संवत् चलाने की इच्छा अकबर की रही हो तथा इस सन्दर्भ में जुलूसी संवत् चलाया गया हो, क्योंकि भारतीय इतिहास में यह परम्परा सी बन गयी थी कि जो भी शासक अपने साम्राज्य को सुदृढ़ व सुव्यवस्थित महसूस करता था वह अपनी शक्ति-प्रदर्शन के लिए अपने नाम अथवा अपने वंश के नाम पर एक नये संवत् का आरंभ करता था। अत: यह संभावना है कि अकबर द्वारा अपनी शक्ति प्रदर्शन के उद्देश्य से अपने नाम से जुड़े इस जुलूसी संवत् का आरंभ किया गया हो।

जुलूसी संवत् का प्रचलन क्षेत्र भी अकबर का शासन क्षेत्र ही माना जा सकता है तथा अकबर के शासकीय कार्यों में इसका प्रयोग किया गया होगा। इससे बाहर नहीं। इस संबंध में यही अनुमान किया जा सकता है क्योंकि जुलूसी संवत् के प्रचलन क्षेत्र के संबंध में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

इस संवत् का आरंभकर्ता अकबर था। इस संबंध में कपिल भट्ट का कथन है: "अकबर ने जुलूसी नामक एक अजीब संवत् चलाया। यह संवत् शासन का एक वर्ष समाप्त करके मनाया जाता था। यह आवश्यक नहीं था कि राजगद्दी पर बैठक की तिथि से ही जुलूसी संवत् प्रारंभ हो।"[1]

---

१. कपिल भट्ट, "कादम्बनी" (हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन) दिल्ली, अप्रैल, १९८६, पृ० ८७-८८।

अकबर द्वारा आरंभ किये गये इस संवत् को दूसरे मुगल बादशाहों ने भी ग्रहण किया। "बाद में अन्य मुगल बादशाहों ने भी इस परिपाटी को जारी रखा।"[१]

राज-शक संवत्

मराठा शासक शिवाजी ने अपने राज्यारोहण के समय "राज्याभिषेक शक" नामक संवत् का सूत्रपात किया। "राज्याभिषेक संवत्" को दक्षिणी लोग "राज्याभिषेक शक" या "राज्य शक" कहते हैं। मराठा राज्य के संस्थापक प्रसिद्ध शिवाजी के राज्याभिषेक के दिन अर्थात् गत शक संवत् १५९६ (गत चैत्रादि विक्रमी संवत् १७३१) आनन्द संवत्सर ज्येष्ठ शुक्ला १३ (तारीख जून ईस्वी संवत् १६७४) से चला था। इसका वर्ष ज्येष्ठ शुक्ला १३ से पलटता था और वर्तमान ही लिखा जाता था। इसका प्रचार मराठों के राज्य में रहा।"[२]

इसको "राज-शक" तथा "राज्याभिषेक शक" दोनों नामों से जाना जाता है। इसके साथ "शक" का प्रयोग एक संवत् का द्योतक है। "शक संवत्" विशेष से यह संबंधित नहीं है। रौबर्ट सीवैल[3], एल०डी० स्वामी पिल्लैयी[४], जदुनाथ सरकार[५], तथा ग्राण्ट डफ[६] आदि विद्वानों ने राजशक संवत् के आरंभ के लिए १६७३-७४ ई० की तिथि का समर्थन किया है। यही तिथि शिवाजी के राज्याभिषेक के लिए मान्य है। शिवाजी के राज्य महाराष्ट्र में इसका प्रचलन रहा तथा शिवाजी के शासन काल व उसके काफी वर्षों बाद तक भी संवत् का प्रयोग किया गया। परन्तु अब यह प्रचलन में नहीं है। इसको शिवाजी के राज्याभिषेक का वर्ष माना है। शिवाजी के राज्यारोहण १६७३

---

१. कपिल भट्ट "कादम्बनी" (हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन) दिल्ली, अप्रैल, १९८६, पृ० ८८।
२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर, १९१८, पृ० १८६-८७।
३. रौबर्ट सीवैल, "द इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४७।
४. एल०डी० स्वामी पिल्लैयी, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", मद्रास, १९११, पृ० ४५।
५. जदुनाथ सरकार, "शिवाजी और उनका काल", (अनु० मदन लाल जैन), आगरा, १९६४, पृ० ४०३।
६. ग्राण्ट डफ, "मराठों का इतिहास", (अनु० कमलाकर तिवारी), इलाहाबाद, १९६५, पृ० १५३।

ई० से राजशक संवत् का आरंभ हुआ। इसके वर्ष का आरंभ ज्येष्ठ सुदी १३ से होता है तथा माह अमान्त (चन्द्र) है। यह संवत् महाराष्ट्र में प्रचलित हुआ।[1]

इस संवत् को भी भारतीय संवतों की उसी श्रेणी में रखा जा सकता है जिनका आरंभ राजनैतिक शक्ति के प्रदर्शन के उद्देश्य से किया गया तथा आरंभकर्ता की शक्ति के ह्रास के साथ ही संवत् का महत्व भी घट गया व कुछ समय बाद संवत् का प्रचलन लुप्त हो गया। शिवाजी ने नये स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। अतः अपनी शक्ति के चर्मोत्कर्ष को दर्शाने के लिए प्रतीक रूप में "राज-शक संवत्" की स्थापना की।

राज-शक संवत् की गणना पद्धति के संदर्भ में यह नवीनता लाने का प्रयास हुआ कि इसके नये वर्ष का आरंभ हिन्दू पंचांग के ज्येष्ठ माह की शुक्ला १३वीं तिथि से किया जाता था, जैसा कि ओझा के कथन से विदित है। इसके अतिरिक्त इस संदर्भ में विशेष उल्लेख नहीं मिलता कि इसके लिए पूर्व गणना पद्धति से पृथक कोई नवीन तत्व ग्रहण किये गये। अतः यही माना जा सकता है कि यह पूर्व प्रचलित हिन्दू गणना पद्धति पर ही आधारित था।

विविध संवत्

अब इनके अतिरिक्त कुछ संवत् ऐसे भी हैं जिनका नाम ही पता चलता है, इनके विषय में जानकारी के स्रोत नगण्य हैं। इस प्रकार के कुछ संवतों का वर्णन यहां किया जायेगा। यद्यपि तिथिक्रम के अनुसार इनका उल्लेख पहले ही हो जाना चाहिए था लेकिन इनके विषय में प्राप्त अल्प जानकारी व कोई भी निश्चित तथ्य उपलब्ध न होने के कारण इनका पृथक-पृथक शीर्षकों से उल्लेख न करके यहां परिचय दिया गया है।

डॉ० अरुण ने "सुमनितन्त्र" नामक ग्रंथ के आधार पर कुछ संवतों का उल्लेख इस प्रकार किया है : "सुमतितन्त्र नामक ग्रन्थ की रचना सन् ५७६ के आसपास की गयी। इसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। इस ग्रंथ में लिखने की तारीख दी है—युधिष्ठिर राज्याब्द २०००, नन्द राज्याब्द ८००, चन्द्र गुप्त राज्याब्द १३२, शुद्रकदेव राज्याब्द २४७, शक राज्याब्द ४९८।"[2] इस उद्धरण में तीन ऐसे संवतों का नाम आया है जिनका अभी इस शोध प्रबन्ध

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।
२. डा० अरुण, "भारतीय पुरा इतिहास कोष", १९७८, पृ० ८५७।

में उल्लेख नहीं हुआ है। (१) नन्द राज्याब्द (२) चन्द्रगुप्त राज्याब्द तथा (३) शूद्रक देव राज्याब्द।

नन्द राज्याब्द की तिथि ५७६ ई० में, ग्रन्थ रचना के समय ८०० दी गयी है अर्थात् ८००—५७६=२२४ ई० पूर्व नन्द राज्याब्द का आरंभ माना जा सकता है। इस संवत् का संबंध यदि महापद्मनन्द के समय से जोड़ा जाये तब इसके आरंभ का समय ३५० ई० पूर्व के लगभग आना चाहिए। २२४ ई० पूर्व नहीं। डी०एस० त्रिवेद भवदास कृत संवत् का आरंभ महापद्मनन्द के समय से मानते हैं। "भवदास कृत संवत् का कलियुग संवत् १४६५, ई० पूर्व १६३६ में आरंभ हुआ इसका आरंभ महापद्मनन्द के समय से होता है तथा वाररुचि, पाणिनी व कात्यायन से इसका उल्लेख मिलता है।"[1]

उपरोक्त उल्लिखित दोनों साक्ष्यों में महापद्मनन्द के समय में १६३६—२२४=१४१२ वर्षों का अन्तर है। इन दोनों साक्ष्यों में उल्लिखित संवतों के साथ नन्द का नाम आया है। इसी आधार पर इसको महापद्मनन्द से ही संबंधित माना जा सकता है। इस समयान्तर का कारण डा० त्रिवेद द्वारा भारतीय इतिहास के संबंध में दी गयी नवीन विचारधारायें व तिथियां हैं। डा० त्रिवेद ने नन्दवंश का शासन काल १६३६ से १५३६ ई० पूर्व निश्चित किया है। इसी आधार पर महापद्मनन्द के संवत् का आरंभ १६३६ ई० पूर्व दिया है, जबकि दूसरे विद्वान् रमेश चन्द्र मजूमदार[2], हरिशंकर कोटियाल[3], रमाशंकर त्रिपाठी[4] आदि अनेक आधुनिक विद्वान् नन्द वंश का शासनकाल ३५० ई० पूर्व के लगभग मानते हैं। इन तथ्यों के आधार पर नन्द संवत् की स्थापना ३५० ई० पूर्व के लगभग होनी चाहिए।

---

१. डी० एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० १८।

२. "नन्द वंश का अन्त ३२२ ई० पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य ने किया।" रमेश चन्द मजूमदार, "प्राचीन भारत", दिल्ली पुनर्मुद्रण, १९८६, (१९६२), पृ० ८३।

३. हरिशंकर कोटियाल, 'मौर्यकाल', "प्राचीन भारत का इतिहास", झा एवं श्रीमाली (सम्पादक) दिल्ली, १९८४ (१९८१), पृ० १७४।

४. "३४३ ई० पूर्व से ३२१ ई० पूर्व में नन्द वंश का शासन काल रहा।" रमाशंकर त्रिपाठी, "प्राचीन भारत का इतिहास", दिल्ली, १९८५, पृ० १०८।

"सुमतितन्त्र" नामक ग्रन्थ से चन्द्रगुप्त राज्याब्द की तिथि ई० ५७६ में १३२ पता चलती है अर्थात् ५७६—१३२=४४४ ई० में चन्द्रगुप्त राज्याब्द का आरंभ हुआ। इस संवत् के चन्द्रगुप्त का समीकरण यदि गुप्त वंशी चन्द्रगुप्त द्वितीय से किया जाये तब इस संवत् का आरंभ ३७६ ई० से होना चाहिए जो कि लुनिया के अनुसार[1] चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि है। इस प्रकार चंद्र गुप्त के राज्यारोहण व सुमतितन्त्र के चन्द्रगुप्त राज्याब्द की तिथि में ६८ वर्षों का अन्तर रह जाता है। इस अन्तर को देखते हुए यही लगता है कि यह गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त नहीं वरन् और कोई चन्द्रगुप्त है, जिसके संवत् का उल्लेख सुमतितन्त्र में हुआ है।

५७६ ई० में शुद्रक देव राज्याब्द की तिथि २४७ दी गई है अर्थात् ५७६—२४७=३२९ ई० से शुद्रक देव राज्याब्द का आरंभ हुआ माना जा सकता है। इस नाम के किसी प्रतिष्ठित शासक का उल्लेख ३२९ ई० के करीब के इतिहास से नहीं मिलता है। अनुमानतः यह कोई क्षेत्रीय शासक रहा होगा, जिसने इस संवत् की स्थापना की।

कुमाऊं क्षेत्र में प्रचलित अनेक संवतों के साथ ही श्री झुले लाल जयन्ती व श्री गुरु नानक जयन्ती के कुल व्यतीत वर्षों का उल्लेख किया जाता है। इनकी गणना भी महावीर व बुद्ध जयन्ती की भांति एक संवत् के रूप में ही की जाने लगी है यद्यपि इनके नाम के साथ अभी संवत् शब्द नहीं जुड़ा है।

"श्री झूले लाल जयन्ती १०३६, जो विक्रम संवत् २०४३ तथा शक १९०८ के बराबर है।"[2] अर्थात् १९८६ ई० के बराबर है। इस प्रकार इसका आरंभ ९५० ई० से हुआ।

"श्री गुरू नानक जयन्ती ५१७, जो विक्रम संवत् २०४३ व शक संवत् १९०८ के बराबर है।"[3] अर्थात् १९८६ ई० के बराबर है। इस प्रकार इसका आरंभ १४६९ ई० से हुआ।

---

१. बी०एन० लुनिया, "गुप्त साम्राज्य का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास", इन्दौर, १९७४, पृ० २९०-९१।

२. नव वर्ष मंगलमय हो, "नव वर्ष बधाई पत्र", विश्व हिन्दू परिषद् कुमाऊं विभाग, विक्रम संवत् २०४३, शालीवाहन संवत् १९०८।

३. वही।

इन संवतों के आरंभकर्ता, गणना-पद्धति आदि के संबंध में उल्लेख नहीं मिलता है। अतः ये मात्र वर्ष गणना है तथा अन्य जयन्तियों की भांति सिर्फ ० वर्ष से वर्षों की गणना आरंभ की गई। अलग से किसी गणना पद्धति अथवा पंचांग का विकास नहीं हुआ है। इनके वर्ष की गणना सौर वर्ष में ही है क्योंकि इनका वर्ष शक संवत् के बराबर है, जिसका वर्ष लौंद के बाद सौर वर्ष की लम्बाई का हो जाता है।

चतुर्थ अध्याय

विभिन्न सम्वतों का पारस्परिक सम्बन्ध व वर्तमान अवस्था

पिछले दो अध्यायों में धर्मों से जुड़े व्यक्तियों से संबंधित संवत्, अध्याय दो तथा ऐतिहासिक घटनाओं से आरंभ होने वाले संवत् अध्याय तीन में वर्णित हुए हैं। इन संवतों के आरम्भकर्ता, आरम्भिक समय व गणना में भिन्नता होते हुए भी अनेक समानतायें हैं। धर्मचरित्रों से संबंधित संवतों की सामान्य प्रवृत्तियों को इस प्रकार देखा जा सकता है।

इन संवतों का संबंध धर्म प्रचारकों, धर्म प्रवर्तकों अथवा आध्यात्मिक व्यक्तियों से है जिन्हें भगवान मान लिया गया है। जैसे कृष्ण संवत्, बुद्ध निर्वाण संवत्, महावीर निर्वाण संवत्, ईसवी संवत् हिजरी संवत् तथा बहाई संवत्।

इनके आरंभ के संबंध में दी गयी तिथियां बहुत-बहुत अन्तर वाली हैं। इनमें अधिकतर संवतों का आरंभ तो अब से कुछ शताब्दी पूर्व ही निश्चित किया गया है लेकिन उनकी गणना का समय हजारों, करोड़ों वर्ष पूर्व माना गया है। अतः धर्म ग्रंथों में वर्णित कथायें व धार्मिक साहित्य ही इन संवतों के आरंभिक समय निर्धारण का आधार है जिनमें हजारों वर्ष का अन्तर सहज ही आ गया है। एक संवत् के आरंभ के संबंध में अनेक तिथियां तो दी ही गयी हैं इसके साथ ही एक ही विद्वान द्वारा एक संवत् के आरम्भ के लिए अलग-अलग तिथियां दी गई हैं। बुद्ध निर्वाण संवत् के लिए लगभग ५० तिथियां विभिन्न विचारकों ने दी हैं। साथ ही एक विद्वान ने इस सम्बन्ध में अलग-अलग तिथियां दी हैं। केन[1] ने ३६८, ३७०, ३८०, ३८८ ई० पूर्व तथा त्रिवेद ने १७९०, १७९३ ई० पूर्व की तिथियां बुद्ध निर्वाण के लिए दी हैं।[2]

---

१. डी०एस० त्रिवेद द्वारा उद्धृत, "भारत का नया इतिहास", वाराणसी, तिथि नहीं, पृ० १२।

२. डी०एस० त्रिवेद, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई, १९६३, पृ० १७।

धर्म चरित्रों से संबंधित संवतों के प्रचलन क्षेत्र के लिए किसी भू-क्षेत्र का नाम नहीं लिया जा सकता वरन् इनका प्रचलन धर्म विशेष व सम्प्रदाय विशेष से है। धर्म अनुयायियों के देश-विदेश में बसने व धर्म के प्रसार के साथ ही इन संवतों का प्रचलन-क्षेत्र भी बढ़ता रहा है।

इन संवतों को सम्प्रदायों द्वारा सामूहिक रूप में ग्रहण किया गया है। अतः इनके आरम्भकर्ता के रूप में किसी विशिष्ट व्यक्ति का नाम नहीं लिया जाता। महावीर निर्वाण, बुद्ध निर्वाण, महर्षि दयानन्दाब्द आदि संवतों को इनके अनुयायियों द्वारा सामूहिक रूप से मनाया जाता है तथा इन्हें कब संवत का नाम दे दिया गया इस संदर्भ में साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं।

इन धर्म चरित्रों से संबंधित संवतों का धार्मिक महत्व ही अधिक है, शेष कार्यों राजनीति, अभिलेखीय अथवा इतिहास लेखन के लिए इनका प्रयोग नगण्य ही रहा है। इन संवतों का एक प्रयोग खगोलशास्त्रीय व पंचांग निर्माण के लिए भी रहा है। कलि संवत् के संबंध में एक कथन इसकी पुष्टि करता है : "इसका प्रयोग खगोलशास्त्रीय तथा पंचांग निर्माण दोनों कार्यों में हुआ है।···इसका प्रयोग बहुधा शिलालेखीय कार्यों के लिए नहीं हुआ है।"[१]

इन संवतों (भारतीय संवतों) के सन्दर्भ में पृथक-पृथक गणना पद्धति का उल्लेख नहीं मिलता तथा जो विदेशों से आये संवत् हैं और उन्हें भारतीय इतिहास में ग्रहण कर लिया गया इनके लिए अलग गणना पद्धति का प्रयोग हुआ है। हिन्दू धर्म के संबंधित संवतों का आधार वैदिक गणना पद्धति है। ईसाई के लिए सौर वर्ष व हिज्रा के लिए चन्द्रीय वर्ष का प्रयोग हुआ है। बाद में इन पद्धतियों में बहुत से सुधार भी होते रहे हैं।

इन धार्मिक संवतों के आरम्भ का मुख्य उद्देश्य धर्म-नेताओं व देवताओं को प्रतिष्ठित करना व दूसरे धर्मों से अपने धर्म को अधिक प्राचीन दर्शाना रहा है।

इन संवतों का नामकरण धर्म आरम्भकर्ता के जीवन की किसी घटना अथवा किसी देवी देवता के नाम पर अथवा धर्म के नाम पर हुआ है। संवत् का नाम सुनकर ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह किस धर्म से संबंधित है।

इनमें अनेक संवतों के संबंध में यह शंका रहती है कि उनका प्रचलित वर्ष लिखा गया है या व्यतीत। क्योंकि बहुत से संवतों का प्रचलित वर्ष लिखने की

१. रोबर्ट सीवैल, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४०-४१।

प्रथा रही व बहुतों की व्यतीत वर्ष लिखने की तथा कभी-कभी एक ही संवत् का कहीं प्रचलित वर्ष लिखा है व कहीं व्यतीत, तो कहीं दोनों ही। जहां संवत् के प्रचलित व व्यतीत वर्ष साथ-साथ लिखे मिलते हैं वहां कठिनाई नहीं है। लेकिन चालू व व्यतीत वर्षों के अकेले लिखे होने पर उनकी पहचान मुश्किल हो जाती है। कलि संवत् के चालू व्यतीत व दोनों साथ-साथ लिखे वर्ष मिलते हैं। "कभी इसका गुजरा वर्ष तथा कभी चालू वर्ष दिया गया है व कभी-कभी दोनों साथ-साथ दिये गये हैं।"[1]

ये कुछ विशिष्टतायें ऐसी हैं जो लगभग सभी धार्मिक संवतों में पायी जाती हैं। चाहे वे किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्धित हों।

धर्म चरित्रों से संवत् का आरम्भ जोड़ने के अतिरिक्त भारत में संवत् आरम्भ का सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से जोड़ने की प्रथा भी थी। इस प्रवृत्ति ने संवतों की एक बड़ी संख्या को जन्म दिया। इन संवतों की कुछ विशिष्टतायें थीं जो एक-दूसरे से मेल खाती थीं तथा इनकी विशिष्टतायें धर्म चरित्रों से सम्बन्धित संवतों से थोड़ी पृथक् थीं।

संवतों की उत्पत्ति के कारणों में समानता थी। अधिकांश संवतों का आरम्भ राजाओं द्वारा शक्ति प्रदर्शन व आत्मिक प्रतिष्ठा को लेकर किया गया। संवतों की उत्पत्ति के समय के सन्दर्भ में विवाद है जो अधिकतर संवतों में पाया जाता है। आरम्भकर्ता के सन्दर्भ में विवाद भी अधिकांश संवतों की सामान्य प्रवृत्ति है। इन संवतों की एक विशिष्टता यह है कि इनका नाम आरम्भकर्ता के नाम पर पड़ा है। भारतीय संवतों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह प्रवृत्ति बहुतायत से पायी जाती है कि जिस घटना, वर्ष व समय से उनका आरम्भ माना जाता है उसके काफी समय बाद संवत् का आरम्भ किया गया तथा गणना का समय वही माना गया जिस समय घटना घटित हुई। यह प्रवृत्ति न केवल भारतीय संवतों में वरन् विश्व के अनेक प्रमुख संवतों में रही है। क्रिश्चियन संवत् का आरम्भ इस संवत् की १०वीं शताब्दी से माना जाता है।

इन संवतों का प्रयोग राजनीतिक व धार्मिक कार्यों के लिए साथ-साथ हुआ। शक व विक्रम दो संवत् ऐसे रहे जिनका प्रयोग धर्म, राजनीति, साहित्य, अभिलेख अंकन व दैनिक व्यवहार के लिए हुआ। पंचांग निर्माण के लिए बहुत कम संवतों का प्रयोग हुआ है।

---

१. रोबर्ट सीवैल, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन, १८९६, पृ० ४०-४१।

भारतीय संवतों की एक मुख्य समानता उनका समान गणना पद्धति पर आधारित होना है। भारतीय संवतों में गणना के लिए नक्षत्र पद्धति, चन्द्रमान, सौर मान व चन्द्रसौर मान की मिश्रित पद्धति को अपनाया गया।

जब किसी नक्षत्र विशेष अथवा तारों के समूह के एक निश्चित अवधि वाले चक्र को समय-गणना के लिए अपनाया जाता है तो वह नक्षत्र पद्धति कहलाती है। इसके अन्तर्गत बृहस्पतिमान (१२ वर्षीय चक्र व ६० वर्षीय चक्र) सप्तर्षि चक्र व परशुराम का चक्र पद्धतियां आती हैं। बृहस्पति चक्र व सप्तर्षि चक्र (लौकिक संवत् के रूप में काश्मीर में) अब भी भारत में प्रचलित हैं।

जिन संवतों में वर्ष व महीनों की लम्बाई चन्द्र-चक्र के आधार पर निर्धारित की जाती है वे चन्द्रीय पंचांग अथवा संवत् कहलाते हैं। भारत में प्रचलित विक्रम व हिजरी संवत् इसी पद्धति आधारित हैं। इस पद्धति में "वर्ष में १२ चन्द्रमास होते हैं जो क्रमशः ३० व २६ दिन के होते हैं। अतः साधारण वर्ष ३५४ दिन का होता है। यह ३० वर्षीय चक्र है तथा इसमें २, ५, ७, १०, १३, १६, १८, २१, २४, २६ व २९वां वर्ष लौंद के होते हैं जिनमें अन्तिम महीना २६ के स्थान पर ३० दिन का होता है तथा वर्ष ३५५ दिन का होता है।"[१] इस प्रकार प्रत्येक ३० महीने बाद इस पद्धति में एक माह लौंद का होता है।

जिन संवतों में वर्ष व महीनों की लम्बाई सूर्य-चक्र पर निश्चित की जाती है वह सौर गणना वाले संवत् कहे जाते हैं। सूर्य १२ राशियों का पूरा एक चक्र करीब ३६५ दिन में पूरा करता है। इसी अवधि को वर्ष की लम्बाई माना जाता है तथा इसको १२ सौर माहों में बांटा जाता है। "सूर्य वर्ष की सही लम्बाई ३६५.२५८७५६ दिन है।"[२] तथा "सूर्य सिद्धान्त में महीने के दिनों की संख्या २६ से ३२ तक हो सकती है।"[३] "चन्द्र वर्ष सौर वर्ष से १०.८९१७०१ दिन छोटा है। इस प्रकार सौर वर्ष से लगभग ११ दिन प्रति वर्ष पीछे रह जाता है।"[४]

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ६६।

२. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २४६।

३. वही, भूमिका।

४. वही, पृ० २४६।

फसली, इलाही, शाहूर व वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग के लिए सौर वर्ष को ही अपनाया गया। ईसाई संवत् भी इसी पद्धति पर आधारित है।

वर्तमान समय में अधिकांश भारतीय धार्मिक पंचांगों के लिए चन्द्रसौर की मिश्रित पद्धति को अपनाया जाता है। यह गणना की विस्तृत पद्धति है। इसमें वर्ष सूर्य के अनुसार जबकि मास चन्द्र गति से नियंत्रित होते हैं। प्रत्येक तीसरे वर्ष लौंद का वर्ष होता है। इसमें वर्ष का आरम्भ चैत्र माह के बीच से होता है। "उत्तर में चन्द्रसौर वर्ष का आरम्भ चैत्र शुदि प्रथम अर्थात् नये चन्द्र से आरम्भ होता है। हिन्दू वर्ष में यह विचित्र नियमविरुद्धता पायी जाती है कि माह के बीच से बर्ष का आरम्भ होता है। चैत्र का प्रथम अर्द्ध भाग अर्थात् बदि अथवा कृष्ण पक्ष तो गुजरे हुए वर्ष में आता है, माह के अंतिम १५ दिन नये वर्ष में गिने जाते हैं जिन्हें शुदि अथवा शुक्ल पक्ष कहा जाता है।"[1] (यह प्रथा अब भी विद्यमान है)

कुछ पंचांगों का परिचय

वर्तमान समय में देश के अनेक स्थानों पर हिन्दू धर्म पंचांग छपते हैं जिनमें चन्द्रसौर की मिश्रित पद्धति का प्रयोग होता है। इसके साथ ही इन पंचांगों पर और बहुत सी बातों का अंकन रहता है। इस सन्दर्भ में कुछ पंचांगों का उल्लेख यहां करना आवश्यक है।

हिन्दू गणना पद्धति में पंचांग निर्माण के लिए मुख्य रूप से शक व विक्रम संवतों को अपनाया हुआ है। इसके अतिरिक्त कलि, सृष्टि आदि संवतों का भी उल्लेख रहता है। कहीं-कहीं पंचांगों में हिजरी, ईसाई व हिन्दू तिथियों को एक दूसरे के साथ तालमेल बिठाकर साथ-साथ दर्शाया जाता है। हिन्दू पंचांगों में क्षेत्रीय प्रभाव तथा क्षेत्रीय संवतों व समय का भी उल्लेख रहता है। अलग-अलग प्रान्तों से अनेक पंचांग विभिन्न गणितकर्ताओं द्वारा निकाले जाते हैं जिनका आधार अनेक वेधशालाओं में एकत्र किये गये नक्षत्रीय आंकड़े होते हैं। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम बनारस से निकलने वाले पंचांगों का उल्लेख इस प्रकार है। ये उत्तरी भारत में अधिक प्रचलित है। प्रथम मालवीय जी का पंचांग है। इसका सूत्रपात पं० मदन मोहनमालवीय ने किया था। इसका गणित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थी करते हैं तथा वहीं से यह निकलता है। बनारस

---

१. एलैग्जेण्डर कनिंघम, 'एक बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी, १९७६, पृ० ९१।

से प्रकाशित दूसरा काशी विश्वनाथ पंचांग है। इसकी विशिष्टता यह है कि यह सबसे पहले तैयार होता है तथा एक वर्षीय पंचांग है। तीसरा बापदेव शास्त्री का पंचांग वाराणसी के संस्कृत विश्वविद्यालय से निकलता है। इसकी गणना भी विद्यार्थियों द्वारा की जाती है। चौथा गणेशाषा पंचांग है। इसके प्रकाशक राजराजेश्वरी पंचांग कार्यालय बनारस है।

श्री वेंकटेश्वर शताब्दी पंचांग १०० वर्षीय पंचांग है। मुख्य रूप से यह राजस्थान में प्रचलित है परन्तु उत्तरी भारत में भी इसका प्रयोग होता है। यह सौर ग्रह-लाघव पद्धति पर पाधारित है। इस पंचांग की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं।[1]

(१) आर्ष सूक्तियों के अनुसार जयपुर ज्योतिष यन्त्रालय द्वारा बारम्बार प्रत्यक्षानुभव करके वेद सिद्ध सूक्ष्मदृष्य (शुद्ध प्राचीन) गणित से श्री सरस्वती पंचांग को तैयार कर विद्वानों की सेवा में समर्पित किया जाता है।

(२) उत्तर भारत व राजस्थान में यही एक ऐसा पंचांग है जो जयपुर ज्योतिष यन्त्रालय के यन्त्रों द्वारा अपने गणित की सत्यता प्रत्यक्ष दिखाने में समर्थ है।

ये दोनों ही विशिष्टतायें पंचांग की किसी गणितीय विशिष्टता को नहीं दिखातीं क्योंकि कोई भी पंचांग निर्माण अथवा प्रकाशक उसकी सत्यता को ही बतायेगा उसको असत्य नहीं बतायेगा। इस शताब्दी पंचांग की गणना सम्बन्धी विशिष्टतायें ये हैं[2] :

(१) संवत् २००१ से २०१५ तक तिथ्यादि (तिथि नक्षत्र योग एवं चन्द्रमा) गणित गृहलाघव से की हुयी है। उसके बाद संवत् २०१६ से सूक्ष्म गणित (केतकी) से किये गये हैं।

(२) संवत् २००१ से २०२० तक पंक्ति का प्रथम सूर्य सौर वर्षीय है और अन्तिम दृष्य पक्ष से है। २०२१ से २१०० तक पंक्तिस्थ प्रथम सूर्य पक्षीय तथा अन्तिम सौर पक्षीय है।

(३) संवत् २००१ से २०५० तक अंग्रेजी तारीखें राष्ट्री (हिन्दी) और मुसलमानी तारीखों से पहले दी गयी है। २०५१ के बाद में चन्द्रमाओं से पूर्व है।

---

१. "श्री वेंकटेश्वर शताब्दी पंचांग", गणितकर्ता ईश्वरदत्त शर्मा, बम्बई, १९८७, सम्पादकीय।

२. वही।

(४) संवत् २०२० में दृष्य गणित से कार्तिक ही क्षय और कार्तिक ही अधिक मास है। स्थूल गणित में आश्विन अधिक और मार्गशीर्ष क्षय आता है।

शताब्दी पंचांग का छोटा रूप भी प्रकाशित होता है जो १० वर्षीय पंचांग है।

चक्रधर जोशी ज्योतिष के गढ़वाली विद्वान हैं। इनके पंचांग का नाम **महीधर** है। हिमाचल के पण्डित मुकन्द बल्लभ के पंचांग का नाम **मातंग पंचांग** है। यह पंचांग पंजाब व हिमाचल में प्रचलित है। **दिवाकर पंचांग** पण्डित देवीदयाल जी का है। यह जालन्धर से निकलता है।

पंजाब, हरियाणा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से प्रचलित पंचांग तथा अधिक मान्यता प्राप्त **विश्व विजय पंचांग** है जिसको पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी निकालते हैं। इसका गणित आधार सोलन (शिमला) का है। इस पंचांग की विशिष्टता यह है कि इसमें राजनीतिक वार्षिक घटना-चक्र के सम्बन्ध में भी भविष्यवाणियां दी जाती हैं। जिनको जानने के लिये जन-साधारण अधिक उत्सुक रहता है। गणित भी विस्तार से दिया जाता है। ग्रहों की चालों का भी उल्लेख रहता है जो अन्य पंचांगों में नहीं मिलता। अतः पाश्चात्य पद्धति में विश्वास रखने वाले तथा इंगलिश पंचांगों का प्रयोग करने वाले जो भारतीय पंचांग में भी रुचि रखते हैं इसका प्रयोग करते हैं। इसकी गणना जयपुर की वेधशाला के आधार पर की जाती है।

दिल्ली से प्रकाशित पंचांग **राजधानी पंचांग** है। इसके गणितकर्ता प्रेमपाल कौशिक हैं। इस पंचांग की विशिष्टतायें इस प्रकार हैं :[1]

(१) श्री राजधानी पंचांग का गणित भारत की राजधानी दिल्ली के उत्तर अक्षांश २८/३८ व ग्रीनविच से पूर्व रेखांश ७७/१४ के आधार पर किया गया है। तिथि से पूर्व वार व नक्षत्रों के संयोग से बचने वाले आनन्दादि योग दिये गये हैं।

(२) घट्यादि दिनमान दिल्ली का है। ६० में से घटाने पर शेष रात्रिमान होगा। दिन व रात्रिमान का आठवां भाग एक चौ० मुहुर्त होता है। प्रत्येक स्थान का दिनमान न्यूनाधिक होता है।

(३) तारीखें क्रमशः राष्ट्रीयमिति, प्रविष्ठा, मुस्लिम और अंग्रेजी दी गयी है। प्रविष्ठा सौर तारीख को ही बंगला तारीख कहते हैं।

---

१. "श्री राजधानी पंचांगम", गणितकर्ता कौशल किशोर कौशिक, श्री राजधानी पंचांग कार्यालय दिल्ली, शक १९१०, ई० १९८८, प्राक्कथन।

(४) सूर्य से आगे के संदर्भ का सभी समय भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम घंटा मिनटों में लिखा है जो कि सर्वत्र भारतवर्षोपयोगी है।

उत्तर प्रदेश के मेरठ शहर से निकलने वाला एक पंचांग **शुद्ध भारतीय पंचांग** है। आगरा निवासी शंकरलाल गौड़ इसके गणितकर्ता हैं। इसमें विभिन्न ग्रहों की स्थितियों के साथ ही राजनैतिक भविष्यवाणियां भी की जाती हैं जैसे : "सम्वत् २०४५ बैशाख कृष्ण १२ बुद्धवार दिनांक १३ अप्रैल सन् १९८८ ई० को तत्रेष्टम् ३७/०८ पर सिंह लग्न के २० अंशों पर भुवन भास्कर भगवान सूर्य का एक मेष राशी पर संचार होगा। इससे भारत के विरोधी राष्ट्रों के षड़यन्त्र विफल होंगे। प्रजा में सुख और शान्ति का साम्राज्य रहेगा तथा भारत की एकता और अखण्डता अक्षुण्ण रहेगी।"[1]

मेरठ से ही निकलने वाला दूसरा पंचांग **असली लावड़ का पंचांग** हैं। इसके वर्तमान गणितकर्ता रविदत्त शर्मा थे। इसमें हिन्दुओं के विभिन्न संस्कारों मुंडन, कर्णछेदन, जनेऊ आदि के लिए शुभ मुहूर्त दिये जाते है। इसके साथ ही दुकान खोलने, यात्रा करने, गृह-प्रवेश, कर्ज देने आदि के लिए भी शुभ मुहूर्त दिये जाते हैं।[2] उत्तरी भारत में पहले यह काफी मान्य था, परन्तु अब मूल गणितकर्ता के स्वर्गवास हो जाने से पंचांग की मान्यता कम हो गयी है। गणित में अशुद्धियां आ गयी है। मुद्रण की काफी अशुद्धियां रहती हैं। अतः अब इस पंचांग की मान्यता घट रही है।

कंडेन्ज्ड अफेमरीज ऑफ प्लैनेट्स पजीशन्ज का निर्माण नारायण पद्धति के आधार पर किया जाता है। यह १० वर्षीय पंचांग हैं, इसके सूक्ष्म रूप पांच-वर्षीय व एक वर्षीय भी प्रकाशित होते हैं। इसमें ईसाई सम्वत् के साथ भारतीय सम्वतों को भी लिखा जाता है, जैसे "१९८१ ए० डी०, शक सम्वत् १९०२-३, विक्रम सम्वत् २०३७-३८, बंगाली सन् १३८७-८८, कोल्लम सम्वत् ११५६-५७।"[3]

---

१. "शुद्ध भारतीय पंचांग", गणितकर्ता शंकरलाल गौड़, शक १९१०, ईस्वी १९८८-८९, प्राक्कथन।

२. "असली लावड़ का पंचांग", गणितकर्ता रविदत्त शर्मा, मेरठ, शक १९१०, ईस्वी १९८८-८९, २९।

३. एन० सी० लाहरी, "कन्डेन्ज्ड अफेमरीज ऑफ प्लैनेट्स पजीशन्ज," भाग सात ए (कलकत्ता : एस्ट्रो रिसर्च ब्यूरो, १९८५), पृ० १०।

दिल्ली से ही 'राष्ट्रीय पंचांग' प्रकाशित होता है। इसका निर्माण राष्ट्र भर में प्रचलित संवतों को मिश्रित कर किया जाता है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, सभी के त्योहारों व पर्वों का इसमें उल्लेख रहता है। यह भारत सरकार द्वारा प्रकाशित है। अंग्रेजी, हिन्दू, उर्दू, संस्कृत, बंगला, तेलगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, ओड़िया, गुजराती, मराठी, असामी इन १३ भाषाओं में प्रकाशित होता है ? परन्तु अभी यह अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया है क्योंकि इसके नाम व गणना पद्धति से लोग परिचित नहीं हैं। साथ ही यह बहुत देर से लगभग आधा वर्ष बीतने के बाद प्रकाशित होता है। समय से लोगों तक नहीं पहुंच पाता।

इन सबके अतिरिक्त देश के दूसरे प्रदेशों बंगाल, बिहार व दक्षिण भारत में भी बहुत से पंचांग प्रचलित हैं।

"ग्रह लाघव व सौर दो प्रकार की पद्धतियां मुख्य रूप से पंचांग निर्माण के लिए प्रयोग की जाती हैं। तीसरा आधुनिक केतकी सिद्धान्त है, जो आचार्य केतकर के नाम पर है। यह सूक्ष्म पद्धति है जो लोग पाश्चात्य पद्धति को महत्व देते हैं वे भारतीय पंचांग पद्धति में इस पद्धति को पसन्द करते हैं।"[1] क्योंकि इसमें सौर पद्धति को महत्व दिया जाता है तथा यह पाश्चात्य पद्धति से मेल खाती है।

जो पंचांग जहां प्रचलित है वहीं के क्षेत्रीय प्रचलन व गणित की शुद्धता पर उसकी लोकप्रियता निर्भर करती है। जयपुर, बनारस, गढ़वाल, ग्वालियर, बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों पर वेधशालायें स्थापित हैं अतः यहां से निकलने वाले पंचांग इन्हीं से प्रभावित रहते हैं।

पंचांग के पांच अंग माने जाते हैं। पंचांग का अर्थ—पांच अंगों वाले से है अर्थात् (१) तिथि—जो दिनांक अर्थात् तारीख का काम करती है। (२) वार—अर्थात् रविवार, सोमवार आदि में से कौन-सा दिन। (३) नक्षत्र—जो बताता है कि चन्द्रमा तारों के किस समूह में है। (४) योग—जो बताता है कि सूर्य और चन्द्रमा के रेखांशों का योग क्या है। (५) करण—जो तिथि का आधा होता है।"[2] इनके साथ ही हिन्दी पंचांगों में अंग्रेजी तारीख, मुस्लिम तारीख (सभी में नहीं) दिनमान (अर्थात् सूर्योदय से सूर्यअस्त तक लगने वाला समय) चन्द्रमा का उदय व अस्त किस समय होगा, आकाश में ग्रहों की स्थिति आदि का भी उल्लेख रहता है।

---

१. यह जानकारी मुझे मेरठ निवासी श्री लक्ष्मीचन्द अग्रवाल से प्राप्त हुयी।

२. गोरख प्रसाद, "सरल गणित ज्योतिष", इलाहाबाद, १९५६, पृ० २९६।

विक्रम, शक व गुप्त सम्वतों की गणना पद्धति में कितनी समानता है इसका प्रमाण फ्लीट द्वारा दी गयी इस सारणी से मिल जाता है। इस सारणी में शक, विक्रम, गुप्त एवं ईसाई सम्वतों का तुलनात्मक विवरण दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि शक का ११८६, विक्रम का १३२१, गुप्त का ९४४ तथा ईसाई का १२६३-६४ वर्ष बराबर है। शक, विक्रम तथा गुप्त तीनों ही उत्तरी भारत में पूर्णिमान्त तथा दक्षिणी भारत में अमान्त हैं। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ आदि १२ महीने हैं तथा माह के शुक्ल व कृष्ण दो पक्ष हैं। ये सम्वत् चन्द्रसौर्य की मिश्रित पद्धति पर आधारित हैं, वर्ष सौर्यमान व माह चन्द्रमान से सम्बन्धित है।

विक्रम, शक एवं गुप्त-वल्लभी वर्षों की तुलनात्मक सारणी

उत्तरी भारत पूर्णिमान्त	मास तथा पक्ष				दक्षिणी भारत अमान्त
शक संवत् ११८६ विक्रम संवत् १३२१ गुप्त वल्लभी संवत् ९४४ ई० सन् १२६३-६४	चैत्र	शुक्ल पक्ष	चैत्र	शक संवत् १८८६ ई० ई० सन् १२६३-६४	विक्रम संवत् १३२० ईस्वी सन् १२६२-६३
	वैशाख	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	वैशाख		
	ज्येष्ठ	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	ज्येष्ठ		
	आषाढ़	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	आषाढ़		
	श्रावण	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	श्रावण		
	भाद्रपद	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	भाद्रपद		
	आश्विन	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	आश्विन		
	कार्तिक	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	कार्तिक		
	मार्गशीर्ष	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	मार्गशीर्ष		
	पौष	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	पौष		
	माघ	कृष्ण पक्ष			
		शुक्ल पक्ष	माघ		
	फाल्गुन	शुक्ल पक्ष			
		कृष्ण पक्ष	फाल्गुन		

वर्तमान समय में न केवल भारतीय सम्वतों में बल्कि दूसरे देशों में प्रचलित सम्वतों में भी समय के विभाजन की बहुत सी एक जैसी ही इकाईयां ग्रहण कर ली गयी हैं। चाहे वे गणना की किसी भी पद्धति (चन्द्र, सौर, चन्द्र-सौर अथवा नक्षत्र पद्धतियां) पर आधारित हों। ये तत्व सभी में प्रयोग हो रहे हैं।

वर्ष, लौंद का वर्ष वर्तमान समय में प्रचलित सभी सम्वतों में विद्यमान है। चन्द्र व सौर पद्धतियों के कारण इसके समयावधि में अन्तर रहते हुए भी वर्ष अधिकांश सम्वतों में समय-विभाजन की एक मुख्य इकाई है। वर्ष का विभाजन १२ माहों में किया जाता है (बहाई सम्वत् इसका अपवाद है, इसमें वर्ष का विभाजन १६ महीनों में किया गया है)।

महीने से छोटी इकाई पाख (पखवाड़ा अथवा पक्ष) है जो महीने का १/२ भाग या १५ दिन की अवधि का होता है परन्तु अब पाश्चात्य प्रभाव से सप्ताह भी ग्रहण कर लिया गया है जो माह का १/४ भाग अथवा ७ दिन का है। "सप्ताह को आरम्भ में बाजार-समयावधि के रूप में ग्रहण किया गया। आरम्भ में सप्ताह की अवधि पृथक-पृथक थी। पश्चिमी अफ्रीका में ४ दिन, मध्य एशिया में ५ दिन, असीरिया में ६ दिन, मिश्र में १० दिन की यह समयावधि ग्रहण की गयी।"[१] "आरम्भ में बेबीलोन में ८ दिन का सप्ताह माना गया लेकिन ८ की संख्या को शुभ न मानकर यह संख्या ७ रखी गयी जो सम्भवतः सात ग्रहों से सन्बन्धित है।"[२]

पक्ष व सप्ताह से छोटी इकाई दिन है। सौर गणना वाले पंचांगों में यह दिनांक व हिन्दू पंचांगों में तिथि कही जाती है। सौर गणना में दिन की अवधि २४ घण्टे मानी गयी है तथा इसकी गणना १, २, ४, ५, ६ आदि ३१ तक लगातार होती है। परन्तु हिन्दू पंचांगों में लौंद के माह की व्यवस्था करने के लिये तिथियों को घटाया बढ़ाया जाता है अर्थात् एक दिनांक (Date) दोहराया नहीं जाता जबकि एक ही तिथि लगातार दो दिन भी रह सकती है तथा एक दिन में दो तिथियां भी पूरी हो सकती हैं। (इसे तिथि का लोप कहते हैं)।

---

१. "इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका", वोल्यूम ३, टोक्यो, १९६७, पृ० ५९६।
२. वही।

दिन के उपभागों के लिए अब लगभग सभी भारतीय सम्वतों में तथा पंचांगों के निर्माण के लिए घण्टा, मिनट, सैकेण्ड आदि इकाईयों को अपना लिया गया है। साथ ही तिथियों का अंकन भी पंचांगों पर रहता है। दिन की अवधि आधीरात से आधीरात तक मानी जाती है। ग्रीनविच स्टैण्डर्ड टाइम के अनुसार घड़ियों व पंचांगों में दिनांक को बदला जाता है। राष्ट्रीय पंचांग में भी इसी को ग्रहण किया गया है। "इस पंचांग का यावत् गणित उस भारतीय मध्य रेखा बिन्दु के लिए किया गया है, जो ग्रीनविच से पूर्व-रेखांश ८२°३० एवं उत्तर-अक्षांश २३°११ (उज्जयिनी के अक्षांश) पर स्थित है एवं इस पंचांग में सर्वत्र तिथ्यादि के समय भारतीय मानक समय (इण्डियन स्टैण्डर्ड टाइम) के अनुसार दिये गये हैं, जो उक्त भारतीय मध्य रेखा बिन्दु का स्थानिक मध्यकाल होता है।"[1] "यह (इण्डियन स्टैण्डर्ड टाइम) ग्रीनविच मध्यम काल या विश्व-काल से ५ घण्टा ३० मिनट आगे रहता है। पंचांग-गणित भारतीय मध्य रेखा बिन्दु का होने से वह समस्त भारतोपयोगी हो सकता है।"[2] घड़ियों में भी समय उसी के आधार पर निश्चित किया जाता है। "भारत वर्ष का स्टैन्डर्ड टाइम पूर्व घं० मि० ५.३० दिया है अर्थात् ८२ अंश पूर्व रेखांश का यह समय है जो समस्त भारतवर्ष में प्रचलित है। वही टाइम आजकल भारतवर्ष भर की घड़ियां बतलाती हैं।"[3]

उपरोक्त उल्लिखित गणना पद्धति के कुछ ऐसे तथ्य हैं जो अब शनैः-शनैः भारतीय पंचांगों व विश्व के दूसरे देशों के पंचांगों में एक जैसे ही ग्रहण कर लिये हैं। आधुनिक समय में पंचांगों का निर्माण करते समय दो उद्देश्यों का ध्यान रखा जाता है। प्रथम तो पंचांग जिस सम्प्रदाय व धर्म से सम्बन्धित है, उसकी धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करे। दूसरा वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित हो रही पद्धति से भी पंचांग का सम्बन्ध बना रहे तथा वह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नागरिकों की दैनिक व्यवहार की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। सम्वतों के पंचांगों के तथ्यों का इस प्रकार आदान-प्रदान हो रहा है तथा उनमें समान गणना पद्धति विकसित हो रही है।

---

१. भारत सरकार, "राष्ट्रीय पंचांग", दिल्ली, १९८८, भूमिका।

२. वही।

३. बी० एल० ठाकुर, "ज्योतिष शिक्षा", द्वितीय खण्ड, भाग-१, वाराणसी, १९७०, पृ० ४।

भारत में आदिकाल से भारतीय स्वतन्त्रता तक आरम्भ हुए बहुत से सम्वतों का उल्लेख अध्याय दो व तीन में किया गया है। परन्तु अनेक कारणों से इनमें से बहुत से सम्वत् अब प्रचलन में नहीं हैं, लुप्त हो गये हैं। कुछ प्रमुख सम्वत् ही वर्तमान समय में प्रचलन में हैं, इन वर्तमान प्रचलित सम्वतों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

वर्तमान समय में प्रचलित सम्वत्

वर्तमान समय में भारत में अधिकांश सम्प्रदायों के अपने निजी सम्वत् हैं। एक ही सम्प्रदाय द्वारा अनेक सम्वतों के प्रयोग की प्रथा भी प्रचलित है। एक ही सम्वत् के पृथक-पृथक रूप भी प्रचलित हैं। अनेक क्षेत्रीय सम्वतों का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार भारत में अनेक सम्वतों का प्रयोग आज भी हो रहा है।

भारत में वर्तमान समय में प्रचलित सम्वतों में तिथिक्रम से सर्वप्रथम सृष्टि सम्वत् का नाम आता है। सृष्टि सम्वत् में सृष्टि के निर्माण से वर्तमान समय तक व्यतीत वर्षों की गणना की जाती है। आर्य समाजी धार्मिक कार्यों में इसका प्रयोग करते हैं तथा इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं आदि पर सृष्टि सम्वत् लिखा जाता है। हिन्दू धर्म पंचांगों पर भी इसका अंकन रहता है। सृष्टि सम्वत् के बाद कृष्ण सम्वत् का नम्बर आता है। यह हिन्दुओं का धार्मिक सम्वत् है तथा पंचांगों पर इसका अंकन रहता है। कलि सम्वत् की गणना भी भारत के प्राचीन सम्वतों में की जाती है। इसका आरम्भ ३१०२ ई० पूर्व से माना जाता है। वस्तुतः अधिकांश भारतीय सम्वतों का यही आधार है। "इसका प्रयोग खगोलशास्त्रियों द्वारा किया गया, इसका लिखित रूप १००० ई० पूर्व से मिलता है।"[१] प्रतिपल, विपल, पल, घटि, मुहूर्त आदि इसकी गणना की इकाईयाँ हैं। बाद में आरम्भ होने वाले सम्वतों में इसी पद्धति को आधार बनाया गया तथा आज भी हिन्दू ज्योतिषियों व पंचांग निर्माताओं द्वारा कलि सम्वत् का प्रयोग होता है। "कलि सम्वत् ५०९० का का प्रारम्भ चैत्र २५ से हुआ है जो १५ अप्रैल, सन् १९८९ ई० के समान है।"[२]

---

१. "इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका", वोल्यूम-तृतीय, १९६७, टोक्यो (जापान), पृ० ९०७।

२. भारत सरकार, "राष्ट्रीय पंचांग", नई दिल्ली, १९८६-८७, भूमिका।

बुद्ध निर्वाण सम्वत् एक ऐसा सम्वत् है जिसका आरम्भ भारत में हुआ, लेकिन विदेशों में अब इसका प्रचलन अधिक है। ५४४ ई० पूर्व में भारत में आरम्भ हुए बुद्ध निर्वाण सम्वत् का प्रयोग आज भी लंका आदि द्वीपों तथा भारत के निकटवर्ती देशों में फैले बौद्ध धर्मावलम्बियों द्वारा किया जाता है।

महावीर निर्वाण सम्वत् का प्रयोग जैन धर्मावलम्बियों द्वारा धार्मिक कृत्यों के लिए किया जाता है। ५२७ ई० पूर्व में आरम्भ होने वाला महावीर निर्वाण सम्वत् जैन वर्ग तक ही सीमित है। "महावीर निर्वाण सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष २५१६ है। जिसका आरम्भ कार्तिक ८ या ३० अक्टूबर सन् १९८९ ई० से हुआ है।"[1]

भारत में वर्तमान समय में प्रचलित संवतों में विक्रम संवत् ऐसा है जिसे पूर्णतया भारतीय कहा जा सकता है। जिसका प्रयोग विभिन्न समयों पर प्रशासनिक तथा राजकीय कार्यों के लिये किया गया और हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में अपने जन्म से आज तक अबाध रूप से प्रयुक्त हो रहा है। ५७ ई० पूर्व में आरंभ होने वाला विक्रम संवत् केवल श्री संवत् नाम से ही लिखा जाता है। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में पंचांग निर्माण, व्रत-त्यौहारों के निर्धारण तथा विवाह आदि शुभ अवसरों की तिथियां निश्चित करने के लिए विक्रम संवत् का प्रयोग किया जाता है। अपनी उत्पत्ति के आरंभ में कृत, फिर मालव तथा इसके बाद विक्रम संवत् आदि नामों का प्रयोग इसके लिए किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह संवत् महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में इसके लिए दो प्रकार की गणना पद्धति का प्रयोग किया जाता है। चैत्रादि गणना तथा कार्तिकादि गणना। चैत्रादि गणना में वर्ष का आरंभ चैत्र से होता है जिसका प्रचलन उत्तरी भारत में है तथा कार्तिकादि गणना में वर्ष का आरंभ कार्तिक से होता है जिसका प्रचलन दक्षिणी भारत में है। "विक्रम संवत् २०४६ का प्रारंभ चैत्र १६ (६ अप्रैल सन् १९८९ ई०) कार्तिक ८ (३० अक्टूबर सन् १९८९ ई०)।'[2]

ईसाई संवत् विदेशी होते हुए भी शताब्दियों से भारत में निरन्तर प्रयुक्त हो रहा है तथा इसका भारतीय इतिहास लेखन के लिए उपयोग हुआ है। अब अनेक भारतीय सम्प्रदायों द्वारा दैनिक व्यवहार व धार्मिक संवतों के पंचांगों में तिथि अंकन के लिए प्रयोग हो रहा है तथा इसकी लोकप्रियता निरन्तर

---

१. भारत सरकार, "राष्ट्रीय पंचांग", दिल्ली, १९८९।
२. वही, भूमिका।

बढ़ रही है। ईसाई संवत् का यह १९८९वां वर्ष चालू है जो विक्रम २०४६ तथा शक १९११ के समान है।

फसली संवत् का प्रयोग भारत के अनेक क्षेत्रों में हुआ तथा वर्तमान समय में भी यह संवत् प्रचलित है। फसली संवत् के वर्षों का आरंभ अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग तिथियों से होता है। "८ जून से बम्बई में, १ जुलाई से दक्षिण में तथा १३ सितम्बर से बंगाल में फसली संवत् के वर्ष का आरम्भ होता है।"[1]

हिज्रा संवत् का प्रयोग भारत में इस्लाम के अनुयायियों द्वारा अपने धार्मिक कृत्यों के लिए किया जाता है। इसमें शुक्रवार का विशेष महत्व है। इसी दिन से नये वर्ष का आरम्भ किया जाता है। "वर्तमान हिज्री सन् १४१० है, जो १९८९-९० ई० के बराबर है।"[2]

इन प्रमुख संवतों के अतिरिक्त भी लक्ष्मणसेन, कोल्लम, बंगाली सन् आदि क्षेत्रीय संवतों का प्रयोग भारत में हो रहा है। बंगाली सन् का प्रचलन क्षेत्र बंगाल है। इसके वर्ष का आरम्भ चैत्र २५ से होता है। "बंगाली सन् १३९३ का प्रारंभ—२५ चैत्र (१५ अप्रैल सन् १९८६ ई०) को हुआ।"[3] उत्तरी व दक्षिणी मालाबार में कोल्लम संवत् प्रचलित है जिसका आरम्भ ८२३ ई० से हुआ। उत्तरी मालाबार में इसके वर्ष का आरम्भ १७ सितम्बर से होता है तथा कन्यादि है। दक्षिणी मालाबार में वर्ष आरम्भ १७ अगस्त से होता है तथा सिंहादि है।[4] "कोल्लम संवत् ११६२ का आरम्भ श्रावण २६ (१७ अगस्त सन् १९८६ ई०) को हुआ।"[5]

उन्नीसवीं सदी ई० में आरम्भ हुए महर्षि दयानन्दाब्द व बहाई संवतों का प्रयोग भी इनसे सम्बन्धित सम्प्रदायों द्वारा किया जा रहा है। इनमें महर्षि दयानन्दाब्द तो पूर्ण रूप से ईसाई संवत् के अनुरूप ही है। इसके लिए कोई

---

१ "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० २५८।

२. "राष्ट्रीय पंचांग", दिल्ली : द कन्ट्रोलर ऑफ पब्लिकेशन्स १९८९, भूमिका पृ० ९।

३. वही, १९८६-८७, भूमिका।

४. कन्यादि का अर्थ है—कन्या राशि से आरम्भ तथा सिंहादि का अर्थ है—सिंह राशि से आरम्भ।

५. भारत सरकार, "राष्ट्रीय पंचांग", नई दिल्ली, १९८६-८७, भूमिका।

पृथक् पंचांग ग्रहण नहीं किया गया है। बहाई संवत् के लिए नये पंचांग की व्यवस्था की गयी है। इसका प्रयोग बहाई सम्प्रदाय द्वारा किया जाता है तथा इसका अपना पंचांग छपता है।

वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग जो शक संवत् के नाम से जाना जाता है भारत सरकार के प्रशासनिक कार्यों व आकाशवाणी प्रसारण के लिए प्रयुक्त हो रहा है। इसकी पद्धति प्राचीन शक संवत् से एकदम पृथक है लेकिन इसका नाम शक संवत् ही है तथा वर्षों की गणना भी ७८ ई० में आरंभ हुए शक संवत् के अनुसार ही की जा रही है। राष्ट्रीय पंचांग का राष्ट्रीय नाम होते हुए भी व्यापक रूप में प्रयुक्त नहीं हो रहा है। इसके नये वर्ष का आरम्भ बसन्त महा-विषुव से (२१ मार्च) होता है व लौंद का वर्ष ईसाई संवत् के लौंद के वर्ष के साथ ही पड़ता है। इसका वर्तमान प्रचलित वर्ष १९११ है जो १९८९-९० ई० के समान है।

पंचम् अध्याय

भारत में सम्वतों की अधिक संख्या की उत्पत्ति के कारण तथा वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग

भारत में इतने अधिक संवतों का प्रादुर्भाव हुआ इसके बहुत से कारण रहे, अनेक तत्कालीन परिस्थितियां थीं जिन्होंने नये-नये संवतों को जन्म दिया। सर्वप्रथम, धर्म चरित्रों, देवताओं व धार्मिक नेताओं को महत्ता प्रदान करने के लिए उनके जीवन घटनाओं से सम्बन्धित विभिन्न संवतों का आरम्भ किया गया। धार्मिक क्षेत्र में यह एक प्रतिस्पर्धा सी रही कि अपने धर्मनेता को दूसरे से अधिक प्राचीन व विशिष्ट दर्शाया जाये। अतः, उनके नाम पर संवत् जारी किये गये। इस श्रेणी में हिन्दुओं के सृष्टि संवत् का नाम लिया जा सकता है। प्राचीनता की होड़ में यह संवत् इतना बढ़ गया कि इसके व्यतीत वर्षों की गणना करना भी सम्भव न रहा तथा आम जनता को इसके व्यतीत वर्षों अथवा चालू वर्ष की संख्या याद रखना भी कठिन हो गया। अतः इस संवत् का व्यावहारिक महत्व तो नगण्य ही रह गया, मात्र इसकी प्राचीनता ही एक विशेषता रही और इसने भारतीय संवतों की संख्या को ही बढ़ाया, अपने आपको उपयोगी नहीं बनाया। अकेले हिन्दू धर्म में ही धर्म के नाम पर सृष्टि संवत्, कृष्ण संवत्, युधिष्ठिर संवत्, कलि संवत् आदि का प्रादुर्भाव हुआ, फिर और दूसरे सम्प्रदायों ने भी जैन, बौद्ध, आर्यसमाज आदि ने अपने धर्म प्रचारकों के नाम पर संवतों का आरम्भ किया।

संवतों की अधिकता का दूसरा कारण विदेशियों का भारत में आगमन तथा उनके द्वारा अपनी गणना पद्धति को भारत में आरोपित करना रहा। समय-समय पर अनेक विदेशी जातियां भारत में आयीं। अपनी संस्कृति के दूसरे तत्वों के साथ वे गणना पद्धति भी साथ लायीं तथा उसको भारत में स्थापित करने का प्रयास किया। इस कारण भारत में सैल्यूसीडियन, शक, हिज्रा व ईसाई संवतों का आरम्भ हुआ। यद्यपि इन जातियों ने भारत की गणना पद्धति से भी

कुछ तत्व ग्रहण किये, परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य भारत में अपनी संस्कृति को आरोपित करना था। अतः इनके द्वारा लाये गये संवत् भारत में स्थाई रहे व कालान्तर में वे भारतीय इतिहास व गणना पद्धति का हिस्सा बन गये। इन संवतों को भारतवासियों ने पूर्ण रूप से अंगीकार नहीं किया। अतः ये अपने मौलिक रूप में भी चलते रहे तथा भारत में प्राचीन गणना पद्धति व नई गणना पद्धतियों की मिश्रित पद्धति भी चलती रही।

भारत के क्रमिक इतिहास से यह पता चलता है कि भारत एक शासनतंत्र के नीचे बहुत ही कम समय रहा। यहां अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग राजवंशों की स्थापना हुई। इस प्रान्तीयता की भावना ने भी कुछ नये संवतों को जन्म दिया जैसे कि बंगाली सन्, कोल्लम, अण्डु, बर्मी, कोमन व नेवार संवतों के नाम से ही यह अनुमान हो जाता है कि ये किसी क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। प्रान्तीयता की भावना ने ही अलग-अलग रीति-रिवाजों व भाषाओं को भी जन्म दिया। अतः एक स्थान पर प्रचलित गणना-पद्धति को दूसरे प्रान्तवासियों के लिए समझना कठिन हो गया, जिससे विभिन्न भाषा-क्षेत्रों में गणना की अलग-अलग पद्धतियों की आवश्यकता महसूस की गयी व अनेक क्षेत्रीय गणनाओं का जन्म हुआ। और नहीं तो एक संवत् के वर्ष आरम्भ में अन्तर कर दिया गया। उसके सौर व चन्द्रीय महीनों में अन्तर कर दिया गया तथा महीनों के आरम्भ व अन्त में अन्तर कर लिया गया। शक संवत् व विक्रमी संवत् इसका अच्छा उदाहरण है जिनके उत्तरी व दक्षिणी दो अलग-अलग प्रकार की गणना पद्धतियां आज भी प्रचलित हैं।

भारतीय इतिहास में यह एक प्रथा-सी बन गयी थी कि जो भी शासक स्वयं को जरा भी शक्तिशाली महसूस करता था अथवा उसके कुछ शासन वर्ष शान्ति से कट जाते थे वह स्वयं को महान् व विशिष्ट दिखाने का प्रयास करता था। अपने नाम से किसी शासक द्वारा एक नये संवत् का चलाया जाना भी इसी अहं भाव का प्रतीक था। मौर्य, गुप्त, गांगेय, हर्ष, लक्ष्मणसेन, शाहूर, जुलूसी, राज्याभिषेक आदि संवतों का आरम्भ इसी अहंभाव को लेकर हुआ। पूर्व प्रचलित संवत् को स्वीकार न कर अपना निजी संवत् चलाना अथवा शासन काल के इतनवें (२४वें, चौथे, तीसरे आदि) वर्ष में अमुक कार्य सम्पन्न हुआ अथवा अमुक दानलेख, शिलालेख व स्तम्भ लेख की स्थापना हुई। ये भी इसी प्रतिष्ठित करने की होड़ के द्योतक हैं। गौतमी पुत्र सातकर्णी का नासिक गुहालेख २४वां वर्ष, कनिष्क का सारनाथ प्रतिमा लेख तीसरा वर्ष आदि अनेक उदाहरण इस मम्बन्ध में इतिहास से मिलते हैं।

भारतीय गणना पद्धति को राष्ट्रीय स्तर पर सुधारने व उसे चलाने के प्रयास नगण्य ही रहे। अतः जो क्षेत्रीय संवत् आरम्भ किये गये वे बहुउद्देशीय न बन पाये। कोई धार्मिक, कोई राजनीतिक व कोई साहित्य व अभिलेखों के अंकन तक ही सीमित रह गया। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसे भी अवसर आये जब एक ही शासन ने अलग-अलग उद्देश्यों के लिए कई संवत् चलाये जैसाकि बादशाह अकबर ने धार्मिक कार्यों के लिए इलाही संवत्, वित्तीय कार्यों के लिए फसली संवत् तथा निजी प्रतिष्ठा के लिए जुलूसी संवतों का आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त हिन्दू गणना पद्धति में चन्द्र व सौर का मिश्रित रूप ग्रहण कर लिए जाने के कारण वह पद्धति वैज्ञानिक तो अधिक हो गयी लेकिन उसका व्यावहारिक रूप जटिल हो गया। अत: सरल पद्धति वाले मात्र सौर अथवा मात्र चन्द्रीय गणना वाले संवतों का आरम्भ हुआ। भारतीय जनमानस द्वारा चन्द्रीय हिज्रा व सौर ईसाई संवतों को ग्रहण कर लिए जाने का यही कारण है। फसली संवत् जैसे नये संवतों का प्रादुर्भाव भी इसी जटिलता का परिणाम था।

सूर्यमान, चन्द्रमान व नक्षत्रीय गणना पद्धतियों ने भी नये संवतों को जन्म दिया। राष्ट्र के उत्तरी-दक्षिणी, पूर्वी व पश्चिमी क्षेत्रों में पंचांग-निर्माताओं ने सूर्यमान, चन्द्रमान व नक्षत्रीय पद्धतियों को कम व अधिक महत्व दिया। जिस कारण किसी क्षेत्र के लोग एक पद्धति से व दूसरे क्षेत्र के लोग दूसरी पद्धति से व तीसरे क्षेत्र के लोग तीसरी पद्धति से परिचित हुए। और वे अपने-अपने गणना के तरीकों को दूसरों से एकदम भिन्न महसूस करने लगे। इस प्रवृत्ति के मूल में मुख्य कारण राष्ट्रीय स्तर पर एक गणना पद्धति का तय न हो पाना था। यदि राष्ट्रीय स्तर पर इन तीनों पद्धतियों की गणना कर एक वैज्ञानिक पद्धति तय कर ली जाती तब बहुत से क्षेत्रीय संवतों की संभावना कम हो सकती थी।

भारत में प्रचलित अधिकांश संवतों को नाम नया नाम देने का ही कार्य किया गया। इनकी गणना पद्धति को किसी भी तरह सुधारने का प्रयास नहीं किया गया। अत: जनता पूर्व प्रचलित गणना पद्धति का प्रयोग करती रही। नये संवत् के प्रति उसमें कोई आकर्षण उत्पन्न नहीं हुआ, जिससे आरम्भ हुआ नया संवत् शीघ्र ही अपने आरम्भकर्ता के अन्त के साथ ही समाप्त हो गया। पुनः उसी क्षेत्र में नये संवत् का प्रादुर्भाव हुआ। यदि पूर्व प्रचलित संवत् को जनता ग्रहण कर लेती तब सम्भव था कि इतनी शीघ्रता से नये-नये संवतों का प्रचलन न किया जाता।

शासकों की पूर्व-प्रचलित प्रथाओं को मिटाने व नये तत्वों को लागू करने की प्रवृत्ति भी संवतों की जन्मदायिनी रही और इस बात की संभावना तब और अधिक बढ़ जाती थी जबकि एक राज्य दूसरे को विजित कर अपना शासन स्थापित करता था। धर्म संस्कृति के समूल नाश में गणना पद्धति भी अछूती नहीं रहती थी व पूर्व प्रचलित संवत् के स्थान पर नये संवत् की स्थापना कर दी जाती थी। चालुक्य, विक्रम, शाहूर व राज्याभिषेक संवतों का प्रादुर्भाव इसी भावना का फल था। इस प्रवृत्ति को प्रान्तवाद का नाम भी दिया जा सकता है। इन संवतों के आरम्भकर्ता प्रान्तीयता की भावना से प्रेरित थे। अतः अपने प्रान्त को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए उन्होंने संवतों के आरम्भ को प्रतीक रूप में ग्रहण किया। इनमें एक नयी पद्धति देने की भावना व जोश था, जो नये संवतों की जन्मदायिनी बनी।

भारत में नये-नये धर्मों व सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव से भी नये संवतों की स्थापना हुई। ये नये सम्प्रदाय अपने धार्मिक नेता को प्रतिष्ठित करने तथा भारत में पूर्व प्रचलित धर्म के बराबरी में अपने धर्म को लाने के लिए नये संवत् आरम्भ करते रहे जैसाकि भारत में पूर्व प्रचलित सनातन धर्म के देवी-देवताओं के नाम पर संवत् प्रचलित थे। महावीर-निर्वाण, बुद्ध-निर्वाण, महर्षि दयानन्दाब्द, बहाई संवत् आदि इसी प्रकार नये सम्प्रदायों द्वारा आरम्भ किए गए संवत् हैं।

अब तक ऐसे कारणों का उल्लेख हुआ है जो भारत में इतनी बड़ी संख्या में सम्वतों के प्रादुर्भाव के लिए उत्तरदायी रहे। अब कुछ ऐसे कारणों को भी समझना जरूरी है जिन्होंने सम्वतों की इस विशाल संख्या को सीमित कर दिया तथा आज भारत में कुल आरम्भ हुए सम्वतों का एक तिहाई भाग ही प्रचलित है, शेष अपने आरम्भ की कुछ शताब्दियों बाद ही अदृश्य हो गये। इस संदर्भ में कुछ कारण इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं :

प्रथम, अधिकतर सम्वतों के आरम्भकर्ता शासक अथवा राजवंशों का शासन-काल सीमित था जब तक कि लोग उनके द्वारा दी गयी किसी नयी व्यवस्था से भली-भांति परिचित हो पाते वे उसे ग्रहण करते, उससे पूर्व ही शासक वंश बदल गया तथा प्रजा नये राजा की नीतियों में उलझ गयी। अतः पहले द्वारा दी गयी पद्धति को स्थाई रख पाना उसके लिए संभव न रहा। इससे आरम्भकर्ता के शासन-समाप्ति के साथ ही अधिकतर सम्वतों का भी अन्त हो गया।

खगोल शास्त्र, ग्रहों व नक्षत्रों की गति का परीक्षण करने तथा उनके आधार पर पंचांग पद्धति को शोधित करने का इन संवतों में अभाव रहा। जिस संवत् के आरम्भकर्ता व बाद में उसके अनुयायियों ने गणना-पद्धति के शोधन पर बल दिया, वह थोड़ा स्थायी रहा, शेष लुप्त हो गये। जनता में भी इन संवतों के प्रति कोई आकर्षण उत्पन्न नहीं हुआ।

क्षेत्रीय व धार्मिक संकीर्णता तथा रूढ़िवादिता ने भी संवतों को प्रचलन से लुप्त हो जाने में सहयोग दिया। एक क्षेत्र, प्रान्त अथवा राज्य के लोग दूसरे राज्य की, एक धर्म के लोग दूसरे धर्म की व रुढ़िवादी लोग किसी भी प्रगति की बात को सुनने, समझने व अपनाने के लिए किसी भी रूप में तैयार नहीं थे। भले ही अपनी प्रथा त्रुटिपूर्ण हो व दूसरे की, अच्छी हो, लेकिन दूसरे धर्म का नाम आते ही वह घृणास्पद बन जाती थी। अतः बहुत से संवत् वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत होते हुए भी तथा उनके आरम्भकर्ताओं द्वारा गणना-पद्धति का शोधन कर लिए जाने के बाद भी अधिक समय प्रचलन में न रह सके। अकबर द्वारा आरम्भ किये दीन-ए-इलाही संवत् को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत में ऐसी कोई भाषा न रही जो देश भर में आम जनता का विचार-माध्यम बनती तथा एक स्थान के लोग दूसरी जगह के तथ्यों को परख पाते। यद्यपि संस्कृत भाषा थी जो पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती थी, लेकिन सदियों से शिक्षा के अभाव ने उसे जनसाधारण से दूर कर दिया व साहित्य की भाषा बना दिया। अत. अलग-अलग भाषा-भाषी क्षेत्रों में गणना की पृथक पद्धतियों का आरम्भ हुआ। सीमित क्षेत्र व सीमित भाषा-भाषी लोगों में ही प्रचलित रहने के कारण ये पद्धतियां शीघ्र ही समाप्त भी हो गयीं।

भारत में विदेशियों के आगमन ने जहां अनेक नये संवतों को जन्म दिया, वहीं प्रचलित अनेक संवतों को समूल नष्ट करने का भी प्रयास किया। ये अपने संवतों को चलाना चाहते थे, अतः राजकार्यों, दैनिक व्यवहार के कार्यों व सार्वजनिक सभाओं, गोष्ठियों व घोषणाओं में विदेशी संवत् प्रयोग किये जाने लगे, अनेक भारतीय संवतों को प्रचलन से बाहर कर दिया गया। इस अवस्था में मात्र वे ही संवत् जीवित रह पाये जिनकी छाप जनसाधारण पर बहुत गहरी थी, शेष धीरे-धीरे लुप्त हो गये। पहले यह कार्य मुसलमानों के आगमन के बाद हिज्रा संवत् ने किया, इसके बाद यही कार्य ईसाई संवत् ने भी किया।

न केवल विदेशियों ने भारतीय संवतों व परम्पराओं का विनाश किया, वरन् स्वदेशी शासकों ने भी यही किया। एक प्रान्त के शासक ने दूसरे प्रान्त को जीत लेने पर वही व्यवहार किया लेने जो एक विदेशी शासक करता

है। वहां प्रचलित संवत् को समाप्त कर अपने संवत् का प्रचलन किया तथा उसके समूल नाश का प्रयास किया। आज बहुत से संवत् ऐसे हैं जिनके विषय में मात्र एक-दो लेख ही उपलब्ध हैं; बाकी साहित्य अथवा इतिहास में इनका उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा स्वदेशी शासकों की पारस्परिक स्पर्धा के कारण हुआ।

जनता के लिए यह सहज प्रक्रिया बन गयी कि जब भी कोई शासक वंश बदलेगा वह अपनी नई नीतियों को उन पर आरोपित करेगा। अतः जनता अधिकांश संवतों के बारे में यही धारणा रखती कि यह शासक द्वारा उन पर लागू किया गया एक नया नियम है। उसके समझने व अपनाने का रुख जनता का नहीं था बल्कि वह तो अपनी पूर्व प्रचलित गणना पद्धति से ही जुड़ी रहना चाहती थी। इस प्रकार शासकों द्वारा आरोपित संवत् अधिक दिन स्थायी न रह सके तथा शीघ्र लुप्त हो गये।

अनेक संवत् मात्र राजनैतिक दबाव के कारण बड़े राजाओं से छोटों ने ने ग्रहण कर लिए। अत: आधीन देश का शासक व जनता उसे घृणा की दृष्टि देखती थी व ऐसी व्यवस्था से शीघ्र छुटकारा चाहती थी। अनेक संवत् मात्र धार्मिक उद्देश्यों को लेकर बनाये गये अत: उनकी जटिल गणना पद्धति व बड़ी-बड़ी संख्याओं के कारण व्यवहारिक उपयोगिता न रही, अनेक संवत् वित्तीय उद्देश्यों को लेकर बनाये गये, जिनका राजनैतिक व धार्मिक महत्व नगण्य था अत: इस प्रकार के एक उद्देशीय संवत् अधिक आयु न पा सके। दूसरे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शीघ्र ही नये संवत् आरम्भ करने पड़े। यदि संवत् के आरम्भ बहुत से उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किये जाते तब सम्भव था कि वे स्थायी होते। शक व विक्रम संवत् इसी तथ्य का प्रतीक है कि उन्होंने राजनैतिक, धार्मिक, अभिलेखीय, साहित्यिक व प्रशासनिक कार्यों को साथ-साथ पूरा किया इसीलिए उनका अस्तित्व आज भी बना हुआ है जबकि इनके बाद में आरम्भ होने वाले संवत् कब के समाप्त हो चुके हैं।

भारत में वर्तमान समय में अनेक संवत् प्रचलित हैं किन्तु उनमें से किसी में भी राष्ट्रीय संवत् बन पाने की क्षमता नहीं है। किसी भी संवत् को राष्ट्रीय बनाने के लिए उसकी कुछ विशिष्टतायें होनी चाहिए। राष्ट्रीय संवत् की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है : जिस संवत् को राष्ट्र के अधिकांश भाग में प्रयोग किया जाये, राष्ट्रीय भावनायें जिसके साथ जुड़ी हों तथा जो इतिहास का प्रमुख आधार रहा हो—ऐसे संवत् को राष्ट्रीय संवत् कह सकते हैं। इस परिभाषा के सन्दर्भ में यदि देखा जाये तो भारत में वर्तमान समय में प्रचलित

सम्वतों में एक भी राष्ट्रीय संवत् होने की विशिष्टतायें नहीं रखता। तिथिक्रम से इन सम्वतों को इस प्रकार परखा जा सकता है :

सर्वप्रथम सृष्टि सम्वत् है, जिसका आरम्भ सृष्टि के आरम्भ के साथ जोड़ दिया गया और सृष्टि का आरम्भ स्वयं विवादास्पद तथ्य है जिसके संदर्भ में साहित्यिक, भौगोलिक व धार्मिक साक्ष्यों से प्राप्त तिथियों में करोड़ों वर्षों का अन्तर मिलता है। इसके व्यतीत वर्षों की विशाल संख्या ने इसे अव्यवहारिक बना दिया है और आज मात्र हिन्दू धर्म पंचांगों में ही इसका उल्लेख होता है। अतः ऐसे संवत् को जिनके वर्तमान समय की संख्या को याद रखना कलीष्ट हो, राष्ट्रीय नहीं माना जा सकता।

हिन्दू धर्म से ही सम्बन्धित दूसरा संवत् कलि संवत् है जो अपनी गणना-पद्धति की सुगमता के कारण हजारों वर्षों से प्रचलन में है तथा इसका आरम्भ भी खगोलशास्त्र की गहरी शोधों व नक्षत्रों के मिलन की महत्वपूर्ण खगोल-शास्त्रीय घटना से हुआ है किन्तु इसकी इकाईयां अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरानी पड़ चुकी हैं। आधुनिक समय में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समय की गणना के मापकों के साथ इसका सामंजस्य नहीं किया गया है। अतः इसको राष्ट्रीय संवत् मानें तब पूरी ही पंचांग व्यवस्था नयी घड़ियों के निर्माग, नई तरह की वेधशा-लाओं का निर्माण करना होगा जो बहुत खर्चीला व कठिन कार्य है।

इसके पश्चात् बुद्ध निर्वाण व महावीर निर्वाण संवतों को लेते हैं। धर्म-प्रर्वत्तकों के नाम पर आरंभ होने तथा उनकी जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित होने के कारण इन संवतों का राष्ट्रीय प्रसार न हो पाया। मात्र इन सम्प्रदायों के अनुयायियों ने ही, वह भी सिर्फ धार्मिक उद्देश्यों के लिए इनका प्रयोग किया। साथ ही इन संवतों के लिए कोई निश्चित व पूर्व गणना पद्धति से पृथक गणना पद्धति भी आरंभ नहीं की गई, अतः इनको राष्ट्रीय संवत् का स्तर प्राप्त होना संभव नहीं।

भारतीय इतिहास में विक्रम सम्वत् भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। साधारण गणना के अनुसार विक्रम संवत् की स्थापना ५७ ई० पूर्व से आरम्भ होती है। आरम्भ में कृत फिर मालव इसके बाद विक्रम संवत् के नाम से इस संवत् को जाना गया। प्राचीन काल में इस संवत् का प्रयोग दक्षिणी-पूर्वी राजपूताना, मध्य भारत तथा गंगा के उत्तरी मैदान में प्रचलित था। पांचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक इस संवत् का प्रयोग मालव नरेश ने किया। इस सम्वत् के साथ विक्रम शब्द धीरे-धीरे नवीं शताब्दी के बाद ही जुड़ा, शक सम्वत् के

समान ही विक्रम संवत् का विस्तार क्षेत्र भी सम्पूर्ण भारत एक साथ नहीं बन पाया। यद्यपि यह स्वदेशी कहा जा सकता है पर राजकार्यों में इसका प्रयोग अधिक समय नहीं हो पाया, अतः इसको भी भारतीय राष्ट्रीय संवत् नहीं माना जा सकता।

इनके बाद शक संवत् का नम्बर आता है। जिसने भारतीय इतिहास को सर्वाधिक प्रभावित किया। इसका विकास तीन चरणों में हुआ। प्रथम पुराना शक संवत्। ऐसा माना जाता है कि कनिष्क ने किसी नये संवत् का आरम्भ नहीं किया, अपितु यह उससे कई शताब्दी पहले ही प्रचलित था। वान लोहिजन डी-ल्यू का विचार है कि तिथि गणना की प्राचीन भारतीय प्रथा १०० का अंक छोड़कर गणना करने की थी। मथुरा के अनेक ब्राह्मी अभिलेखों में ५ से ५७ वर्ष तक की तिथियाँ हैं, जिनमें प्राचीन भारतीय प्रथा का अनुसरण किया गया है। वहां १०५ के लिए ५ तथा ११४ के लिए १४ कुषाण संवत् के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मथुरा के पास के प्रथम शताब्दी के लेखों की तिथि के सम्बन्ध में यही धारणा है। एम०एन० शाह के अनुसार कनिष्क का प्रथम वर्ष पुराने शक संवत् का २०१ वर्ष है। कनिष्क सन् ७८ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ और तब उसने नया शक संवत् चलाया। वान लोहिजन डी-ल्यू तथा एम०एन० शाह के विचारों से यही तथ्य सामने आता है कि पुराना शक संवत् १२३ ई० पूर्व में आरंभ हुआ तथा इसमें शताब्दियों का अंक छोड़कर गणना की जाती थी। ७८ ई० में आरंभ होने वाला संवत् नया शक संवत् माना जाता है। यह संवत् के विकास का दूसरा चरण माना जा सकता है। इसका प्रयोग आज भी हिन्दू धर्म कार्यों के लिए किया जाता है। इसे राष्ट्रीय संवत् मानने में कुछ कठिनाईयाँ हैं। प्रथम इसके वर्ष का आरंभ देश के विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग ऋतुओं में किया जाता है। दूसरा वर्ष की ही भाँति इसके महीनों का आरम्भ भी अलग-अलग स्थानों पर पृथक रूप से है। पूर्णिमान्त व आमांत दो प्रकार के माह प्रचलित हैं। इसके साथ ही ईसाई व हिज्री संवतों के समान ही शक संवत् पर भी विदेशी होने का आरोप लगाया जा सकता है जैसा कि इसके नाम से ही विदित है। अतः शक संवत् से इस स्वरूप को भारतीय राष्ट्रीय संवत् नहीं माना जा सकता। शक संवत् तीसरे चरण में, स्वतन्त्र भारत की सरकार द्वारा उसे राष्ट्रीय संवत् के रूप में ग्रहण करने के साथ आरंभ होता है। भारत सरकार ने जिस शक संवत् को राष्ट्रीय संवत् के रूप में ग्रहण किया उसका स्वरूप ७८ ई० में आरम्भ होने वाले शक संवत् से भिन्न है। २२ मार्च, १९५७ ई० को इसे भारतीय राष्ट्रीय संवत् के रूप में ग्रहण कर लिया गया है,

परन्तु तीन दशक बीत जाने पर भी यह राष्ट्रीय महत्व प्राप्त नहीं कर पाया, अन्य दूसरे राष्ट्रीय चिन्हों, राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत के समान राष्ट्रीयता की भावना इस संवत् के साथ नहीं जुड़ पायी है (इसके कारणों का उल्लेख आगे वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग की आलोचना के संदर्भ में किया जायेगा)।

यद्यपि अपने आरम्भ के डेढ़ सहस्त्राब्द ईसाई संवत् का परिचय भारतीय इतिहास से हुआ, किन्तु भारत में पूर्व प्रचलित संवतों से अधिक इसका प्रयोग प्रशासनिक, दैनिक व्यवहार तथा इतिहास लेखन के लिए हुआ है। फिर यह भी विचारणीय विषय है कि ईसाई संवत् को ही भारतीय राष्ट्रीय पंचांग के रूप में ग्रहण कर लिया जाए किन्तु इस संदर्भ में सबसे पहली समस्या तो यही है कि इसकी पद्धति को भी अनेक भारतीय संवतों की पद्धति के समान शोधन की आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि भारत में इसे विदेशी आक्रान्ताओं व शासकों द्वारा आरोपित किया गया है। अतः इसके साथ राष्ट्रीय गौरव व राष्ट्र हित की भावना नहीं जोड़ी जा सकती, जबकि किसी भी तथ्य को राष्ट्रीय बनाने के लिए यह आवश्यक है। लगभग चार शताब्दियों से यह भारत में प्रचलित है किन्तु भारतीय जनता अभी तक इसे धार्मिक कार्यों के लिए नहीं अपना पायी है। अत: यह राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ नहीं है।

इस्लाम गणना पद्धति पर आधारित हिज्रा संवत् भी भारत में वर्तमान समय में प्रचलित है तथा कई शताब्दियों तक भारत के प्रशासनिक कार्यों में भी प्रयुक्त हुआ है। इसको यदि भारतीय राष्ट्रीय संवत् के रूप में परखा जाए तो इसकी कुछ कमियां इस प्रकार दीख पड़ती हैं: प्रथम तो यह धर्म प्रचारक मौहम्मद की जीवन घटना से सम्बन्धित है, अत: जो समस्या दूसरे सम्प्रदायों द्वारा संवत् को ग्रहण न कर पाना अन्य सम्प्रदायों के संवतों के साथ है, वही इसमें भी है। दूसरा इसके वर्ष की लम्बाई चन्द्रीय चक्र पर आधारित है तथा किसी भी समयान्तर पर इसको सौर वर्ष के बराबर लाने का प्रयास नहीं है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष की लम्बाई सौर मान पर है जिससे विश्व के अनेक सौर पंचांगों से इसका वर्ष व शताब्दी निरन्तर छोटे रहते जा रहे हैं। इसमें ऋतुओं व महीनों का सामंजस्य नहीं है। प्रति वर्ष ऋतुओं के महीनों के नाम बदल जाते हैं। साथ ही भारत की बहु-संख्यक जनता के लिए यह विदेशी है अतः इसे राष्ट्रीय संवत् नहीं माना जा सकता।

बहाई संबत् जो बहाई सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, भी भारत के वर्तमान प्रचलित संवतों में है। यह धर्म नेता बाब से सम्बन्धित है। यद्यपि इस संवत् में अब तक प्रचलित संवत् से कुछ पृथक पद्धति अपनायी गयी है तथा इसको वैज्ञानिकता प्रदान करने का प्रयास भी हुआ है, इसमें १९-१९ दिनों के १९ महीनों में पूरे सौर वर्ष को बाँटा गया है। परन्तु यह भी साम्प्रदायिक व धार्मिक ही है, तथा राष्ट्रीय नेतृत्व नहीं करता।

उपरोक्त उल्लिखित कुछ विशिष्ट संवतों के अतिरिक्त श्री कृष्ण, बंगाली सन्, कोल्लम संवत्, फसली, आदि संवत् भी भारत में प्रचलित हैं, किन्तु इन संवतों की गणना पद्धति स्पष्ट न होने व इनके आरम्भिक समय के विषय में गहरा मतभेद होने के कारण ये शहस्त्राब्दियों व शताब्दियों बाद भी वहीं तक सीमित हैं, जिन सम्प्रदाय व क्षेत्र में इनका आरंभ हुआ था। अतः इनमें राष्ट्रीय संवत् बन पाने की क्षमता नहीं है।

स्पष्ट है कि उपरोक्त उल्लिखित अनेक संवत् यद्यपि बहुत समय तक भारत के राजनैतिक, प्रशासनिक व धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त हुए, परन्तु आज की भारतीय परिस्थितियों में उनमें भारतीय राष्ट्रीय संवत् बनने की क्षमता नहीं है। इन संवतों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि ये बहुउद्देशीय नहीं बन पाये। जो धर्म से सम्बन्धित था, मात्र धार्मिक ही रहा, जो प्रशासनिक था, प्रशासनिक ही रहा। दैनिक व्यवहार, धर्म, प्रशासन, भारत के समस्त भू-प्रदेश पर प्रचलन तथा अधिकांश जनता द्वारा एक साथ ग्रहण करने जैसे विभिन्न उद्देश्यों को किसी ने भी एक साथ पूरा नहीं किया।

इतिहास इसका साक्षी है कि अनेक घटनाओं ने विश्व के अनेक राष्ट्रों को समय गणना पद्धति के सुधार तथा नया राष्ट्रीय संवत् अपना लेने को प्रेरित किया। फ्रान्स का क्रान्तिकारी कलैण्डर इसका उदाहरण है। नेपाल में भी विक्रम संवत् को लगभग राष्ट्रीय संवत् का स्थान प्राप्त है। "नेपाल में सारा व्यवहार विक्रम संवत् के अनुसार होता है। राजनीति से लगाकर बैंक तक सब जगह इसी राष्ट्रीय संवत् के हिसाब से सारा काम धाम चलता है।"[1] १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने भी यह महसूस किया कि भारत में प्रचलित असंख्य संवतों के स्थान पर एक राष्ट्रीय पंचांग ग्रहण किया जाये। इसके लिए शक संवत् को सर्वाधिक उचित समझा गया। एक नया राष्ट्रीय

१. बनवारी, 'समय का जीवन से कटा हुआ पैमाना', "जनसत्ता", १ जनवरी, १९८७, पृ० ४।

संवत् आरंभ किये जाने का मूल कारण यही था कि प्राचीन संवतों की संख्या बहुत अधिक हो गयी थी तथा उसमें से किसी को भी राष्ट्रीय नहीं माना जाता था, कोई भी पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता था और न ही किसी की भी गणना पद्धति इतनी सशक्त थी कि वह नवीन धारणाओं, नागरिक, सामाजिक व धार्मिक भावनाओं का प्रतिनिधित्व कर पाता। भारत वर्ष में प्रारम्भिक संवत् दैनिक चरित्रों, धार्मिक विश्वासों तथा अलौकिक व्यक्तियों से ही सम्बन्धित थे। इसके अतिरिक्त इनकी गणना विधि अत्यधिक जटिल और इनके गणक बहुत बड़ी-बड़ी संख्याओं वाले थे, जिसके कारण ये संवत् सामान्य प्रयोग के लिए उचित न थे। क्योंकि ये संवत् अधिक से अधिक प्राचीनता से जुड़ जाना चाहते थे, अतः इनके अंक भी सहस्त्रों में आने लगे। इस श्रेणी में मूल रूप से सृष्टि संवत्, राम का काल, ब्रहस्पति काल, कलियुग, युधिष्ठिर संवत्, परशुराम का चक्र, लौकिक संवत्, ग्रह परिवर्ती चक्र आदि आते हैं। उपरोक्त संवत् जो धार्मिक चरित्रों से सम्बद्ध थे या मिथकों पर आधारित थे, अपनी गणना पद्धति के कारण ही धीरे-धीरे सामान्य प्रयोग से हटते चले गये। इसके पश्चात् भारत में संवतों को ऐतिहासिक घटनाओं से जोड़ने की प्रथा प्रचलित हुयी। इनमें यद्यपि गणना पद्धति तो प्राचीन ही ग्रहण कर ली गयी थी तथा बहुत से तथ्य परस्पर मेल खाते हैं, परन्तु विभिन्न शासकों ने विभिन्न अवसरों पर इनका आरंभ किया। इस प्रकार भारत में बहुत से संवतों का प्रचलन हुआ। इनमें अनेक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी प्रचलित हैं। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार के समक्ष यह समस्या थी कि इनमें से किसको राष्ट्रीय पंचांग के रूप में ग्रहण किया जाये। नये राष्ट्रीय पंचांग (संवत्) का स्वरूप क्या हो? तथा नया पंचांग किन उद्देश्यों को पूरा करे? इन्हीं सब समस्याओं को सुलझाने व भारत के लिए राष्ट्रीय पंचांग का निर्माण करने के लिए नवम्बर, १९५२ में भारत सरकार द्वारा एक कलैण्डर सुधार समिति की स्थापना की गयी। "समिति की स्थापना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र में प्रचलित विभिन्न संवतों, जो परस्पर भिन्न हैं, का अध्ययन करना था तथा एक नया कलैण्डर बनाना था जो पूरे राष्ट्र में नागरिक व प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रयोग किया जा सके।"[1]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने सर्वप्रथम यह आन्दोलन आरम्भ किया कि समस्त भारत के लिए ज्योतिष के

---

१. 'इण्डिया, १९७९' हिन्दी रूपान्तर, "भारत वार्षिक संदर्भ ग्रंथ", फरीदाबाद, १९७९, पृ० २५।

प्रामाणिक आधार पर एक कलैण्डर बनाया जाये। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय कलैण्डर का निर्माण किये जाने का एक महत्वपूर्ण कारण ग्रिगोरियन कलैण्डर का त्रुटिपूर्ण होना भी है।

इतिहास लेखन का प्रमुख आधार संवत् है। घटनाओं का क्रमिक रूप में अध्ययन करने व उसके समयान्तर को समझने के लिए संवत् की आवश्यकता है। एक राष्ट्र की राष्ट्रीय पहचान व राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीय संवत् की आवश्यकता है। "जिस संवत् को राष्ट्र के अधिकांश भाग में प्रयोग किया जाये, जिसके साथ राष्ट्रीय भावना जुड़ी हो तथा जो इतिहास का प्रमुख आधार रहा हो, ऐसे संवत् को राष्ट्रीय संवत् कह सकते हैं।"[1] किसी भी राष्ट्र की पहचान के लिए राष्ट्र के कुछ विशेष चिन्ह होते हैं अपने पृथक-पृथक स्वार्थों में मनुष्यों में चाहे जो भी भेद-भाव हों, लेकिन इन चिन्हों के प्रति उन भावनाओं के प्रति राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक स्वयं को समान रूप से उत्तरदायी महसूस करता है। इन्हीं कुछ तत्वों के प्रति मनुष्यों की भावनायें एक राष्ट्रीयता को जन्म देती हैं। राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करती हैं। जिस प्रकार एक राष्ट्र की राष्ट्रीय एकता को राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय चिन्ह से संबल मिलता है, इसी परिप्रेक्ष्य में यदि एक राष्ट्रीय सम्वत् भी हो तब वह राष्ट्रीय एकता के निर्माण में महत्वपूर्ण सहायक हो सकता है। भारतवर्ष की परिस्थितियों में यह तथ्य और भी अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि यहाँ विभिन्न सम्प्रदायों, धर्म व जाति के लोग बसते हैं। जो अपने-अपने सम्प्रदायों से सम्बन्धित सम्वतों व गणना पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं एक ही सम्प्रदाय द्वारा विभिन्न संवत् प्रयोग किये जाने, एक ही संवत् का विभिन्न रूप में प्रयोग करने तथा एक ही संवत् के वर्ष का देश के विभिन्न भागों में पृथक-पृथक वर्षारंभ मनाने की प्रथा भी भारत में प्रचलित है। इस प्रकार की प्रवृत्ति एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के रीति-रिवाजों व त्यौहारों से अनभिज्ञ रखती है तथा विभिन्न सम्प्रदायों में पृथकता की भावना पनपती है। अतः भारतीय परिस्थितियों में यह और भी अनिवार्य हो जाता है कि एक वैज्ञानिक व सर्व उपयोगी राष्ट्रीय संवत् ग्रहण किया जाये।

---

१. अपर्णा शर्मा, 'भारतीय राष्ट्रीय सम्वत्', "शोधक", वोल्यूम १५, १९८५, पृ० ३९।

वर्तमान भारतीय राष्ट्रीय पंचांग

वर्तमान राष्ट्रीय कलैण्डर का निर्माण करते समय कुछ प्राकृतिक दृश्यों को ध्यान में रखा गया तथा कुछ पूर्व प्रचलित सिद्धान्तों को शोधित रूप में ग्रहण किया गया। पंचांग के आरम्भिक अवस्था में इन्हीं प्राकृतिक दृश्यों ने मनुष्यों को समय गणना के लिए प्रेरित किया। समय के अनन्त प्रवाह को ये ही प्राकृतिक दृश्य विभाजित करते हैं। हमेशा दोहराये जाने वाले दिन-रात, चन्द्रमा की कलाओं का पुनरागमन, ऋतुओं का दोहराया जाना आदि इनमें प्रमुख हैं। समय को मापने के लिए इसी पुनरागमन को आधार माना गया। ये दृश्य मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये सारे मानव जीवन व पशु जीवन को निश्चित करते हैं। सभ्यता के आरंभ में जब मनुष्यों ने नदियों की घाटियों में जीवन आरंभ किया तो इन प्राकृतिक दृश्यों को बहुत महत्व दिया। इस अवस्था में मनुष्य कृषि पर निर्भर थे तथा कृषि इन्हीं प्राकृतिक दृश्यों पर निर्भर थी। इसी के आधार पर सामाजिक व राष्ट्रीय त्यौहार मनाये जाते थे, जो कि सभ्यता के लिए अनिवार्य थे, लोग पहले से ही नये चन्द्रमा व पूर्ण चन्द्रमा के विषय में जानना चाहते थे। कृषि के विभिन्न कार्यों मानसून का आना, बीज बोना, फसल काटना आदि मुख्य त्यौहारों के रूप में मनाये जाते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय कलैण्डर पूर्व अनुभवों के आधार पर इन्हीं घटनाओं की भविष्यवाणी के रूप में विकसित हुआ।

दिन इन प्राकृतिक दृश्यों से सबसे छोटी इकाई थी तथा यह पंचांग के आधार रूप में ग्रहण की गयी। आज भी विभिन्न पंचांगों में विभिन्न नामों से यह समय मापन का महत्वपूर्ण तथ्य माना जाता है। विभिन्न राष्ट्रों में दिन के मापने के लिए अलग-अलग समय प्रयोग किये गये। सूर्योदय से सूर्योदय तक, सूर्यास्त से सूर्यास्त तक, आधी रात से आधी रात तक, दोपहर से दोपहर तक आदि। "सौर दिन के अतिरिक्त खगोलशास्त्रियों ने एक नाक्षत्र दिन भी परिभाषित किया है जो कि दो क्रमिक पारगमन का काल है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपनी धुरी पर घूमती है, उसके समय को मापता है। सौर दिन साइड्रियल दिन से बड़ा होता है क्योंकि पृथ्वी जब तक अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा करती है तब तक सूर्य पूर्व में एक डिग्री खिसक जाता है। पृथ्वी की कक्षा में गति के कारण यह थोड़ा अधिक समय लेता है।"[1]

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफार्म कमेटी", १९५५, नई दिल्ली, पृ० १५७।

महीना मुख्य रूप में चन्द्रीय तथ्य है तथा इसकी समय तिथि सूर्य व चन्द्रमा के संवेग पर निर्भर है। "वर्तमान चन्द्र माह की अवधि २९.५३०५८८१ दिन या २९ दिन, या २९ दिन १२ घण्टे ४४ मिनट २.६ सैकेण्ड है। महीनों के और भी बहुत से प्रकार हैं जो चन्द्रमा व सूर्य से लिये गये हैं ?"[1]

पंचांग निर्माण कार्य को प्रभावित करने वाला तीसरा महत्वपूर्ण प्राकृतिक दृश्य ऋतु अथवा वर्ष है। वर्ष की लम्बाई के संदर्भ में प्राचीन धारणायें अस्पष्ट हैं। अधिकांश राष्ट्र प्राचीन समय में वर्ष की लम्बाई ३६० दिन मानते थे जिसमें १२ माह ३०-३० दिन के होते थे। उनका विचार था कि चन्द्रमा की कलाएं ३० दिन बाद पुनः दोहरायी जाती हैं, अनुभव के आधार पर पाया गया कि यह पद्धति गलत है, फिर भी इसने पंचांग इतिहास पर गहरी छाप छोड़ी। मिश्रवासियों ने नील नदी की बाढ़ के आधार पर बहुत पहले ही यह जान लिया कि वर्ष की लम्बाई ३६५ दिन है। बाद में उन्होंने वर्ष की सही लम्बाई ३६५.२५ दिन के लगभग पा ली। अर्थात् प्राकृतिक दृश्यों के निरन्तर परखते जाने से ही आदि युग में मनुष्यों ने समय मापन पद्धति को पाया तथा उसके विभाजन में भी उन्हें सहायता मिली। वर्तमान सायन वर्ष की लम्बाई यह है— ३६५.२४२१९५५ दिन[2]। जब सूर्य पुनः अपने सही रास्ते पर लौट आता है, उसमें जितना समय लगता है कुछ राष्ट्रों में प्राचीन समय में इसी समयावधि को एक नाक्षात्रिक वर्ष की लम्बाई माना जाता था। कलैण्डर के विकास के ऐतिहासिक क्रम का प्रयोग दो उद्देश्यों के लिये किया गया। प्रथम, नागरिक व प्रशासनिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिये। दूसरा, मानवीय जीवन को निरन्तरता देने के लिये। प्राचीन व मध्य काल में समाज, चर्च (धार्मिक संस्थायें) व शासक एक दूसरे से गुथे थे। एक कलैण्डर का प्रयोग सबके लिये होता था लेकिन आज के युग में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक व सामाजिक नीतियों को तय करने की आवश्यकता है। अतः एक धार्मिक संस्था से जुड़े कलैण्डर का प्रयोग प्रशासनिक, नागरिक व धार्मिक तीनों कार्यों के लिये नहीं किया जा सकता। आज के युग में एक अन्तर्राष्ट्रीय संवत् की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

सुविधा के लिये दिन को भी अनेक उप-भागों में बांटा गया। विभिन्न पंचांगों में यह व्यवस्था भिन्न प्रकार की है। एक घड़ी समय को विभिन्न

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफार्म कमेटी", नई दिल्ली, १९५५, पृ० १५८।
२. वही।

बराबर हिस्सों में बाँटती है। प्राचीन बेबीलोन में दिन व रात की सम्मिलित इकाई थी। मिश्र में दिन को बारह भागों तथा रात्रि को बारह भागों में बांटा गया। बाद के मध्य युग में पूरे दिन व रात के समय के लिए २४ घण्टों का विभाजन अपना लिया गया। दिन का विस्तृत बंटवारा हिन्दुओं द्वारा दो रूप में किया गया। दिन को चार बराबर भागों में जो कि प्रहर कहलाते थे, बाँटा गया तथा रात का भी विभाजन ठीक इसी प्रकार चार प्रहरों में किया गया। भारतीय समय मापन की प्रहर महत्वपूर्ण इकाई थी। लोग प्रहर व आधे प्रहर का प्रयोग करते थे। सिद्धान्त ज्योतिष में पूर्ण रूप से वैज्ञानिक व्यवस्था दिन के उपभागों के लिए विकसित कर ली गयी थी। इसकी मुख्य इकाईयां घटिका, प्रहर, यम व मुहूर्त आदि हैं। सूर्योदय से अगले सूर्योदय का एक दिन था जिसको ६० बराबर घटिकाओं में बांटा गया, प्रत्येक घटिका ६० बराबर पल में बांटी गयी थी, प्रत्येक पल ६० विपल में बंटा था, इस प्रकार एक दिन में ६० घटिका, ३६०० पल, या २१६००० विपल होते थे। काल गणना के लिए वर्ष को इकाई माना गया। यह इतिहास काल की बात है। प्रागैतिहासिक काल में काल गणना वर्ष के बजाय ऋतु चक्र द्वारा की जाती थी। एक शरद ऋतु के आरम्भ होने से दूसरी शरद के आरम्भ होने तक का समय शरद कहलाता है। वर्ष स्वयं एक ऐसा शब्द है जिसका अभिप्राय: एक वर्षा काल के आरम्भ से दूसरी वर्षा तक के आरम्भ तक का समय अंतर्निहित है। ऋग्वेद में शरद, बसन्त और हेमन्त शब्दों का प्रयोग वर्ष या संवत्सर के अर्थ में हुआ है।

वैदिक भाषा में ऋतु चक्र को यज्ञ और प्रजापति भी कहा गया है। इसकी उत्पत्ति सूर्य से होती है। अर्थात् ऋतुयें सूर्य से उत्पन्न होती है इसीलिए सूर्य को ऋतुओं का पिता तथा सविता कहा गया है और उस सविता का पुत्र उक्त ऋतु चक्र "वत्स", "संवत्सर" या "वत्सर" कहा गया। "ये संवत्सर पांच प्रकार के होते थे, इसीलिए सूर्य को पंचपाद पितरं भी कहा गया है। एक संवत्सर में पांच ऋतुयें होती हैं और ऐसे पांच ऋतु चक्रों का एक युग माना गया है : (१) संवत्सर (२) परिवत्सर (३) इडावत्सर (४) अनुवत्सर (५) उद्वत्सर। इन पांच वर्षों के ऋतु सम्बन्धी सूक्ष्म विभागों का अनुसंधान गणित द्वारा किया जाता था यह अनुसंधान ही पंचांग कहलाता था।"[1]

वर्ष और ऋतु चक्र में तालमेल बैठाने के लिए यूरोपीय पंचांग में 'लीपइयर" की व्यवस्था की गयी तथा भारतीय पंचांग में "अधिमास" की व्यवस्था की गयी।

---

१. "कादम्बनी", जनवरी १९८७, दिल्ली, पृ० २२।

उपरोक्त लिखित दिन, माह व वर्ष तीन प्राकृतिक दृश्यों को राष्ट्रीय पंचांग में भी ग्रहण किया गया है। इनके समय में थोड़ा परिवर्तन हुआ है तथा रात-दिन का विभाजन २४ घण्टों में किया गया है। प्रत्येक घण्टा, मिनट, सैकेण्ड तथा इससे भी अधिक सूक्ष्म इकाई आज प्रयोग की जा रही है। यह पाश्चात्य कलैण्डर व्यवस्था का प्रभाव है।

राष्ट्रीय पंचांग के धार्मिक नियम को अधिकाधिक विस्तृत करने का प्रयास किया गया। भारतीय धार्मिक विविधता के कारण पूरे राष्ट्र के लिए सामान्य नियम बनाना असम्भव है। अतः धार्मिक उत्सवों व उनसे सम्बन्धित छुट्टियों को तय करने के लिए कुछ पूरे राष्ट्र के लिए सामान्य नियम बनाये गये। जैसा कि कुछ बड़े त्यौहार जो कि चक्र सौर पंचांग पर आधारित है, उनके लिए छुट्टियों की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि विभिन्न सम्प्रदायों के लिए अलग धार्मिक छुट्टियों की व्यवस्था है। इस सम्बन्ध में क्षेत्रीयता का भी ध्यान रखा गया है। जिस क्षेत्र में कोई त्यौहार अधिक मान्य है वहां उसके लिए अधिक छुट्टियों की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त भारतीय सरकारी छुट्टियों की भी पृथक से व्यवस्था की गयी है, जो कि पूरे राष्ट्र के लिए समान रूप में मान्य है। इस श्रेणी में सर्वप्रथम छुट्टी "नये वर्ष आरम्भ" की, २२ मार्च की है। इसके अलावा स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, कुछ महापुरुषों के जन्म दिवस तथा राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाने वाले अनेक बड़े त्यौहारों की छुट्टियां सम्मिलित हैं।

धार्मिक क्षेत्र में राष्ट्रीय कलैण्डर में अपनाये गये नियम व व्यवस्थायें वास्तव में सराहनीय हैं। भारत जैसे धार्मिक विविधता वाले राष्ट्र में इसी प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है। इस संदर्भ में विद्वानों ने अनेक बड़े त्यौहारों के परस्पर सामंजस्य द्वारा साम्प्रदायिक सद्भाव जुटाने का भी प्रयास किया है। किन्तु सरकारी छुट्टियों के संदर्भ में यदि उन्हें राष्ट्रीय त्यौहार व राष्ट्रीय छुट्टियों का नाम दिया जाता, तब सम्भवतः अधिक उचित होता। शायद इस बात को मानने में हमारे किसी भी सम्प्रदाय को कठिनाई नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इस श्रेणी में वे ही छुट्टियाँ हैं जो पूरे राष्ट्र के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। चाहे वे किसी राष्ट्रीय नेता से सम्बन्धित हैं, चाहे राष्ट्रीय पंचांग से सम्बन्धित हैं अथवा महात्मा बुद्ध जैसे नेता के जन्म दिन से सम्बन्धित हैं, जिनका महत्व हमारे सांस्कृतिक जीवन में आज भी उतना ही है जितना २ सहस्त्राब्दियों पहले था, तथा वे न केवल भारत के लिए वरन् विश्व भर में मानवता के पोषण के लिए महत्व की हैं। कलैण्डर निर्माण के क्षेत्र में प्रयोग हुए

धार्मिक अधिकार व नियम भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न हैं व विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों में भिन्न हैं। कोई भी एक सामान्य नियम पूरे भारत के लिए इस सम्बन्ध में बना पाना बहुत कठिन है।"[1] सम्भवतः यही कारण रहा कि धार्मिक क्षेत्र में राष्ट्रीय पंचांग को कोई महत्व नहीं मिल पाया। अपूर्व कुमार का तो विश्वास है कि यदि समिति पंचांग को वैज्ञानिक नागरिक कलैण्डर तक ही रहने देते तब अधिक उचित होता। "कलैण्डर के मुख्य दो उद्देश्य, धार्मिक व तिथिक्रम हैं। कलैण्डर सुधार के सम्बन्ध में हुए आन्दोलन इन दोनों उद्देश्यों के बीच तालमेल नहीं बैठा पाये। इस आन्दोलनों ने लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचायी। कलैण्डर सुधार समिति अधिक सफल होती, यदि इसको एक समान तथा वैज्ञानिक नागरिक कलैण्डर बनाने तक ही सीमित रखा जाता, लेकिन सुधारकों ने इस तरह से चलने के स्थान पर धार्मिक भावनाओं को वैज्ञानिक खगोलशास्त्र से जोड़ने का प्रयास किया जिसमें उन्हें असफलता हाथ लगी।"[2] अपूर्व कुमार की यह आलोचना उचित नहीं है। समिति द्वारा धार्मिक उद्देश्यों को लेकर चलना उचित ही था। भारत में धार्मिक विविधता के कारण ही इतने सम्वतों ने जन्म लिया। बगैर इस तथ्य को समाहित किये कोई भी पंचांग राष्ट्रीय एकता लाने में समर्थ नहीं हो सकता है, न ही प्रजा का आकर्षण पा सकता है, बल्कि अधिक उचित होता, यदि समिति द्वारा राष्ट्रीय पंचांग निर्माण के लिए धार्मिक संस्थाओं व धर्म नेताओं का भी सहयोग लिया जाता। इससे धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित पंचांगों की त्रुटियों को भी सुधारा जा सकता था। (इसका उल्लेख इसी अध्याय में राष्ट्रीय पंचांग की आलोचना के संदर्भ में आगे किया जायेगा।)

समिति की तीन बैठकों में कुछ सुझाव तय किये गये तथा उनकी सिफारिश भारत सरकार से पंचांग निर्माण के संदर्भ में की गयी। ये प्रस्ताव रखे गये कि प्रयोग के रूप में सम्पूर्ण भारत के लिए पांच वर्ष का राष्ट्रीय कलैण्डर बनाया जाये, जिसमें तिथि, दिनांक, दिन, मास तथा चन्द्र-दिवसों को तथा नक्षत्रों को दर्शाया जाये। भारतीय ग्रहों के दैनिक अध्ययन तथा गति सम्बन्धित एक क्रमिक पत्रिका संकलित करने का प्रयास किया जाये। किसी उचित स्थान पर एक राष्ट्रीय वेधशाला स्थापित की जाये, जिसमें आधुनिक यन्त्र तथा साधन

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", १९५५, नई दिल्ली, पृ० १०१।
२. अपूर्व कुमार चक्रवर्ती, "ओरिजन एण्ड डवेलपमैन्ट ऑफ इण्डियन कलैण्डरीकल साइंस", कलकत्ता, १९७५, पृ० ४।

उपलब्ध हों। ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये गये। इस कार्य के लिए एन० सी० लाहरी तथा सी० बी० वैद्य को नियुक्त किया गया, जिन्होंने पांच वर्ष अर्थात् १९५४-५५ से १९५८-५९ ई० (शक सम्वत् १८७९ से १८८०) तक के लिए प्रयोगात्मक भारतीय राष्ट्रीय कलैण्डर तैयार किया।

दूसरी बैठक ८ मार्च, १९५४ को सी० सी० एस० आई० आर० बिल्डिग, नई दिल्ली में हुयी। इस बैठक में सुधरा पंचांग बनाने के लिए पद्धति पर विस्तार से विचार विमर्श किया गया। इसमें चैत्र को वर्ष का प्रथम माह मानने तथा महीनों की लम्बाई आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया। इस बैठक में यह भी प्रस्ताव रखा गया कि सम्वत् का लौंद वर्ष ग्रिगेरियन पंचांग के लौंद वर्ष से मेल खाना चाहिए।

सितम्बर, १९५४ में कलैण्डर सुधार समिति की तीसरी अन्तिम निर्णायक बैठक में समिति द्वारा यह सिफारिश की गयी कि "राष्ट्र के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न पंचांगों का प्रयोग हो रहा है, जो परस्पर भिन्न है। अत: एक राष्ट्रीय पंचांग समान रूप से सभी राज्यों में नागरिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए, जहां तक सम्भव हो क्षेत्रीय कार्यों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।"[१] इस बैठक में भारतीय राष्ट्रीय पंचांग का स्वरूप निर्धारित कर दिया गया। समिति की राष्ट्रीय पंचांग के संबन्ध में कुछ प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थीं :

(१) सुधरे राष्ट्रीय पंचांग में शक सम्वत् का प्रयोग करना चाहिए।

(२) वर्ष का आरम्भ महाविषुव अर्थात् २१ मार्च (रात दिन बराबर होने का समय) से होना चाहिये।

(३) साधारण वर्ष ३६५ दिन तथा लौंद का वर्ष ३६६ दिन का हो। शक सम्वत् के प्रचलित वर्ष में ७८ जोड़ने पर यदि ४ से पूर्ण बंट जाये तब लौंद का वर्ष होगा, लेकिन शताब्दियों को ४०० से बांटने पर पूर्ण बंट जाये, तब ही लौंद का वर्ष होगा।

(४) चैत्र, वर्ष का प्रथम माह होगा तथा अन्य महीनों की लम्बाई इस प्रकार होगी :

चैत्र	३० दिन
वैशाख	३१ दिन

---

१. "रिपोर्ट आफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, पृ० ६।

ज्येष्ठ	३१ दिन
आषाढ़	३१ दिन
श्रावण	३१ दिन
भाद्र	३१ दिन
आश्विन	३० दिन
कार्तिक	३० दिन
अग्रहायण	३० दिन
पौष	३० दिन
माघ	३० दिन
फाल्गुन	३० दिन

इस राष्ट्रीय पंचांग की तिथियां आधुनिक ग्रिगेरियन पंचांग की तिथियों से इस प्रकार मेल खायेंगी :

चैत्र प्रथम	२२ मार्च (साधारण वर्ष में २२ मार्च तथा लौंद के वर्ष में २१ मार्च)
वैशाख प्रथम	२१ अप्रैल
ज्येष्ठ प्रथम	२२ मई
आषाढ़ प्रथम	२२ जून
श्रावण प्रथम	२२ जुलाई
भाद्र प्रथम	२३ अगस्त
आश्विन प्रथम	२३ सितम्बर
कार्तिक प्रथम	२३ अक्टूबर
अग्रहायण प्रथम	२२ नवम्बर
पूस प्रथम	२२ दिसम्बर
माघ प्रथम	२१ जनवरी
फाल्गुन प्रथम	२० फरवरी

राष्ट्रीय पंचांग की ऋतुयें भी स्थायी रूप से निश्चित हैं, जो इस प्रकार हैं।

ग्रीष्म	वैशाख तथा ज्येष्ठ
वर्षा	आषाढ़ व श्रावण
शरद	भाद्र व आश्विन
हेमंत	कार्तिक व अग्रहायण
शिशिर	पौष व माघ
बसन्त	फाल्गुन व चैत्र

त्यौहारों को मौसम के अनुकूल रखने के लिए राष्ट्रीय पंचांग में "स्टैण्डर्ड मीन टाइम" को रखा गया है, जिसमें प्रत्येक माह में ३० डिग्री का अन्तर होगा। अधिकांश पंचांग निर्माता इसका प्रयोग करते हैं। "इस पंचांग का यावत् गणित उस भारतीय मध्य रेखा बिन्दु के लिए किया गया है, जो ग्रीनविच से पूर्व रेखांश ८२°३०′ एवं उत्तर अक्षांश २३°११′ (उज्जयिनी के अक्षांश) पर स्थित है एवं इस पंचांग में सर्वत्र तिथ्यादि के समय भारतीय मानक समय (इण्डियन स्टैण्डर्ड टाइम) के अनुसार दिये गये हैं, जो कि उक्त भारतीय मध्य-रेखा बिन्दु का स्थानिक मध्यम काल होता है।"[१] "अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सवों को वैसा ही रहने दिया गया है। बुद्ध, जैन, हिन्दू, सिख आदि के त्यौहार को नये पंचांग में ग्रहण किया गया है तथा उनकी महत्वपूर्ण तिथियों को वैसा ही रखने का प्रयास हुआ है। पंचांग की विभिन्नता को मिटाने के लिए प्रचलित तिथियों को सूर्य सिद्धान्त में बदला गया तथा पूरे भारत के लिए समान तिथियां दी गयीं।"[२]

भारत वर्ष की धार्मिक, क्षेत्रीय व जातीय भिन्नताओं को समझते हुए भारतीय राष्ट्रीय पंचांग को अधिकाधिक उनके अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया।

भारत में आरम्भ में चन्द्र सौर्य पंचांग ग्रहण किया गया। १२०० ई० पूर्व आर्यों का अपना चन्द्र सौर्य पंचांग था, जिसमें "मल मास" अथवा लौंद के माह की व्यवस्था की, लेकिन इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते कि लौंद के माह किस प्रकार आते थे। यह सम्भावना व्यक्त की जाती है कि वेदांग ज्योतिष या पंचांग पश्चिमी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त थे। ४०० ई० से १२०० ई० तक लगभग पूरे भारत में प्रयुक्त होने वाले पंचांग सिद्धान्त ज्योतिष पर आधारित थे। सारे भारतीय खगोलशास्त्री सही गणना के लिए शक संवत् का प्रयोग करते थे, लेकिन तिथि अंकन के लिए इसका प्रयोग दक्षिण में अधिक था। सामान्यतः विभिन्न वंश अपने संवतों का प्रयोग करते थे, उनके अपने शासकीय वर्ष होते थे। १२०० ई० में इस्लाम के आगमन के साथ चन्द्रीय पंचांग भारत आया। भारतीय कलैण्डर का प्रयोग मात्र धार्मिक कार्यों के लिए ही रह

---

१. "राष्ट्रीय पंचांग", डाइरेक्टर जनरल ऑफ मीटियोरोलॉजी, दिल्ली, १९८५, पृ० ५-६।

२. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", दिल्ली, १९५५, भूमिका।

गया। ब्रिटिश शासकों के आगमन के साथ जूलियन व ग्रिगेरियन कलैण्डर भारत आये।

भारतीय राष्ट्रीय पंचांग में कुछ पूर्व प्रचलित समय निर्धारण की इकाईयों में सुधार भी किए गये तथा उन्हें नवीन खगोलशास्त्रीय खोजों के आधार पर निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। सदियों से चली आ रही रूढ़ियों के कारण आधुनिक मान्यताओं में फीके पड़ रहे उनके मूल्यों को पुन: आंकने का कार्य भी भारतीय पंचांग सुधार समिति द्वारा किया गया।

सूर्य सिद्धांत का प्रयोग आज भी पंचांग निर्माण के लिए किया जाता है। इसका प्रभाव यह होता है कि वर्ष का आरम्भ .०१६५६ दिन प्रति वर्ष विकसित होता है। इस प्रकार लगभग १४०० वर्ष में वर्ष का आरंभ २३ २ दिन विकसित हो जाता है। इसलिए भारतीय सूर्य वर्ष महाविषुव (वरनल इक्वीनोक्स अथवा २२ मार्च) से आरम्भ होने के स्थान पर १३ या १४ अप्रैल से आरम्भ होता है। स्थिति वैसी ही है जैसी यूरोप में हुई थी, जहां कि वर्ष की लम्बाई के लिए ३६५.२५ दिन प्रयोग किये जाने के कारण जूलियस सीजर के समय से क्रिसमस १० दिन "दक्षिण अमान्त" की तरफ बढ़ जाता है। यह गलती जार्ज ग्रिगोरी ३०वें के समय सुधारी गयी। इस भूल को सुधारने के लिए भारतीय पंचांग समिति ने यह सुझाव दिया कि "नया भारतीय वर्ष महाविषुव के बाद वाले दिन या महाविषुव के दिन से ही आरम्भ होना चाहिए।"[1] लेकिन भारतीय कलैण्डरों के बहुत से रूढ़िवादी निर्माता इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं तथा वे वर्ष का आरम्भ नवरात्रि आरम्भ १३-१४ अप्रैल से ही करते हैं। इण्डियन कलैण्डर रिफोर्म कमेटी ने यह विचार सूर्य सिद्धान्त के साथ सामंजस्य पर ही निर्धारित किया।

सूर्य सिद्धान्त में महीनों की सही लम्बाई न लिखे होने के कारण हिन्दू पंचांगों में महीनों की असमान लम्बाई प्रचलित है तथा पंचांग निर्माण के समय इस सन्दर्भ में अनेक रूढ़ियों का सामना करना पड़ता है। सूर्य महीनों की गिनती २६ से ३२ दिन के बीच होती है। कार्तिक, मार्गशिर, पौष, माघ, फाल्गुन के महीने २६ से ३० दिन के होते हैं, चैत्र, बैशाख, आश्विन के माह ३० या ३१ दिन के होते हैं, बाकी महीने जैसे कि ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद में ३१ से ३२ दिन होते हैं जिनमें एक या दो महीने में प्रतिवर्ष ३२ दिन होते हैं। महीनों

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", १९५५, नई दिल्ली, पृ० २४१।

की लम्बाई निश्चित नहीं है। प्रति वर्ष बदलती रहती है। अतः कमेटी ने महसूस किया कि—"सौर महीने को खगोलशास्त्रीय रूप से परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए। ३० या ३१ दिनों की लम्बाई नागरिक दिनों के लिए ठीक है। फिर भी महीनों का निश्चित समय कलैण्डर बनाने में सर्वाधिक सुविधाजनक है।"[१] अतः कमेटी द्वारा पांच महीनों की लम्बाई ३१ व बाकी की ३० दिन निश्चित कर दी गयी है।

भारत में दो प्रकार के चन्द्रीय माह प्रयोग होते हैं—नये चन्द्रमा के खत्म होने का व पूर्ण चन्द्रमा के खत्म होने का, पंचांग की गणना के लिए नये चन्द्रमा के अन्त के महीनों का प्रयोग किया जाता है। वर्ष आरंभ के लिए चन्द्र-सौर्य व्यवस्था में तीन पद्धति हैं। चन्द्रीय कलैण्डर में महीने को दो आधे भागों में बांटा जाता है—शुदि व बदि। वास्तव में वर्ष २४ आधे-आधे महीनों में बांटा जाता है। अतः आधे महीने में १४ से १५ दिन होते हैं।

तिथि के प्रयोग में तिथि गणना उद्देश्य में कुछ सुधार हुए हैं जो कि फसली कलैण्डर में उत्तरी भारत के कुछ हिस्सों में देखे जा सकते हैं। इस कलैण्डर में महीना पूर्ण चन्द्र वाले दिन से या उससे अगले दिन से आरंभ होता है। तथा उसमें तिथियों की गणना १ से ३० तक बगैर रुकावट के पूर्ण चन्द्र तक होती चली जाती है। तिथियों की अधिकता "अधिक" या "कास्य" तिथि के रूप में होती है। वास्तव में इस कलैण्डर का उन तिथियों से संबंध नहीं है जो कि महीने के आरंभ होने के बाद आरंभ होती हैं। कमेटी का सुझाव था कि चन्द्रसौर पंचांग भारत के किसी भी हिस्से में नागरिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। "इसके स्थान पर कमेटी ने सुधरे सौर पंचांग का सुझाव रखा जो कि भारत के प्रत्येक हिस्से में प्रयोग किया जाना चाहिए।"[२]

वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग का प्रारूप अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है।[3] राष्ट्रीय पंचांग के इस रूप को देखने से ऐसा लगता है कि यह शक पंचांग ही है। इसमें हुए सुधारों का यहां कोई भी चिन्ह दिखाई नहीं दे रहा जबकि इसमें एकदम नयी पद्धति ग्रहण की गयी है। इसका पूरा इतिहास

---

१. "रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमेटी", १९५५, नई दिल्ली, पृ० २४५।
२. वही, पृ० २५१।
३. भारत सरकार, "राष्ट्रीय पंचांग", दिल्ली, १९८९-९०, पृ० १७६-७८।

पढ़े बिना इन परिवर्तनों को समझना कठिन है। एक साधारण मनुष्य के लिए वह लगभग असम्भव है कि वह कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट को गहराई से समझे व उसके सिद्धान्तों का अध्ययन करें। अत: अधिकांश लोग इसे शक संवत् ही समझते हैं। और राष्ट्रीय संवत् को उससे अलग नहीं समझते ।

भारत सरकार द्वारा शक संवत् को राष्ट्रीय संवत् के रूप में ग्रहण किया गया है, किन्तु इस संवत् के स्वरूप में भी कुछ इस प्रकार की कमियां विद्यमान हैं कि इसे हम राष्ट्रीय संवत् के नाम से सम्बोधित नहीं कर सकते और अपनी इन्हीं दुर्बलताओं के कारण चार दशक बीत जाने पर भी यह राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ है। इन कमियों को इस प्रकार देखा जा सकता है :

कलैण्डर सुधार समिति की प्रथम बैठक में एक वैज्ञानिक नागरिक सौर कलैण्डर को राष्ट्रीय कलैण्डर के रूप में ग्रहण किये जाने की तो सिफारिश की गयी, जो कि दैनिक जीवन में तिथि गणना के लिए प्रयोग किया जाये तथा जिसका आरंभ महाविषुव से किया गया, लेकिन धार्मिक कलैण्डर का आरंभ पूर्व प्रचलित रिवाजों पर छोड़ दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि धार्मिक क्षेत्र में पूर्व प्रचलित अशुद्धियां वैसे ही चलती रहीं, विभिन्न सम्प्रदाय अपने पूर्व प्रचलित कलैण्डरों का ही प्रयोग करते रहे। धार्मिक कलैण्डरों में किसी भी प्रकार के सुधार की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी। भले ही उनमें खगोलशास्त्रीय दृष्टिकोण से कितनी हो त्रुटियां क्यों न हों, और न ही उनका कोई पारस्परिक संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया।

धार्मिक संस्थाओं को कलैण्डर सुधार कार्यक्रम में शामिल न किये जाने का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि बहुत बड़ा जन-समुदाय जो मात्र धार्मिक कलैण्डर को ही जानता है (हिन्दू, मुस्लिम दोनों) कलैण्डर सुधार कार्यक्रम को समझ नहीं पाया। यदि सरकार इस कार्यक्रम में धार्मिक नेताओं को भी शामिल करती तथा उनके सम्प्रदाय के मुख्य त्यौहारों का सामंजस्य राष्ट्रीय पंचांग से करने के लिए उनका सहयोग लिया जाता तब संभव है कलैण्डर सुधार कार्यक्रम अधिक व्यापक व लोकप्रिय होता तथा जन-साधारण उसको अच्छी तरह समझ पाता।

कलैण्डर सुधार समिति के विद्वान सदस्यों ने स्वयं तो धार्मिक छुट्टियों को श्रेणीबद्ध करने तथा अलग-अलग सम्प्रदायों के लिए धार्मिक छुट्टियों की व्यवस्था करने का प्रयास किया उसके लिए अलग-अलग तालिकायें दीं लेकिन इस संबंध में धार्मिक संस्थाओं का सहयोग नहीं लिया गया।

भारतीय राष्ट्रीय पंचांग के लिए विभिन्न व्यक्तियों तथा सम्प्रदायों से प्राप्त होने वाले सुझावों में कुछ कलि, कुछ विक्रम व कुछ शक संवत् को राष्ट्रीय पंचांग के रूप में अपना लेने के सन्दर्भ में थे। इनमें विचारकों का एक वर्ग ऐसा भी था जिसने इन प्राचीन संवतों के स्थान पर सर्वथा नयी पद्धति का सुझाव राष्ट्रीय पंचांग के लिए दिया। (इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण निष्कर्ष में दिये जायेंगे) पंचांग बनाते समय इन सुझावों पर ध्यान नहीं दिया गया तथा संवत् का नाम शक संवत् व महीनों के नाम चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ जो पूर्व प्रचलित थे, ग्रहण कर लिये गये। इन सब बातों ने लोगों को भ्रमित किया तथा राष्ट्रीय संवत् पूर्व प्रचलित शक संवत् ही समझा जाता रहा।

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय संवत् का आरंभ किसी भी लोकप्रिय राष्ट्रीय घटना से जोड़ने का प्रयास नहीं किया गया है जैसाकि स्वतंत्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस अथवा किसी महान् पुरुष की जन्म शताब्दी आदि। यदि इस प्रकार का प्रयास होता तब संभव है कि उस महत्वपूर्ण घटना को जानने व उसके महत्व को समझने के साथ ही राष्ट्रीय संवत् के महत्व को भी जन-मानस सहज ही समझ जाता। तथा इसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा लोगों में उत्पन्न होती।

शक संवत् को "भारतीय राष्ट्रीय" संवत् के रूप में ग्रहण किया गया है तथा उसका नाम राष्ट्रीय संवत् के रूप में भी शक ही रखा गया है जिससे इसके पूर्व प्रचलित शक संवत् होने का भ्रम उत्पन्न होता है।

राष्ट्रीय पंचांग को छापते समय उस पर नाम तो राष्ट्रीय पंचांग लिखा जाता है, परन्तु यह नहीं लिखा जाता कि वर्तमान प्रचलित वर्ण राष्ट्रीय संवत् का कौन सा वर्ष है। शकाब्द का ही वर्ष लिखा होता है। इससे यही विदित होता है कि भारत सरकार द्वारा नये पंचांग व गणना पद्धति का तो निर्माण किया गया, लेकिन उसे स्पष्ट रूप में एक संवत् का नाम नहीं दिया गया है।

इन भूलों के साथ ही भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय पंचांग के साथ और भी कुछ ऐसी लापरवाहियां रहीं जो इसे राष्ट्रीय नहीं बनने दे रही हैं। राष्ट्रीय पंचांग का यह स्वरूप देखने में पूर्व-प्रचलित सम्वत् का ही प्रारूप लगता है क्योंकि इसके साथ पूर्व-प्रचलित शक सम्वत् का ही वर्ष व महीनों के नाम लिखे हैं। इसमें हुए परिवर्तन का कोई स्पष्ट चिह्न नहीं दिखाई देता जिससे किसी भी मनुष्य जिसने कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट का व नियमों का अध्ययन नहीं किया है, के लिए यह पूर्व-प्रचलित शक सम्वत् ही है।

सरकार द्वारा व्यापक रूप में पंचांगों का निर्माण व वितरण नहीं किया जा रहा है।

भारतीय नागरिकों को बाल्यावस्था से उच्च-स्तरीय शिक्षा तक कहीं भी राष्ट्रीय संवत् का बोध नहीं कराया जाता।

उपरोक्त उल्लिखित कुछ तथ्य ऐसे रहे जो भारत को एक राष्ट्रीय संवत् में विकसित करने में बाधक थे। जबकि भारत की वर्तमान अवस्था में राष्ट्रीय एकता बनाये रखने व भारत राष्ट्र के इतिहास के क्रमबद्ध अध्ययन, पुनः लेखन के लिये राष्ट्रीय संवत् महत्वपूर्ण है।

अब सर्वप्रथम हम यह समझें कि एक राष्ट्रीय संवत् किसी भी राष्ट्र की एकता में किस प्रकार सहायक हो सकता है। जैसे कि एक मनुष्य की निजी पहचान के लिए उसका अपना एक विशेष नाम है, कुछ विशेष गुण हैं, अपना स्वभाव है पहनावा है, ठीक इसी प्रकार एक राष्ट्र की पहचान के लिए राष्ट्र के कुछ विशेष चिन्ह होते हैं। अपने पृथक-पृथक स्वार्थों में मनुष्यों में चाहे जो भी भेदभाव हो, लेकिन उन चिन्हों के प्रति उन भावनाओं के प्रति राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक स्वयं को समान रूप से उत्तरदायी महसूस करता है। इन्हीं कुछ तत्वों के प्रति मनुष्यों की भावनायें एक राष्ट्रीयता को जन्म देती हैं तथा राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करती हैं। भारत जैसे विभिन्न रीति-रिवाजों, भाषाओं, अनेकों धर्म व सम्प्रदाय वाले राष्ट्र के लिए तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि कुछ ऐसे तत्वों का विकास हो जो राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने में सहायक हों। भारत राष्ट्र के लिए एक ऐसे संवत् की आवश्यकता है जो भारत में उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम में समान रूप से प्रयुक्त हो सके, जिसमें दिए गए त्यौहार सम्पूर्ण राष्ट्र में राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाये जायें, जिसका प्रयोग भारतीय नागरिकों द्वारा दैनिक व्यवहार में किया जा सके।

भारत में यह प्रवृत्ति आदिकाल से रही है कि पृथक-पृथक क्षेत्रों में पृथक-पृथक सम्प्रदायों द्वारा पृथक-पृथक संवत् प्रयोग किए गए। उत्तरी भारत में विक्रम संवत्, बंगाल में बंगाली सन्, कन्नौज में श्री हर्ष संवत्, उत्तरी मालाबार में कौल्लम संवत्, पश्चिमी दक्षिण में चालुक्य संवत् आदि संवतों का प्रयोग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया। हिन्दुओं द्वारा सृष्टि, श्रीकृष्ण, कलि, शक व विक्रम संवतों का प्रयोग, बौद्धों द्वारा बुद्ध निर्वाण संवत् का प्रयोग, जैनियों द्वारा महावीर निर्वाण संवत् का प्रयोग तथा मुस्लिम सम्प्रदाय द्वारा हिज्री संवत् का प्रयोग किया गया। इनमें अनेक संवतों का प्रयोग आज भी यथावत् हो रहा है। इतना ही नहीं एक ही संवत् शक संवत् के वर्ष आरंभ के लिए

विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न तिथियाँ अपनायी गयीं। माह के आरंभ के लिए अलग-अलग तरीके प्रयोग किए गए। शक संवत् के माह उत्तरी भारत में पूर्णिमा को समाप्त होते हैं अर्थात् पूर्णिमांत हैं। दक्षिण में अमावस्या को समाप्त होते हैं अर्थात् अमांत हैं। कहीं चैत्र, कहीं भाद्रपद, कहीं कार्तिक तो कहीं मार्गशीर्ष माह से शक संवत् के नये वर्ष का आरंभ किया जाता है। संवतों के प्रयोग की इस प्रकार की भिन्नता का मुख्य परिणाम यह रहा कि उत्तर में घटित घटना का दक्षिण-वासियों को और दक्षिण में घटित घटना का उत्तर-वासियों को, समय का जानना कठिन रहा। तथा विदेशियों के समक्ष हमारे अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य इसी कारण झूठे पड़ गए क्योंकि हम उनका सही समय नहीं बता पाए, क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर घटनाओं को वर्णित करने के लिए हमारे पास गणना पद्धति नहीं थी। क्षेत्रीय राजाओं ने अपने-अपने संवत् चलाये। उन्हीं के आधार अपने राज्य का इतिहास लिखवाया किन्तु उनके राज्य से बाहर के लोगों को उनकी गणना पद्धति का ज्ञान नहीं था। अतः वे अनेक घटनाओं के समय से अनभिज्ञ रहे। संवतों की विभिन्नता का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि एक ही राष्ट्र में विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाजों, त्यौहारों व उत्सवों का जन्म हुआ। भारत के लिए एक संवत् की आवश्यकता इसीलिए अधिक है कि यह विभिन्नताओं का देश है। अनेक जातियों में सम्प्रदायों में एकता भाव उत्पन्न करने के लिए अनिवार्य है कि उनके प्रमुख त्यौहार व उत्सव साथ-साथ मनाये जायें, राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जायें और ऐसा तब ही संभव होगा जब हम राष्ट्रीय संवत् को ग्रहण करेंगे।

कलैण्डर एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा दिनों को इस प्रकार एकत्रित व सामूहिक किया जाता है कि वह नागरिक व धार्मिक कृत्यों को करने में सुविधा-जनक महसूस हों, तथा उसके द्वारा ऐतिहासिक व साहित्यिक कार्यों को व्यवस्थित रूप में किया जा सके। पंचांग का विकास कालक्रम के अध्ययन के लिए महत्व-पूर्ण है। दैनिक व्यवहार में पंचांग का प्रयोग दो प्रकार के मानवीय कृत्यों को व्यवस्थित करने के लिए किया जाता है: १. नागरिक व प्रशासनिक तथा २. सामाजिक व धार्मिक। कलैण्डर किसी भी सभ्यता जिसको कि कृषि, व्यापार, घरेलू या अन्य कार्यों के लिए समय को मापने की आवश्यकता है, के लिए आवश्यक है। संवत् रहित घटनाओं का अंकन अधूरा है। जैसाकि हम लिखें—"उत्तर प्रदेश सरकार व कर्मचारियों के बीच खुले टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। सरकारी कर्मचारी अपना वेतन बढ़वाने के लिए हड़ताल कर रहे थे।" परन्तु यह सूचना अधूरी हैं, इसमें तिथि अंकित नहीं है। "२२ नवम्बर

१९८६ को उत्तर प्रदेश सरकार व कर्मचारियों के बीच खुले टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी।" सूचना का यह रूप सही है। क्योंकि भविष्य में जब कभी हम इस घटना को अंकित करेंगे तब सबसे पहला सवाल यही होगा कि कितने समय पहले की यह घटना है। यदि उसमें तिथि नहीं है तब समय बता पाना संभव नहीं। अतः प्रतिदिन के व्यवहार में संवत् महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, मनुष्यों को अनेक लेखे-जोखे व धार्मिक-सामाजिक कार्यों को निबटाने में सहायता करता है।

जैसे ही इतिहास लेखन कला का आरम्भ हुआ होगा, घटनाओं को व्यवस्थित करने व क्रमिक रूप में उन्हें लिखने के लिए विचारकों ने एक संवत् की आवश्यकता महसूस की होगी। जब किसी वंश या घटना का वर्णन किया जाता है तब यह समझना आवश्यक हो जाता है कि अमुक घटना किस घटना से पहले या बाद में घटी, अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं से उसका कितना समयान्तर है, वर्तमान समय में जब हम अध्ययन कर रहे हैं से कितने समय पहले की यह घटना है और इस सबका अध्ययन संवत् के बगैर असम्भव है। यदि कहा जाए कि तिथियों का क्रमबद्ध अध्ययन करना व काल निर्धारण का ही नाम इतिहास लेखन है तो अतिश्योक्ति न होगी। इतिहास में तिथिक्रम की आवश्यकता, वंशक्रम तथा घटनाक्रम दोनों के लिए समान रूप से है।

इतिहास लेखन व संवत् एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। किसी भी राष्ट्र, जाति अथवा वंश का इतिहास लिखने के लिए एक सर्वमान्य तथा वैज्ञानिक रूप से निश्चित किए हुए संवत् का होना अनिवार्य है। तिथिक्रम के अभाव में लिखा गया इतिहास, इतिहास नहीं वरन् कथा मात्र रह जाता है। इससे न तो घटनाओं के समयान्तर को समझा जा सकता है और न ही इस प्रकार का लेखन इतिहास लेखन के उद्देश्यों को पूरा कर पाता है। अर्थात् मानव विकास के क्रमिक अध्ययन की जानकारी भी तिथिरहित इतिहास से नहीं मिल पाती है। इसके साथ ही इतिहास लेखन के अभाव में संवत् का अस्तित्व भी असम्भव है। क्योंकि जब मनुष्यों में अपने अतीत को क्रमबद्ध रूप में समझने की जिज्ञासा अर्थात् इतिहास लेखन की प्रवृत्ति नहीं होगी तब संवत् अर्थात् तिथिक्रम के विकास की आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

भारतीय शासकों द्वारा पूर्व प्रचलित संवतों को ग्रहण न करने तथा अपनी-अपनी प्रतिष्ठा में नये-नये संवत् प्रचलित करने की प्रवृत्ति ने भारतीय इतिहास लेखन को एक अजीब उलझन में डाल दिया। विभिन्न क्षेत्रीय घटनाओं के लिए मात्र क्षेत्रीय तिथि अंकित होने से राष्ट्र के दूसरे क्षेत्रों में होने वाली घटनाओं

के साथ उनका सामंजस्य बिठाना व इनके लिए निश्चित तिथि दे पाना इतिहास-कारों के लिए एक समस्या बन गया जो आज भारतीय इतिहास की एक ज्वलंत समस्या है। अनेक घटनायें जिनके स्पष्ट प्रमाण हैं तथा जो भारतीय इतिहास को मोड़ देने वाली हैं विश्व के समक्ष आज इसीलिए झूठी सिद्ध हो जाती हैं क्योंकि उनके लिए निश्चित तिथि हमारे पास नहीं है। इतिहास लेखन के लिए संवत् आधारशिला है। भारतीय इतिहास लेखकों ने किसी विशिष्ट व सर्वमान्य संवत् को इतिहास लेखन का आधार नहीं बनाया। इसी कारण आज भारतीय इतिहास के संदर्भ में इतनी अधिक विषमतायें हैं। प्रत्येक घटना के सम्बन्ध में अनुमानों के आधार पर ढेरों तिथियां दी जाती हैं। साथ ही इसी कारण भारतीय इतिहास के समालोचक सदैव इस बात का उल्लेख करते रहे हैं कि प्राचीन भारतीयों ने इतिहास लिखते समय तिथि का अंकन आवश्यक नहीं समझा। इससे उनकी इतिहास लेखन के प्रति उदासीनता परिलक्षित होती है।

षष्ठम् अध्याय

निष्कर्ष

इससे स्पष्ट है कि भारतवर्ष में संवतों की विशाल संख्या रही है। इन संवतों ने धार्मिक उत्सवों व अनुष्ठानों के निर्धारण, अभिलेखों के अंकन, साहित्य-लेखन व इतिहास-लेखन आदि अनेक प्रकार के उद्देश्यों को पूरा किया है। तथापि उनमें से कोई भी सर्वमान्य होकर भारत का राष्ट्रीय संवत् नहीं बन पाया। यहां तक कि भारत सरकार द्वारा ग्रहण किया गया "राष्ट्रीय पंचांग" (जो अभी तक शक संवत् के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है) भी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाया। भारत में प्रचलित हुए अनेक संवतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए उनकी उत्पत्ति व विलुप्ति के मूल कारणों को दिखाना तथा भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रीय संवत् के महत्व को बताना ही पुस्तक लेखन का आधार है।

भारतीय संवतों के अध्ययन व उनके आरम्भ की परिस्थितियों तथा कारणों से यही विदित हुआ है कि भारत में एक ऐसे संवत् का सदैव अभाव रहा जो सम्पूर्ण राष्ट्र में समान रूप से प्रयुक्त हो पाता। संवतों की इस भिन्नता ने इतिहास-लेखन में उलझन पैदा की। बहुत से संवत् विभिन्न क्षेत्रों से एवं सम्प्रदायों से सम्बद्ध रहे हैं।

संवत् का आधार गणना पद्धति होती हैं। गणना पद्धति का विकास शनैः-शनैः होता है तथा विश्व के अलग-अलग स्थानों पर थोड़े-थोड़े अन्तर वाली गणना पद्धतियों का विकास प्रागैतिहासिक युग से ही आरम्भ हो गया था और अब तक इन पद्धतियों में निरन्तर सुधार किए जाते हैं। एक देश की पद्धति का दूसरे देश की पद्धति के साथ आदान-प्रदान भी हुआ है।

भारतीय काल-गणना पद्धति के अध्ययन से यह पता चलता है कि भारत में वैदिक काल में ही समय-मापन की पद्धति का वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित हो चुका था व इस पद्धति के आधार पर बहुत से संवतों की स्थापना समय मापने

के लिए कर ली गयी थी। बाद में विदेशों से भी इस सन्दर्भ में बहुत से तत्वों का आदान-प्रदान हुआ। भारतीय गणना-पद्धति के इतिहास को चार प्रमुख स्तरों में अध्ययन किया जाता है : वेदांग ज्योतिष का समय, वेदांग ज्योतिष से सिद्धान्त ज्योतिष तक का समय, आरंभिक सैद्धान्तिक युग तथा अंतिम सैद्धान्तिक युग। इसके साथ ही गणना के लिए नक्षत्रों को अलग-अलग महत्व प्रदान करते हुए उनके नाम पर कुछ समयचक्रों का निर्धारण किया गया। इसमें सप्तर्षि चक्र, बृहस्पति चक्र, परशुराम का चक्र व ग्रह परिवर्गी चक्र प्रमुख हैं। धीरे-धीरे ये चक्र भी अनेक संवतों का आधार बने।

भारत में संवतों की स्थापना दो मुख्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गयी। प्रथम, धर्म का महत्व प्रदर्शित करना व धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करना, दूसरा राजनीतिक प्रभुसत्ता प्रदर्शित करना तथा राजा व राजवंश के महत्व को दर्शाना। धार्मिक महत्व के संवतों का संबंध धर्मनेताओं की जीवन घटनाओं से जोड़ा गया तथा ये संवत् किसी न किसी सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित रहे। उसमें बहुत से आज भी प्रचलित हैं। इन संवतों का प्रयोग धार्मिक ही अधिक रहा। शेष कार्यों के लिए इनका प्रयोग बहुत कम हुआ। दूसरे, प्रकार के संवत् जिनकी स्थापना राजनीतिक उद्देश्यों के लिए की गयी उनके आरम्भ का सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से जोड़ा गया। यद्यपि इन संवतों के आरंभ की घटनाओं की तिथि में भारीमत भेद है, फिर भी विभिन्न साक्ष्यों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह माना जाता है कि वे सम्भावित तिथि के करीब घटित अवश्य हुई। इन संवतों का प्रयोग अभिलेखों के अंकन, साहित्य-लेखन, इतिहास-लेखन आदि कार्यों के लिए हुआ। इसके साथ ही धार्मिक उद्देश्यों के लिए भी इन संवतों का उपयोग किया गया।

यद्यपि धर्म-चरित्रों व ऐतिहासिक घटनाओं से आरम्भ होने वाले संवत् अपनी आरंभिक तिथि, आरम्भकर्ता व उपयोगिता में एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे, फिर भी गणना-पद्धति के सम्बन्ध में इनमें गहरी समानता थी। भारतीय संवतों में ग्रहण की गयी गणना-पद्धति में चन्द्रमान, सौरमान व चन्द्रसौर-मान की मिश्रित पद्धति तथा नक्षत्रीय पद्धतियां रहीं। भारत के अनेक स्थानों पर विभिन्न संवतों के संदर्भ में ये आज भी प्रयुक्त हो रही हैं जिस कारण गणना की बहुत सी इकाइयां व तत्व लगभग सभी संवतों में एक जैसे ही प्रयुक्त हुए।

धर्म-नेताओं को महत्ता प्रदान करना, राजाओं की अहं भावना, विदेशियों के आक्रमण, एक राष्ट्र-व्यापी पद्धति का विकसित न हो पाना आदि अनेक

कारण थे जिन्होंने भारत में संवतों की इतनी बड़ी संख्या को जन्म दिया। इसके साथ ही कुछ ऐसे तत्व भी रहे जिन्होंने संवतों की संख्या को सीमित कर दिया। भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय पंचांग निकाला जो भारत में वर्तमान समय में प्रचलित सभी संवतों का सम्मिलित पंचांग है तथा इसके साथ शक संवत् का नाम लिया जाता है। यद्यपि इसका स्वरूप प्राचीन संवत् की गणना पद्धति से एकदम भिन्न है।

भारत में एक सर्वमान्य संवत् की समस्या निरन्तर बनी रही है जिसने मुख्य रूप से इतिहास-लेखन को प्रभावित किया है। आज भी भारत में अनेक साम्प्रदायिक य क्षेत्रीय सवतों का प्रचलन है। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक, धार्मिक व इतिहास-लेखन के कार्यों के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र में एक राष्ट्रीय संवत् ग्रहण किया जाना अनिवार्य है अन्यथा भारतीय इतिहास में तिथिक्रम की जो समस्या आज तक बनी हुई है वह आगे भी विद्यमान रहेगी।

भारत सरकार द्वारा अपनाये गये शक संवत् को जिसके पंचांग को राष्ट्रीय पंचांग नाम दिया गया है तथा संवत् के नाम में न कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसमें कुछ सुधारों की आवश्यकता है। अत· राष्ट्रीय संवत् को अधिक लोकप्रिय, सर्वग्राह्य तथा बहु-उपयोगी बनाने के सन्दर्भ में कुछ सुधार इस प्रकार किए जा सकते हैं :

१. राष्ट्रीय संवत् की पद्धति को इतना वैज्ञानिक व उपयोगी बनाया जाये कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसको महत्व प्राप्त हो सके तथा अब तक प्रचलित संवतों में रही त्रुटियां इसमें न रहें।

२. सरकार द्वारा व्यापक रूप में पंचांगों को छापा व वितरित किया जाये व सिक्कों, रुपयों पर राष्ट्रीय संवत् अंकित किया जाये।

३. प्राथमिक स्तर व माध्यमिक स्तर पर बच्चों को राष्ट्रीय पंचांग की शिक्षा दी जाये। प्राथमिक शिक्षण से ही अन्य दूसरे संवतों के साथ बालकों को राष्ट्रीय संवत् का बोध कराये जाने से उनमें राष्ट्र-प्रेम की भावना तथा राष्ट्र-चिन्ह के रूप में संवत् के प्रति अनुराग उत्पन्न होगा।

४. माध्यमिक स्तर के शिक्षण समय तक के बालकों का मानसिक विकास इस स्तर का हो जाता है कि वे पंचांगों के आधारभूत तत्वों व चंद्रमान तथा सौरमान को समझ सकें। अत: माध्यमिक स्तर पर इन बातों को बताये जाने से राष्ट्रीय पंचांग में ग्रहण किये गये तत्वों की जानकारी

उन्हें प्राप्त होगी तथा पद्धति को वैज्ञानिकता को देखते हुए स्वयं ही राष्ट्रीय संवत् व पंचांग के प्रति उनका आकर्षण बढ़ेगा तथा इससे संवत् का प्रसार राष्ट्रव्यापी हो सकता है।

५. सरकारी कार्यालयों व शिक्षण-संस्थाओं में राष्ट्रीय संवत् का प्रयोग अनिवार्य कर, राष्ट्रीय स्तर पर कुछ प्रबुद्ध लोगों, मुख्य रूप से अध्यापकों की ऐसी समितियां गठित की जायें, जिन्हें राष्ट्रीय संवत् व पंचांग के सन्दर्भ में जानकारी दी जाये तथा वे सर्वसाधारण में इसका प्रचार-प्रसार करें।

६. संवत् के नाम से शक संवत् नाम हटाकर भारतीय राष्ट्रीय संवत् नाम का प्रयोग किया जाये तथा राष्ट्रीय संवत् के महीनों व तिथियों को भी इस प्रकार नामांकित किया जाये कि वे राष्ट्र के ही किसी प्रतीक से जुड़ी हों, पूर्व प्रचलित किसी भी संवत् के महीनों व तिथियों के नामों से नहीं।

७. राष्ट्रीय संवत् के आरंभ के संदर्भ में निश्चित तिथि व घटना का निर्णय लेकर उसकी घोषणा सर्वसाधारण के लिए की जाये। साथ ही राष्ट्रीय संवत् के व्यतीत वर्षों व वर्तमान चालू वर्ष की घोषणा की जाये।

भारत सरकार की राष्ट्रीय संवत् के प्रति उदासीनता, उसके पंचांगों के व्यापक वितरण न होने, स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय संवत् की घोषणा न किये जाने, राष्ट्रीय संवत् को वर्तमान भारतीय राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुकूल न बनाने आदि कारणों ने भारत सरकार द्वारा अपनाये गये राष्ट्रीय पंचांग का चार दशक बीत जाने पर भी व्यापक प्रसार-प्रचार नहीं होने दिया है।

यद्यपि वर्तमान राष्ट्रीव पंचांग भारत में प्रचलित अब तक के देशी-विदेशी संवतों के पंचांगों से अधिक वैज्ञानिक है, किन्तु इसके नाम, महीनों के नाम आदि से इस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न होती है जैसे यह किसी विशिष्ट सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो। शक संवत् शताब्दियों से हिन्दू धर्म-ग्रंथों व पंचांगों से जुड़ा है। वर्तमान समय में दूसरे सम्प्रदायों के लिए वह सम्भवतः हिन्दू संवत् ही है। अतः संवत् का नाम **भारतीय राष्ट्रीय संवत्** रख देना ही अधिक उचित है।

इस तरह भारत राष्ट्र के लिए एक नये राष्ट्रीय संवत् की स्थापना की बात राष्ट्रीय की भावना को प्रेरित कर सकती है। किन्तु आरम्भ में प्रत्येक विचार अथवा कार्य व्यक्तिगत, संस्थागत व राष्ट्रीय ही होता है। किसी भी व्यवस्था की वैज्ञानिकता व व्यावहारिकता उसे अन्तर्राष्ट्रीय बनाती है। आरंभ

में ईसाई संवत् भी अपनी जन्म-भूमि तक ही सीमित था तथा राष्ट्रीय था। इसके अनुयायियों ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय बनाया। हमारा प्रयास ऐसा हो कि भारतीय राष्ट्रीय संवत् की पद्धति इतनी वैज्ञानिक व व्यावहारिक बनायी जाये कि यह अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों को पूरा कर सके व विश्व के दूसरे राष्ट्र भी उसकी पद्धति को ग्रहण करें। गणना की जो सूक्ष्म से सूक्ष्म कमियां अन्य दूसरे संवतों में है इसमें वे भी न रहें। तथा यह अपनी व्यावहारिता व वैज्ञानिकता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयुक्त हो सके।

भारतीय संवत् की स्थापना व वैज्ञानिक पंचांग निर्माण का महत्व जितना खगोलशास्त्र व ज्योतिष शास्त्र के लिए है उससे भी अधिक इतिहास के लिए है इस संदर्भ में अभी गणना की और सूक्ष्म खोजों व निश्चित इकाइयों की स्थापना की आवश्यकता है। यद्यपि पंचांग-निर्माण-कार्य एक खगोलशास्त्रीय कार्य है। ऐतिहासिक नहीं, फिर भी यह बात सही है कि इतिहास की आधारशिला संवत् ही है व भारतीय इतिहास की यह जटिल समस्या रही है तथा इतिहास-लेखन के लिए एक संवत् की आवश्यकता है। अतः एक इतिहासकार जिसे खगोलशास्त्र का अच्छा ज्ञान है, भी पंचांग निर्माण व संवत् की स्थापना में सहयोग कर सकता है। साथ ही यदि खगोलशास्त्री को भी इतिहास का ज्ञान हो तब कलैण्डर अच्छा बन पड़ेगा, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते।

प्राचीन भारतीय इतिहास-लेखन के लिए साहित्य, अभिलेखों, पुरातत्वीय सामग्री व विदेशी यात्रियों के विवरण आदि साक्ष्यों का सहारा लिया जाता है। भारत में संवत् आरम्भ करने की परम्परा अति प्राचीन समय से रही है तथा ये विभिन्न संवत् भी भारतीय इतिहास के स्रोत हैं। भिन्न-भिन्न संवत् ने इतिहास-दृष्टि को प्रभावित किया है। कुछ संवत् जिनका आरम्भ-काल काफी प्राचीन ठहराया गया है भारतीय इतिहास की प्राचीनता व संस्कृति के अनन्तकाल पुरानी होने के साक्षी हैं।

सृष्टि संवत्, कृष्ण संवत्, युधिष्ठिर संवत्, कलियुग संवत् हिन्दू धर्म व प्राचीन भारतीय इतिहास से जुड़े हैं। इनके आरम्भ की तिथियां पांच हजार वर्ष प्राचीन मानी गयी हैं। अतः ये भारतीय संस्कृति की प्राचीनता के द्योतक हैं। कृष्ण संवत् का संबंध भगवान कृष्ण से है, जो हिन्दू धर्मावलम्बियों द्वारा भगवान माने जाते हैं तथा आज भी हिन्दू धर्म व दर्शन का एक बड़ा स्रोत है। युधिष्ठिर संवत् व कलियुग संवत् का सम्बन्ध महाभारत युद्ध की घटना से है। यह युद्ध अधर्म पर विजय तथा संस्कृति के पुनः स्थापन का प्रतीक है और इसका ऐतिहासिक महत्व भी उतना ही है जितना धार्मिक। बुद्ध-निर्वाण व महावीर-

निर्वाण संवतों का आरम्भ ढाई हजार वर्ष पुराना ठहराया गया है। इन संवतों का सम्बन्ध ऐसे व्यक्तियों से है जिन्होंने हिन्दू धर्म व समाज को एक नया मोड़ दिया तथा संस्कृति के विघटित होते मूल्यों को पुनः स्थापित किया। उनके इस प्रकार के प्रयासों ने तत्कालीन राजनीति को भी प्रभावित किया व इनका प्रभाव शताब्दियों तक भारतीय धर्म व समाज पर बना रहा। इस प्रकार ये संवत् उन व्यक्तियों व घटनाओं की ओर संकेत करते हैं जिनका भारतीय धर्म, समाज, संस्कृति व राजनीति पर गहरा प्रभाव है।

भारत में सम्वतों का एक रूप यह भी रहा है कि उनका प्रयोग एक सम्प्रदाय विशेष से जुड़ गया या देश के किसी बहुत सीमित भू-भाग पर ही उनका प्रयोग किया गया, जिससे पूरे राष्ट्र के इतिहास से उनका सम्बन्ध स्थापित कर पाना कठिन हो जाता है तथा वे एक सीमित क्षेत्र से सम्बन्धित घटनाओं की ओर ही संकेत करते हैं। इस रूप में सम्वतों ने देश के इतिहास को संकुचित करने का कार्य किया। भारत में सम्वत् आरम्भ की परम्परा ऐसी घटनाओं से जोड़ने की रही है जिनका महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से काफी है। और आज जब इन संवतों की उत्पत्ति व इनसे सम्बन्धित घटनाओं का अध्ययन किया जाता है तब यह बात अधिक महत्व की रहती है कि अमुक संवत् के साथ जुड़ी घटना का ऐतिहासिक महत्व क्या है ? आज बुद्ध-निर्वाण संवत् का जो महत्व है उससे कहीं ज्यादा महत्व इतिहासकार के लिए इस बात का है कि इस संवत् का संबंध एक ऐसे व्यक्तित्व की जीवन-घटना से जुड़ा है जिसके क्रिया-कलापों ने देश-विदेश में जनमानस को प्रभावित किया व कालान्तर में इसके सिद्धान्तों ने राजनीतिक सिद्धान्तों को निर्धारित किया व इतिहास को नया मोड़ दिया।

संवतों से जुड़ी तिथियां, उनसे सम्बन्धित घटनाओं की तिथियां हैं तथा इन महत्वपूर्ण घटनाओं की तिथि-निर्धारण का कार्य संवतों के माध्यम से हो सकता है। इस प्रकार संवतों से अधिक महत्वपूर्ण उनसे जुड़ी ऐतिहासिक घटनायें हैं, जिनकी तिथि भारत के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है। संवत् की ऐतिहासिकता ही उन घटनाओं की ऐतिहासिकता का आधार है और वह भारतीय इतिहास का आधार बनता है। संवतों का आरंभ जहां राजाओं के राज्यारोहण व उनकी विजयों अथवा किसी नयी नीति-स्थापना की घटनाओं से जोड़ा गया है तब वह स्पष्ट रूप से इतिहास-लेखन ही है। इस प्रकार इतिहास को एक क्रमिक तिथिक्रम प्राप्त होता है। विक्रम संवत् की ऐतिहासिकता विक्रम से और उसके क्रिया-कलाप से जुड़ी है। यदि वह घटना या व्यक्ति नहीं हुआ तो उसकी ऐतिहासिक घटना भी विवादास्पद है। बाद में प्रयोग होने पर भी ऐतिहासिक घटना का महत्व इतिहासकार के लिए है।

संवतों से धार्मिक व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन सम्भव है क्योंकि उनमें तत्कालीन धार्मिक मान्यता स्पष्ट हो सकती है और धार्मिक विश्वास व सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान हो सकता है। बुद्ध व महावीर-निर्वाण संवतों के अध्ययन के साथ इसी प्रकार का सामाजिक व धार्मिक अध्ययन जुड़ा है। जब हम बुद्ध-निर्वाण की तिथि निर्धारित करने का प्रयास करते हैं, तो बुद्ध के सिद्धान्तों से प्रभावित धर्म, समाज व राजनीति का भी अध्ययन करते हैं।

भारत में लगभग सभी धर्म व सम्प्रदायों के अपने संवत् हैं जो इन सम्प्रदायों का अपने धर्म प्रचारकों व धर्मोपदेशकों के प्रति विश्वास व मान्यताओं के प्रतीक हैं। कई बार तो संवत् का नाम ही किसी सम्प्रदाय के परिचय का माध्यम बनता है तथा संवत् का नाम भर आने से अमुक सम्प्रदाय के धर्म व नाम का बोध हो जाता है।

संवतों के माध्यम से न केवल धर्म व राजनीतिक जागरूकता का परिचय मिलता है वरन् ये आर्थिक क्षेत्र में हुयी प्रगति व नयी नीति-निर्धारण का भी प्रतीक है। फसली संवत् जिसको विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग शासकों द्वारा विभिन्न अवसरों पर ग्रहण किया गया इस बात का द्योतक है कि शासक लोग कृषि व अर्थ सम्बन्धी कठिनाइयों से परिचित थे व उनके निवारण के लिए बहुत-सी नई नीतियां व योजनायें निर्धारित करते थे। फसली संवत् का आरम्भ ६०० ई० के करीब हुआ तथा इसका मुख्य उद्देश्य किसानों को सुविधा प्रदान करना था। चन्द्रीय पंचांग के अनुसार किसानों को ३० वर्षीय चक्र में लगान की दो किश्त अधिक देनी पड़ती थीं। साथ ही लगान का समय भी परिवर्तित होता रहता था। अतः इस आर्थिक समस्या को सुलझाने के उद्देश्य से सौर गणना वाला फसली पंचांग मुगल बादशाह अकबर व शाहजहां द्वारा ग्रहण किया गया।

भारतीय संस्कृति की ग्राह्य शक्ति धर्म, जाति, रीति-रिवाजों के संदर्भ में विदित है। संवतों के क्षेत्र में भी इसका महत्व कम नहीं। समयगणना की बहुत-सी इकाइयों को भारतीय गणना-पद्धति व संवतों में इस प्रकार आत्मसात कर लिया गया है कि आज उनके मौलिक उद्गम स्थानों को बता पाना सम्भव नहीं। इस संदर्भ में सबसे अच्छा उदाहरण शक संवत् का दिया जा सकता है। इस संवत् को भारत में राजनीतिक, धार्मिक व अभिलेखीय कार्यों के लिए साथ-साथ प्रयोग किया गया। इसकी गणना-पद्धति आज पूर्ण रूप से भारत में उत्पन्न हुए विक्रम संवत् की पद्धति में घुल-मिल गयी है तथा इनके पृथक स्वरूपों को इंगित

कर पाना असम्भव है। इस प्रकार पहले ग्रीक, फिर इस्लाम व इसके बाद योरोपीय संवतों व गणना-पद्धतियों का भारतीय गणना-पद्धति में समावेश हुआ है। इस रूप में विदेशी संवत् भारतीय संस्कृति की ग्राह्य शक्ति को स्पष्ट करते हैं।

भारत का प्राचीन ज्योतिष, गणित व खगोलशास्त्रीय अध्ययन उन्नत अवस्था में था—इसका बोध भी संवतों के अध्ययन से होता है। वैदिक काल में ही गणना की महत्वपूर्ण इकाइयों का निर्धारण भारत में कर लिया गया था। कलि संवत् की परमाणु, अणु, त्रिसारेणु, त्रुटी, लव व निमेष आदि इकाईयां समय-मापन की सूक्ष्म व व्यवस्थित पद्धति की साक्ष्य हैं जिनका निर्धारण ईसा से हजारों वर्ष पूर्व हो चुका था। इस प्रकार संवतों के अध्ययन से भारत की प्राचीन गणित, ज्योतिष की असाधारण विकसित परिस्थिति का ऐतिहासिक ज्ञान होता है। संवतों से प्राचीन भारत की सृष्टि, जगत-परिवर्तन, काल-क्रम आदि के बारे में विद्यमान धारणायें विकसित हुयी हैं। शनैः-शनैः विकसित व शोधित गणना पद्धति का वैज्ञानिक स्वरूप आज भारत में विद्यमान है जिसको वर्तमान राष्ट्रीय पंचांग के रूप में देखा जा सकता है। इसमें अत्याधुनिक व प्राचीन इकाइयों के मध्य एक संतुलित गणना-स्वरूप निर्धारित किया गया है। तथा सभी धर्मों व सम्प्रदायों के लोगों की मान्यताओं को स्थान देने का प्रयास हुआ है। किन्तु बहुत से कारणों से इसका व्यापक प्रसार अभी नहीं हो पाया है।

आशा है संवतों के इस प्रकार के क्रमिक व आलोचनात्मक अध्ययन से इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन हो तथा उनकी तिथि-निर्धारण में सहयोग मिले। गणना-पद्धति के ऐतिहासिक अध्ययन से उसके मौलिक तत्वों, उस पर विदेशी प्रभाव व उसके वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूप का अध्ययन हुआ है। साथ ही यह धारणा व्यक्त हुई है कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों में किस प्रकार की पद्धति व संवत् का कैसा स्वरूप ग्रहण किया जाना लाभप्रद है। संवतों के इस आलोचनात्मक अध्ययन से भारत का प्राचीन इतिहास अधिक स्पष्ट हो गया है।

राष्ट्रीय कैलेण्डर

शकाब्द १९१५

(१९९३-९४ ई०)

शकाब्द १९१५, १९९३-९४ ई०

चैत्र (मार्च-अप्रैल, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि		७ / २८	१४ / ४	२१ / ११	२८ / १८
सोम	१ / २२	८ / २९	१५ / ५	२२ / १२	२९ / १९
मंगल	२ / २३	९ / ३०	१६ / ६	२३ / १३	३० / २०
बुध	३ / २४	१० / ३१	१७ / ७	२४ / १४	
बृह	४ / २५	११ / १	१८ / ८	२५ / १५	
शुक्र	५ / २६	१२ / २	१९ / ९	२६ / १६	
शनि	६ / २७	१३ / ३	२० / १०	२७ / १७	

वैशाख (अप्रैल-मई, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि		५ / २५	१२ / २	१९ / ९	२६ / १६
सोम		६ / २६	१३ / ३	२० / १०	२७ / १७
मंगल		७ / २७	१४ / ४	२१ / ११	२८ / १८
बुध	१ / २१	८ / २८	१५ / ५	२२ / १२	२९ / १९
बृह	२ / २२	९ / २९	१६ / ६	२३ / १३	३० / २०
शुक्र	३ / २३	१० / ३०	१७ / ७	२४ / १४	३१ / २१
शनि	४ / २४	११ / १	१८ / ८	२५ / १५	

ज्येष्ठ (मई-जून, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि	३० / २०	२ / २३	९ / ३०	१६ / ६	२३ / १३
सोम	३१ / २१	३ / २४	१० / ३१	१७ / ७	२४ / १४
मंगल		४ / २५	११ / १	१८ / ८	२५ / १५
बुध		५ / २६	१२ / २	१९ / ९	२६ / १६
बृह		६ / २७	१३ / ३	२० / १०	२७ / १७
शुक्र		७ / २८	१४ / ४	२१ / ११	२८ / १८
शनि	१ / २२	८ / २९	१५ / ५	२२ / १२	२९ / १९

आषाढ़ (जून-जुलाई सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि		६ / २७	१३ / ४	२० / ११	२७ / १८
सोम		७ / २८	१४ / ५	२१ / १२	२८ / १९
मंगल	१ / २२	८ / २९	१५ / ६	२२ / १३	२९ / २०
बुध	२ / २३	९ / ३०	१६ / ७	२३ / १४	३० / २१
बृह	३ / २४	१० / १	१७ / ८	२४ / १५	३१ / २२
शुक्र	४ / २५	११ / २	१८ / ९	२५ / १६	
शनि	५ / २६	१२ / ३	१९ / १०	२६ / १७	

राष्ट्रीय कैलेण्डर

शकाब्द १९१५, १९९३-९४ ई०

श्रावण (जुलाई-अगस्त, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि	३१	३	१०	१७	२४
	२२	२५	१	८	१५
सोम		४	११	१८	२५
		२६	२	९	१६
मंगल		५	१२	१९	२६
		२७	३	१०	१७
बुध		६	१३	२०	२७
		२८	४	११	१८
बृह		७	१४	२१	२८
		२९	५	१२	१९
शुक्र	१	८	१५	२२	२९
	२३	३०	६	१३	२०
शनि	२	९	१६	२३	३०
	२४	३१	७	१४	२१

भाद्रपद (अगस्त-सितम्बर, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि		७	१४	२१	८
		२९	५	१२	१९
सोम	१	८	१५	२२	२९
	२३	३०	६	१३	२०
मंगल	२	९	१६	२३	३०
	२४	३१	७	१४	२१
बुध	३	१०	१७	२४	३१
	२५	१	८	१५	२२
बृह	४	११	१८	२५	
	२६	२	९	१६	
शुक्र	५	१२	१९	२६	
	२७	३	१०	१७	
शनि	६	१३	२०	२७	
	२८	४	११	१८	

आश्विन (सितम्बर-अक्टूबर, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि		४	११	१८	२५
		२६	३	१०	१७
सोम		५	१२	१९	२६
		२७	४	११	१८
मंगल		६	१३	२०	२७
		२८	५	१२	१९
बुध		७	१४	२१	२८
		२९	६	१३	२०
बृह	१	८	१५	२२	२९
	२३	३०	७	१४	२१
शुक्र	२	९	१६	२३	३०
	२४	१	८	१५	२२
शनि	३	१०	१७	२४	
	२५	२	९	१६	

कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि	३०	२	९	१६	२३
	२१	२४	३१	७	१४
सोम		३	१०	१७	२४
		२५	१	८	१५
मंगल		४	११	१८	२५
		२६	२	९	१६
बुध		५	१२	१९	२६
		२७	३	१०	१७
बृह		६	१३	२०	२७
		२८	४	११	१८
शुक्र		७	१४	२१	२८
		२९	५	१२	१९
शनि	१	८	१५	२२	२९
	२३	३०	६	१३	२०

राष्ट्रीय कैलेण्डर

शकाब्द १९१५, १९९३-९४ ई०

अग्रहायण
(नवम्बर-दिसम्बर, सन् १९९३ ई०)

वार					
रवि		७	१४	२१	२८
सोम	१	२८ ८	५ ५	१२ २२	१९ २९
मंगल	२२ २	२९ ९	६ १६	१३ २३	२० ३०
बुध	२३ ३	३० १०	७ १७	१४ २४	२१
बृह	२४ ४	१	८ १८	१५ २५	
शुक्र	२५ ५	२ १२	९ १९	१६ २६	
शनि	२६ ६	३ १३	१० २०	१७ २७	
	२७	४	११	१८	

पौष
(दिसम्बर-जनवरी, सन् १९९३-९४)

वार					
रवि		५	१२	१९	२६
सोम		२६ ६	२ १३	९ २०	१६ २७
मंगल		२७ ७	३ १४	१० २१	१७ २८
बुध	१	२८ ८	४ १५	११ २२	१८ २९
बृह	२२ २	२९ ९	५ १६	१२ २३	१९ ३०
शुक्र	२३ ३	३० १०	६ १७	१३ २४	२०
शनि	२४ ४	३१ ११	७ १८	१४ २५	
	२५	१	८	१५	

माघ
(जनवरी-फरवरी, सन् १९९४ ई०)

वार					
रवि		३	१०	१७	२४
सोम		२३ ४	३० ११	६ १८	१३ २५
मंगल		२४ ५	३१ १२	७ १९	१४ २६
बुध		२५ ६	१ १३	८ २०	१५ २७
बृह		२६ ७	२ १४	९ २१	१६ २८
शुक्र	१	२७ ८	३ १५	१० २२	१७ २९
शनि	२१ २	२८ ९	४ १६	११ २३	१८ ३०
	२२	२९	५	१२	१९

फाल्गुन
(फरवरी-मार्च, सन् १९९४ ई०)

वार					
रवि	१	८	१५	२२	२९
सोम	२० २	२७ ९	६ १६	१३ २३	२० ३०
मंगल	२१ ३	२८ १०	७ १७	१४ २४	२१
बुध	२२ ४	१ ११	८ १८	१५ २५	
बृह	२३ ५	२ १२	९ १९	१६ २६	
शुक्र	२४ ६	३ १३	१० २०	१७ २७	
शनि	२५ ७	४ १४	११ २१	१८ २८	
	२६	५	१२	१९	

परिशिष्ट

तालिका नं० १

भारतीय इतिहास में प्रचलित संवत्
धर्म चरित्रों से सम्बन्धित संवत्

क्रम सं०	संवत् का नाम	आरम्भिक वर्ष (ईसाई संवत् में)	वर्तमान प्रचलित वर्ष (ईसाई संवत् के वर्ष १९९२-९३ के बराबर है तथा भारतीय राष्ट्रीय संवत् के वर्ष ४५-४६ के बराबर है)	सम्बन्धित सम्प्रदाय का नाम
१.	सृष्टि संवत्	—	१९७२९४९०७७ (आर्य समाज के धर्मग्रंथों पर उल्लिखित)	हिन्दू वैदिक धर्म
२.	कालयवन संवत्	—	—	—
३.	कृष्ण संवत्	३२३६ ई० पू०	५२२९ (शुद्ध भारतीय पंचांग)	हिन्दू वैदिक धर्म
४.	युधिष्ठिर संवत्	२४४८ ई० पू०	४४४१ (अनु०)	हिन्दू वैदिक धर्म

(क्रमशः)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
५.	कलियुग संवत्	३१०१ ई० पू०	५०९४ (शुद्ध भारतीय पंचांग)	हिन्दू वैदिक धर्म
६.	लौकिक संवत्	७२४ ई० पू०	२७१७ (अनु०)	—
७.	बुद्ध निर्वाण संवत्	५४४ ई० पू०	२५३७ (राष्ट्रीय पंचांग)	बौद्ध सम्प्रदाय
८.	महावीर निर्वाण संवत्	५२७ ई० पू०	२५२० (राष्ट्रीय पंचांग)	जैन सम्प्रदाय
९.	ईसाई संवत्	० ई०	१९९३ (राष्ट्रीय पंचांग)	ईसाई सम्प्रदाय (दूसरे सम्प्रदायों द्वारा दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त)
१०.	हिजरी संवत्	६२२ ई०	१४१४ (राष्ट्रीय पंचांग)	इस्लाम सम्प्रदाय
११.	महर्षि दयानंदाब्द	१८२५ ई०	१६९ (अनु०)	हिन्दू आर्य समाज सम्प्रदाय
१२.	बहाई संवत्	१८४४ ई०	१५० (बहाई पंचांग)	बहाई सम्प्रदाय

तालिका नं० १

प्रस्तुत तालिका के प्रथम कालम में संवत् की संख्या है। दूसरे में संवत् का नाम है, तीसरे में आरम्भिक वर्ष है। आरम्भिक वर्ष ईसाई संवत् के अनुसार दिये गए हैं। चौथे में संवत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष है जो ईसाई संवत् के वर्ष १९९३-९४ के बराबर है तथा भारतीय राष्ट्रीय संवत् के वर्ष ४६-४७ के बराबर है। पांचवें कॉलम में संवत् से सम्बन्धित सम्प्रदाय का नाम दिया गया है।

संवतों के आरम्भिक वर्ष अनेक साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर दिए गए हैं। संवतों के वर्तमान प्रचलित वर्ष दो तरीके से दिए गए हैं। प्रथम, जो संवत् अब प्रचलन में नहीं हैं उनके अनुमानित वर्ष दिए गए हैं तथा उनके सामने अनु० लिखा है। दूसरे जो संवत् अब भी प्रचलन में हैं उनके वर्तमान प्रचलित वर्ष विभिन्न पंचांगों के आधार पर दिए गए हैं तथा उनके सामने पंचांग का नाम लिखा है।

तालिका नं० २

भारतीय इतिहास में प्रचलित संवत्
ऐतिहासिक घटनाओं से आरंभ होने वाले संवत्

क्रम सं०	संवत् का नाम	आरम्भकर्ता का नाम	आरम्भिक वर्ष (ईसाई सं० में)	वर्तमान प्रचलित वर्ष	प्रचलन क्षेत्र
१.	मौर्य संवत्	—	३२० ई० पू०	२३१३ (अनुमानित)	—
२.	सैल्यूसीडियन संवत्	विदेशी	३१२ ई० पू०	२३०५ (अनु०)	काबुल व पंजाब
३.	पार्थियन संवत्	विदेशी	२४७ ई० पू०	२२४० (अनु०)	
४.	विक्रम संवत्	विक्रमादित्य	५७ ई० पू०	२०५० (राष्ट्रीय पंचांग)	
५.	शक संवत्	कनिष्क	७८ ई० पू०	१९१५ (राष्ट्रीय पंचांग)	
६.	कल्चुरी चेदी संवत्	—	२४८-४९ ई०	१७४५ (अनु०)	
७.	गुप्त संवत्	चन्द्रगुप्त प्रथम	३१९-२० ई०	१६७४ (अनु०)	सौराष्ट्र, बंगाल, उत्तरी भारत
८.	अमली संवत्	इन्द्रद्युम्न	५९२ ई० पू०	१४०१ (रिपोर्ट ऑफ द	उड़ीसा

(क्रमशः)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
९.	विलायती संवत्	—	५९२ ई०	कलैण्डर रिफोर्म कमेटी) १४०१ (अनु०)	बंगाल व उड़ीसा
१०.	फसली संवत्	—	५९२ ई०	१४०१ (अनु०)	उत्तरी भारत, मद्रास
११.	बंगाली संवत्	—	५९३ ई० (अनु०)	१४०० (राष्ट्रीय पंचांग)	बंगाल
१२.	श्री हर्ष संवत्	श्री हर्ष	६०७ ई०	१३८६ (अनु०)	मथुरा व कन्नौज
१३.	भट्टिका संवत्	—	६२३ ई०	१३७० (अनु०)	राजपूताना
१४.	मागी संवत्	—	६३८ ई०	१३५५ (अनु०)	बंगाल (चिटगांग जिला)
१५.	गंगा संवत्	—	६३३ ई०	१३५५ (अनु०)	दक्षिणी-पूर्वी भारत
१६.	बर्मी कोमन संवत्	—	६३८ ई०	१३५५ (अनु०)	बर्मा व बुद्धगया
१७.	भौमाकर संवत्	—	८२० ई०	११७३ (अनु०)	उड़ीसा
१८.	कोलम संवत्	—	८२४ ई०	११६९ (राष्ट्रीय पंचांग)	मालाबार, कोचीन
१९.	नेवार संवत्	जयदेव मल्ल	८७८ ई०	१११५ (अनु०)	नेपाल (इस संवत् के आरम्भ के समय भारत की सीमा यहां तक थीं)
२०.	चालुक्य विक्रम संवत्	सौंलकी राजा विक्रमादित्य	१०७६ ई०	९१७ (अनु०)	दक्षिणी-पश्चिमी भारत
२१.	लक्ष्मण सेन संवत्	सेनवंशी राजा लक्ष्मण सेन	११०७ ई०	८८६ (अनु०)	बंगाल, बिहार
२२.	शिव सिंह संवत्	जयसिंह सिद्धराज	१११३ ई०	८८० (अनु०)	

२३. शाहूर सन्	मौहम्मद तुगलक	१३२५ ई०	६६८ (अनु०)
२४. पण्डुवैप्पू संवत्	—	१३४०-४१ ई०	६५३ (अनु०)
२५. तारीख इलाही संवत्	अकबर	१५५६ ई०	४३७ (अनु०)
२६. जुलूसी संवत्	अकबर	१५५६ ई०	४३७ (अनु०)
२७ राज्याभिषेक संवत्	शिवाजी	१६७३ ई०	३२० (अनु०)
२८. विविध संवत्			

तालिका नं० 2

प्रस्तुत तालिका भारतीय ऐतिहासिक सम्वतों की है। इसके प्रथम कॉलम में सम्वतों की संख्या दी गयी है। दूसरे में सम्वत् का नाम है, तीसरे में संवत् आरम्भकर्ता का नाम, चौथे में आरम्भिक वर्ष है। आरम्भिक वर्ष ईसाई सम्वत् में दिये गये हैं, इससे आगे सम्वत् का वर्तमान प्रचलित वर्ष है तथा इससे आगे सम्वत् का प्रचलन क्षेत्र है।

सम्वत् के वर्तमान प्रचलित वर्ष पंचांगों व कलैण्डर सुधार समिति की रिपोर्ट के आधार पर दिये गये हैं तथा इनके सामने पंचांग अथवा रिपोर्ट का नाम लिखा है जो सम्वत् अब प्रचलन में नहीं हैं तथा उनकी गणना पद्धति व आरम्भिक वर्ष के सम्बन्ध में ठोस प्रमाणिक साक्ष्य भी उपलब्ध नहीं है। उनके वर्तमान प्रचलित वर्ष अनुमानित हैं। इनके सामने अनु० लिखा है। इन सम्वतों के वर्तमान प्रचलित वर्ष ईसाई सम्वत् वर्ष १९९३ के आधार पर निकाले गए हैं तथा इनके वर्ष की लम्बाई सौर ईसाई सम्वत् के वर्ष की लम्बाई के बराबर मानी गयी है।

बहुत कम सम्वतों के सन्दर्भ में यह ज्ञात है कि इनका आरम्भकर्ता कौन था अथवा किस राजा के नाम पर इनका नाम पड़ा। कॉलम दो में कुछ सम्वतों के आरम्भकर्ताओं के नाम दिए गए हैं।

सम्वतों के प्रचलन-क्षेत्र कलैण्डर रिफोर्म कमेटी की रिपोर्ट अथवा सम्वत् विशेष के सम्बन्ध में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर बताये गये हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ, पंचांग एवं लेख सूची

(क) पुस्तकें

अग्निहोत्री, प्रभु दयाल, "पतंजलि कालीन भारत", पटना : बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् १९६३ ।

"अथर्ववेद", भाष्यकार क्षेमकरण दास त्रिवेदी, दिल्ली : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, २०३८ (विक्रमाब्द) ।

अरुण०, "भारतीय पुराइतिहास कोष", मेरठ : अनु प्रकाशन, १९७८ ।

अल्बेरूनी, "अल्बेरूनी का भारत", अनुवादक संतराम, प्रयाग : १९२८ ।

अल्बेरूनी, "अल्बेरूनी का भारत" अनुवादक रजनीकांत, इलाहाबाद : आदर्श, १९६७ ।

"इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका", टोक्यो, १९६७ ।

इस्लेमाँ, जे०ई०, "बहाउल्लाह एण्ड द न्यू एरा", लन्दन : बहाई पब्लिशिंग ट्रस्ट, १९७४ ।

उपाध्याय, भगवत शरण, "भारतीय संस्कृति के स्रोत", नई दिल्ली : पीपुल्ज पब्लिशिंग हाउस, १९८३ ।

उपाध्याय, वासुदेव, "गुप्त अभिलेख", पटना : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७४ ।

————"प्राचीन भारतीय अभिलेख", पटना : प्रज्ञा प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, १९७० ।

उल्लाह, मोहम्मद हमीद, "इन्ट्रोडक्शन टु इस्लाम", बेरूत : १९७७ ।

ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", अजमेर : १९१८ ।

ओमप्रकाश, "प्राचीन भारत का इतिहास", दिल्ली : हिन्दी माध्यम मण्डल, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९६७ ।

"ऋग्वेद", भाष्यकार महर्षि दयानन्द, दिल्ली : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, १९७३ ।

कनिंघम, एलैग्जेण्डर, "ए बुक ऑफ इण्डियन एराज", वाराणसी : एण्टीक्विटी बुकसेलर्ज, १९७६ ।

"कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" जिल्द चार (मुगल काल) सम्पादक रिचर्ड बर्न, दिल्ली : एस० चंद, तिथि अनुपलब्ध ।

कुमार, बलदेव, "अर्ली कुषाणाज", दिल्ली : स्टर्लिंग पब्लिशर्ज, १९७३ ।

कोटियाल, हरिशंकर, 'मौर्य काल', "प्राचीन भारत का इतिहास", सम्पादक द्विजेन्द्र नारायण झा तथा कृष्ण मोहन श्रीमाली, दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), सन् १९८१ ।

गहलोत, सुखवीर सिंह, "हिस्टोरियन्ज कलैण्डर" (१५४४ ई० से १६४३ तक), जोधपुर : हिन्दी साहित्य मन्दिर, १९७९ ।

गोयल, एस० आर०, "हिस्ट्री ऑफ दि इम्पीरियल गुप्ताज", इलाहाबाद : १९६७ ।

गोरख प्रसाद, "भारतीय ज्योतिष का इतिहास", लखनऊ : प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सरकार, १९५६ ।

————"सरल गणित ज्योतिष", इलाहाबाद : १९५६ ।

ग्रीन, आर०एम०, "टेक्स्ट बुक ऑन स्फैरिकल एस्ट्रोनमी", लन्दन आदि : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, १९७७ ।

चक्रवर्ती, अपूर्व कुमार, "इण्डियन कलैण्डरिकल साइंस", कलकत्ता : मित्रा, १९७५ ।

चतुरसेन, आचार्य, "भारतीय संस्कृति का इतिहास", मेरठ : १९५८ ।

चन्द्र, ए० एन०, "द डेट ऑफ कुरूक्षेत्र वार", कलकत्ता : रत्न प्रकाशन, १९७८ ।

चौधरी, हेमचन्द्र राय, "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास", इलाहाबाद : किताब महल, १९८० ।

जैन, ज्योतिप्रसाद, "द जैन सोर्सिज ऑफ द हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट इण्डिया", दिल्ली : एम० एल० जैन, १९६४ ।

ठाकुर, बी० एल०, "ज्योतिष शिक्षा", (खण्ड दो भाग एक), वाराणसी : १९७० ।

डफ, सी० मोबेल, "द क्रोनोलॉजि ऑफ इण्डिया", (जिल्द एक) वाराणसी : चौखम्बा ओरियेंटेलिया, १९७५ ।

डफ, ग्राण्ट, "मराठों का इतिहास", अनुवादक कमलाकर तिवारी, इलाहाबाद : इतिहास प्रकाशन संस्थान, १९६५ ।

दत्त, भगवद्, "भारतवर्ष का वृहद इतिहास", नई दिल्ली : इतिहास प्रकाशन मण्डल, १९५० ।

दीक्षित, बालकृष्ण, "भारतीय ज्योतिष", अनुवादक शिवनाथ झारखंडी, प्रयाग : हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९६३ ।

देवहूति, "हर्ष : अ पॉलिटिकल हिस्ट्री", लंदन : कलैरेण्डन प्रेस, १९७० ।

द्विवेदी, हरिनिवास, "मध्य भारत का इतिहास", (प्रथम खण्ड) मध्य भारत, १९५६ ।

नागराज, मुनि, "द कन्टम्प्रेरीनिटी एण्ड द क्रोनोलॉजि ऑफ महावीर एण्ड बुद्ध", सम्पादक व अनुवादक मुनि महेन्द्र कुमार, नई दिल्ली : टुडे एण्ड टुमोरो बुक एजेन्सी, १९७० ।

परमानन्द शास्त्री, "जैन धर्म का प्राचीन इतिहास", (द्वितीय भाग), दिल्ली : रमेश चंद्र जैन, वीर निर्वाण सम्वत् २५०० ।

पाण्डेय, चंद्रभान, "आंध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास", दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९६३ ।

पाण्डेय, राजबली, "प्राचीन भारत", वाराणसी : नन्द किशोर, वि०सं० २०१८ ।

————"विक्रमादित्य सम्वत् प्रवर्तक", वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९६० ।

पाण्डेय, श्रीनेत्र, "प्राचीन भारत का इतिहास", इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन, १९८० ।

पिल्लेई, एल०डी० स्वामी, "एन इण्डियन एफेमरीज", दिल्ली : अगम प्रकाशन, १९८२ (१९२२) ।

पिल्लेई, एल०डी० स्वामी, "इण्डियन क्रोनोलॉजि", मद्रास : ग्राण्ट, १९११ ।

फजल, अब्बुल, "अकबरनामा", अनुवादक मथुरा लाल शर्मा, ग्वालियर : ति० अनु० ।

फरेबी, जोन, "ऑल थिंग्ज मेड न्यू", नई दिल्ली : तिथि अनुपलब्ध ।

फ्लीट, जॉन फेथफुल, "भारतीय अभिलेख सग्रह", अनुवादक गिरजाशंकर प्रसाद मिश्र, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, १९७४ ।

बनर्जी, गौरंगनाथ, "हेलेनिज्म इन एंशिएंट इण्डिया", नई दिल्ली : मुंशीराम मनोहरलाल, १९६१ (तृतीय संस्करण) ।

बंद्योपाध्याय, राखालदास, "गुप्त युग", अनुवादक आनन्द कृष्ण, वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९७० ।

"बाइबिल" (१९११ ई० का आधिकारिक रूप)

बाशम, ए० एल०, "अद्‌भुत भारत" अनुवादक-वेंकटेशचंद्र पाण्डेय, आगरा : शिवलाल अग्रवाल, १९६७ ।

भट्टाचार्य, एस०, "ए डिक्शनरी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", कलकत्ता : कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, १९६७ ।

"भारत (वार्षिक सन्दर्भ ग्रंथ) फरीदाबाद : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, १९७९ ।

मजूमदार, रमेश चन्द्र, "गुप्त एरा : द क्लासीकल एज", बम्बई : भारतीय विद्याभवन ग्रंथ माला, १९५३ ।

मजूमदार, रमेश चंद्र, "प्राचीन भारत", दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९६२ ।

मित्तल, मनराल, "राजपूत कालीन उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास", आगरा : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, १९७९ ।

मुखर्जी, बी० एन०, "सेंट्रल एण्ड साउथ एशियन डाक्यूमैंट्स ऑन द ओल्ड शक एरा", वाराणसी : एस० पाण्डेय, भारत भारती, तिथि अनुपलब्ध ।

मुखर्जी, राधाकुमुद, "दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी", जिल्द दो, बम्बई : भारतीय विद्या भवन, १९५३ ।

रफीक, गुलाम मोहम्मद, "इस्लाम'स क्रूसेड फॉर कलेण्डर", पट्न : रफीक, १९८१ ।

राय, उदय नारायण, "गुप्तवंश तथा उसका युग", इलाहाबाद : लोक भारती, १९७७ ।

राय, एस० बी०, "एंशिएंट इण्डिया : ए क्रोनोलोजिकल स्टडी", दिल्ली : १९७५ ।

————"डेट ऑफ महाभारत बैट्ल", नई दिल्ली, १९७६ ।

"रिपोर्ट ऑफ द कलैण्डर रिफोर्म कमिटी", दिल्ली, १९५५ ।

लाहरी, एन० सी०, "कन्डेन्ज्ड अफैमरीज आव प्लैनेट्स पजीशन्ज", (भाग सात ए), कलकत्ता : एस्ट्रो रिसर्च ब्यूरो, १९८५ ।

लूनिया, बी० एन०, "गुप्त साम्राज्य का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास", इन्दौर : कमल, १९७४ ।

विजया, मुनि कल्याण, "वीर निर्वाण सम्वत् और जैन काल-गणना", जैलोरा : के० वी० शास्त्र समिति, १९३० ।

वेल, सैमुअल, "बुद्धिस्ट रिकार्ड्ज ऑफ द वैस्टर्न वर्ल्ड", १८८४, (पुनर्मुद्रण) दिल्ली : निर्मल जैन, १९६९ ।

वोगल, जे० पी०, "एन्टीक्विटीज ऑफ चम्बा स्टेट", कलकत्ता, १९११ ।

शर्मा, राजकुमार, "मध्य प्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रंथ" भोपाल, १९७४ ।

शास्त्री, के० ए० नीलकंठ, "दक्षिण भारत का इतिहास", अनुवादक वीरेन्द्र वर्मा, पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, १९७२ ।

शास्त्री, आर० श्रवण, "वेदांग ज्योतिष", मैसूर : गवर्नमैंट ब्रांच प्रेस, १९३६ ।

शास्त्री, सिद्धेश्वरी, "भारत वर्षीय प्राचीन चरित्र-कोष", पूना : भारतीय चरित्र कोष, १९६४ ।

शाह, शान्तिलाल, "क्रोनोलॉजिकल प्रोबलम्ज", बॉन (जर्मनी) : शाह, १९३४ ।

शील पांडे, हिन्दू एस्ट्रौलॉजि", नई दिल्ली : सागर, १९६८ ।

श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, "अकबर महान", अनुवादक—भगवानदास गुप्त, आगरा : शिवलाल अग्रवाल, १९६७ ।

सत्यकेतु विद्यालंकार, "मौर्य साम्राज्य का इतिहास", मसूरी : सरस्वती सदन, १९८७ ।

सत्यकेतु विद्यालंकार तथा हरिदत्त वेदालंकार, "आर्य समाज का इतिहास", प्रथम भाग, नई दिल्ली : आर्य स्वाध्याय केन्द्र, तिथि अनु० ।

शामा शास्त्री, र०, "द वैदिक कलैण्डर", दिल्ली : गंगा पब्लिकेशन, १९७९ (१९१२) ।

सरकार, जदुनाथ, "शिवाजी और उनका काल", अनुवादक—मदन लाल जैन, आगरा : शिवलाल, १९६४ ।

सांकृत्यायन, राहुल, "अकबर", इलाहाबाद : किताब महल, १९५७ ।

सिंह, रघुनाथ, "ए डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड क्रोनोलॉजि", जिल्द एक वाराणसी : १९७७ ।

सीवैल, रॉबर्ट, "दि इण्डियन कलैण्डर", लन्दन : स्वान स्वनैश्चिन, १८९६ ।

————"इण्डियन क्रोनोलॉजि", लन्दन : ज्यौर्ज अलैन, १९१२ ।

सेन, उमापद, "द ऋग्वैदिक एरा", कलकत्ता : फर्मा के०एल० मुखोपाध्याय, तिथि अनु० ।

सेनगुप्त, पी०सी०, "एंशिएंट इण्डियन क्रोनोलॉजि" कलकत्ता : कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४७ ।

स्मिथ, वी०ए०, "अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया", लन्दन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९६७ (१९१४) ।

त्रिपाठी, रमाशंकर, "प्राचीन भारत का इतिहास", दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९८५ ।

त्रिवेद, देव सहाय, "इण्डियन क्रोनोलॉजी", बम्बई : भारतीय विद्याभवन, १९६३ ।

———, "प्राङ् मौर्य बिहार", पटना : १९५४ ।

———, "भारत का नया इतिहास", वाराणसी : आर्ष भारती, तिथि अनुपलब्ध ।

(ख) पंचांग

"असली लावड़ का पंचांग", (विक्रमी सम्वत् २०४५) गणितकर्ता रविदत्त शर्मा, मेरठ : रविदत्त शर्मा, वि०सं० २०४४ ।

"मराठी पंचांग" वि०सं० २०३२, गणिकर्ता—रामचंद्र पांडुरंग शास्त्री मोघे वसईकर, वि०सं० २०३१ ।

"राष्ट्रीय पंचांग" (१९८६-८७ ई०), रच० भारत सरकार, दिल्ली : द कन्ट्रोलर ऑफ पब्लिकेशन्ज, १९८६ ई० ।

"राष्ट्रीय पंचांग", (१९८९-९० ई०), रच० भारत सरकार, दिल्ली : द कन्ट्रोलर आफ पब्लिकेशन्ज, १९८९ ई० ।

"विश्व पंचांगम्", सम्पा० रामजन्म मिश्र, वाराणसी : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, विक्रम सं० २०४३ ।

"शुद्ध भारतीग पंचांग", (वि० सं० २०४५), गणितकर्ता शंकर लाल गौड़, मेरठ : जवाहर बुक डिपो, वि०सं० २०४४, २०४५, २०४६ ।

"शुद्ध भारद्वाज पंचांग", (वि०सं० २०४१), रच०—खचेडू दत्त शर्मा, मेरठ : भगवत बुक डिपो, वि०सं० २०४०, २०४५, २०४६ ।

"श्री राजधानी पंचागम्", (शक सं० १९१०), गणितकर्ता—कौशल किशोर कौशिक, दिल्ली : श्री राजधानी पंचांग कार्यालय, शक सं० १९०९ ।

"श्री वेंकटेश्वर शताब्दी पंचांगम्", (वि०सं० २००१ से २१०० पर्यन्त), गणितकर्ता—ईश्वर दत्त शर्मा, बम्बई : श्री वेंकटेश्वर प्रेस, १९८७ ई० ।

(ग) लेख

जोशी, मुरली मनोहर, 'हमारी प्राचीन गणना कितनी आधुनिक और वैज्ञानिक', "धर्मयुग", २५ दिसम्बर, १९८३ ई०, पृ० २६-२७ ।

दत्त, योगेन्द्र, 'एक वर्ष में कितने नये वर्ष', "कादम्बिनी", जनवरी १९८७, पृ० २०-२४ ।

निरूपण विद्यालंकार, "महर्षि दयानन्द और सृष्टि संवत्", स्मारिका (मेरठ : आर्य समाज शताब्दी समारोह) १९७६ ई० पृ० ९६-९९ ।

बनवारी, 'समय का जीवन से कटा हुआ पैमाना', "जनसत्ता" (दिल्ली) १ जनवरी १९८७, पृ० ४।

बाली, चंद्रकांत, 'कल्कि सम्वत्', "शोध पत्रिका", (उदयपुर: साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ) ३७:१ (१९८६) पृ० ९८-१०३।

भट्ट, कपिल, 'कैसे-कैसे सम्वत् भारत के', "कादम्बिनी", (दिल्ली), अप्रैल १९८६, पृ० ८४-८८।

मजूमदार, रमेश चंद्र, 'ए पैसेज इन अलबरूनीज इण्डिया : आनन्द एरा', "जर्नल आफ द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी", (पटना) ९ (१९२३) पृ० ४१७-१८।

———'द हर्ष एरा', "इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली", (कलकत्ता) २७ (सितम्बर १९५१) पृ० १८३-१९०।

———'हर्ष एरा', "इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली", (कलकत्ता) २८ (१९५२). पृ० २८।

मजूमदार, रमेश चंद्र, 'हर्षवर्धन : ए क्रिटिकल स्टडी', "द जर्नल ऑफ द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी", (पटना) ९ (१९२३) ३१०-२५।

माथुर, अनिल, 'ग्लोरी ऑफ विक्रम एरा', "द हिन्दुस्तान टाइम्स", २९ मार्च १९८७, पृ० ७।

मिराशी, वी०वी०, 'फ्रेश लाइट ऑन टु न्यू ग्राण्ट ऑफ द विष्णु कुण्डिन', "जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", ५० (१९७२), पृ० २।

——'द हर्षा एण्ड भट्टिका एरा', "द इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली", २९ (१९५३) पृ० १९१-१९५।

वैद्य, सी०वी०, 'हर्ष एण्ड हिज टाइम्ज', "द जर्नल ऑफ द बोम्बे ब्रांच ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी", २४ (१९१७) पृ० २३५-७६।

शर्मा, अपर्णा, 'भारतीय राष्ट्रीय संवत्', "शोधक", (जयपुर) १५ : ४३ (१९८५)।

शाह, एम०एन०, 'डिफ्रैन्ट मैथड्ज ऑफ डेट रिकार्डिंग इन एंशिएंट एण्ड मैडीवल इंडिया एण्ड दि ओरीजिन ऑफ द शक एरा", "जर्नल ऑफ एशियाटिक सुसाइटी", १९:१ (१९५३ ई०) पृ० १-२४।

सरकार, डी०सी०, 'हर्षज एक्सेंशन एण्ड द हर्ष एरा', "इण्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली", २७ (१९५१) पृ० ३२१-३२७।

———, 'द एरा ऑफ द भौमाकर्स ऑफ उड़ीसा', "इण्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली", (कलकत्ता) (१९५३) पृ० १४८-१५५।

———, 'हर्षज एक्सेशन एण्ड एरा', "इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली" (कलकत्ता) २९ (१९५३), पृ० ७२-७९।

त्रिवेद, देव सहाय, 'फसली एरा', "जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री", पृ० २९२-३०१।

निर्देशिका

लेखिका

डॉ० (श्रीमती) अपर्णा शर्मा ने मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ से एम० फिल० की उपाधि 1948 में, तत्पश्चात् पी० एच० डी० की उपाधि 1991 में प्राप्त की। उनके कई शोध लेख एवं पुस्तक समीक्षाएं प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ० (श्रीमती) अपर्णा शर्मा सम्प्रति शोध कार्य में रत हैं। उनका कार्य-क्षेत्र प्राचीन भारतीय इतिहास है।

ISBN 81-85396-10-8